[परिवार सुखी कैसे हो?]

(१८)

डा॰ कपिलदेव द्विवेदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओ३म्

वेदामृतम्

भाग—३

सुखी परिवार

[परिवार सुखी कैसे हो ?]

(HOW TO MAKE FAMILY LIFE PROSPEROUS ?)

लेखक

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

एवं

निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर (वाराणसी)

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (वाराणसी)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

VEDAMRITAM–Vol. III

(SUKHI PARIWAR)

HOW TO MAKE FAMILY LIFE PROSPEROUS ?

By : Dr. K. D. DVIVEDI

© Dr. K. D. DVIVEDI

२६८८५

सन् १९८[illegible] ई०

प्रथम संस्करण

मूल्य : सजिल्द २०.००
अजिल्द ८.००

वितरक :
विश्वभारती बुक एजेन्सी,
ज्ञानपुर (वाराणसी)

प्रकाशक :
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
शान्ति-निकेतन, ज्ञानपुर (वाराणसी)

मुद्रक :
धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस,
एस० २६/९२ मीरापुर बसहीं,
वाराणसी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राक्कथन

पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—वेद आर्य जाति का सर्वस्व हैं, मानव-मात्र का प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति-स्रोत है। वेदों का प्रकाश संसार भर में फैलकर मानव-जीवन में व्याप्त निराशा, अज्ञान, अन्धकार, दुर्विचार, अनाचार, दुर्गुण, आधि-व्याधि और दिशा-भ्रम को दूर करे, जिससे ज्ञान, आचार, संयम और सुसंस्कृति का आलोक सर्वत्र व्याप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चारों वेदों से विभिन्न विषयों पर मन्त्रों का संकलन किया गया है। वेदों के मन्त्र सरल संस्कृत के तुल्य सुबोध और हृदयंगम हो सकें, इसलिए प्रत्येक मन्त्र का अन्वय, शब्दार्थ, अनुशीलन, टिप्पणी आदि देकर उसे सुगम बनाया गया है। साधारण हिन्दी जानने वाला व्यक्ति भी इस प्रकार वेदों के अमृत का रसास्वाद कर सकता है।

योजना का स्वरूप—इस वेदामृतम् ग्रन्थमाला की योजना है कि वेदों में वर्णित सभी ज्ञान और विज्ञान के विषय पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में विषयानुसार वर्णित हों। इसलिए विषयानुसार वेदामृतम् ४० खण्डों में प्रकाशित करने की योजना है। इसका प्रथम भाग 'सुखी जीवन' और द्वितीय भाग 'सुखी गृहस्थ' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। तृतीय भाग 'सुखी परिवार' पाठकों के हाथों में समर्पित है।

व्याख्या की पद्धति—प्रत्येक मन्त्र को अत्यन्त सरल ढंग से समझाने के लिए सर्वप्रथम मन्त्र का अन्वय दिया गया है। अन्वय के अनुसार ही प्रत्येक शब्द का हिन्दी में अर्थ दिया गया है। तदनुसार मंत्र का हिन्दी में अर्थ है और उसके पश्चात् मंत्र का अंग्रेजी अनुवाद भी अंग्रेजी जानने वालों की सुविधा के लिए दिया गया है। अनुशीलन में मन्त्र का भाव व्याख्या के ढंग से समझाया गया है। मंत्र में व्याकरण आदि की दृष्टि से व्याख्या के योग्य शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय आदि टिप्पणी में दिया गया है। इससे पाठक मंत्रों का अर्थ आदि सूक्ष्मता के साथ समझ सकेंगे।

मंत्र-संख्या, क्रम और मन्त्रार्थ-विधि—प्रत्येक भाग में उस विषय से सम्बद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०० मंत्र दिए गए हैं। चारों वेदों में उस विषय पर जो सरल और अत्यन्त उपयोगी मंत्र प्राप्त हुए हैं, उन्हें चुना गया है। वेद-प्रेमियों के लिए चार मंत्र अवश्य स्मरणीय हैं, गायत्री मंत्र, विश्वानि देव०, ईशा वास्यमिदं सर्वम्, स्तुता मया वरदा वेदमाता, अतः ये चार मन्त्र बीज-मंत्र के रूप में सभी भागों में समाविष्ट किए गए हैं। चारों वेदों से सरलतम मंत्रों का ही इसमें संकलन है। मंत्रों को विषय और भाव की दृष्टि से क्रमबद्ध किया गया है। मन्त्रार्थ के विषय में महर्षि पतंजलि के वैज्ञानिक मन्तव्य को अपनाया गया है कि **'यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्'** जो शब्द कहता है, वह हमारे लिए प्रमाण है। मन्त्र के पाठ से जो अर्थ स्वयं निकलता है, उस अर्थ को ही लिया गया है। एक परमात्मा के ही अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम है, अतः यथास्थान इन शब्दों का अर्थ परमात्मा दिया गया है।

अनुशीलन—प्रत्येक मन्त्र में कुछ उपयोगी शिक्षाएं हैं। उनको अनुशीलन में स्पष्ट किया गया है। आवश्यकतानुसार अन्य ग्रन्थों से भी उपयोगी एवं भाव-साम्य वाले सुभाषितों को इसमें समाविष्ट किया गया है। नैतिक एवं जीवनोपयोगी शिक्षाओं का विवरण मुख्यरूप से दिया गया है। ज्ञानवृद्धि के लिए अनुशीलन की विशेष उपयोगिता है। विज्ञ पाठकों के लिए टिप्पणी में दिया गया व्याकरण आदि का निर्देश विशेष लाभकर सिद्ध होगा। प्रत्येक भाग में दिए मन्त्रों में प्राप्य १०० सुभाषित हिन्दी अर्थ के साथ ग्रंथ के अन्त में दिए गए हैं। ये सुभाषित कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

पुस्तक के प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों में ज्येष्ठ पुत्र डा० भारतेन्दु द्विवेदी, डी० फिल्० से विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ वह आशीर्वाद का पात्र है।

आशा है यह ग्रन्थ सभी वेद-प्रेमियों का आदर प्राप्त करेगा और उनकी वेदों में रुचि बढ़ाएगा।

शान्ति-निकेतन
ज्ञानपुर (वाराणसी)
२८-३-८३ ई० (होली, २०३९ वि०)

डा० कपिलदेव द्विवेदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका

परिवार सुखी कैसे हो ?

इस संसार में प्रत्येक वस्तु किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाई गई है। जगन्नियन्ता ने इस सृष्टि में कोई वस्तु निरर्थक नहीं बनाई है। प्रत्येक पदार्थ के अपने पृथक् कर्म हैं। उनकी सिद्धि के लिए ही वह जीवन भर साधना करता है। मनुष्य संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। जो शक्तियां मनुष्य को प्राप्त हैं, वे किसी अन्य जीव को प्राप्त नहीं हैं। मनन, चिन्तन, विवेक, विश्व-हित-चिन्तन, विश्व-नियन्त्रण, आत्मिक शक्ति की पराकाष्ठा प्राप्त करना, भौतिक उन्नति उपलब्ध करना, यह केवल मानव के लिए ही संभव है, अन्य जीवों के लिए नहीं। मानव जीवन के दो लक्ष्य हैं—भौतिक उन्नति करना और मोक्ष प्राप्त करना। भौतिक उन्नति की गणना अभ्युदय में है और कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर आवागमन के चक्र से छूटना मोक्ष है। इसको ही वैशेषिक दर्शन में धर्म और योगदर्शन में दृश्य जगत् की उपयोगिता बताया गया है।[1]

सुख के दो रूप हैं—भौतिक सुख और पारमार्थिक सुख। सांसारिक सुखों और भोगों की गणना भौतिक सुख में है। इसको शास्त्रीय भाषा में प्रेयस् या प्रेयमार्ग कहा जाता है। यह सुख क्षणिक है, नश्वर है, जीवन को अपने लक्ष्य से च्युत करने वाला है और अन्त में विनाश की ओर ले जाने वाला है। सामान्य व्यक्ति के सम्मुख यही सुख रहता है। वह धन, जन, बन्धु-बान्धव, भूमि, गृह, स्वर्ण आदि को ही सर्वस्व समझता है। परन्तु यह उसकी भूल है। यह जीवन का नाशक तत्त्व है। इस सुख का अन्त सदा दुःखदायी होता है।

दूसरा सुख पारमार्थिक सुख है। इसे आनन्द कहते हैं। यह परमात्मा की

---

१. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक० १-१-२
भोगापवर्गार्थं दृश्यम्। योगदर्शन २-१८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varahasi Collection. Digitized by eGangotri

शरण में जाने से प्राप्त होता है। इसमें मानसिक और आत्मिक उन्नति है। जीवात्मा परमात्मा का सांनिध्य प्राप्त करके आत्मिक शक्ति, ज्ञान, चेतना, विवेक, मनोबल और शाश्वत आनन्द प्राप्त करता हैं। इसको श्रेयस् या श्रेयमार्ग कहते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति इस श्रेयस् मार्ग को अपनाते हैं। इसलिए कठ उपनिषद् में कहा गया है कि प्रेय और श्रेय दोनों मार्ग मनुष्य के सामने आते हैं। सामान्य जन अपनी आजीविका की दृष्टि से प्रेय मार्ग को अपनाते हैं और विद्वान् व्यक्ति श्रेयमार्ग को अपनाते हैं। जो श्रेय मार्ग को अपनाते हैं, उनका सदा कल्याण होता है।[२]

सुख और दुःख की परिभाषा महाभारत में दी गई है कि जो स्वाश्रित कर्म हैं, वे सुख हैं। जिसके लिए दूसरे पर निर्भर रहना होता है, वह दुःख है। अपनी शक्ति के अनुकूल कार्यों को फैलाना, सुख का साधन है। इसके विपरीत दूसरों पर आश्रित रहते हुए काम करना दुःख का कारण है।[३]

इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य को अपनी शक्ति देखकर ही उद्योग आदि का विस्तार करना चाहिए। आत्मनिर्भरता में सुख है, पराश्रयता में दुःख है।

सुख और दुःख का एक दूसरा लक्षण भी है। यह अधिक रुचिकर है। सुख और दुःख शब्द दो शब्दों को मिलकर बने हैं। इन शब्दों में ही इनकी परिभाषा भी छिपी हुई है। सु + ख, ख का अर्थ इन्द्रिय है। अपनी इन्द्रियों को सु अर्थात् सुन्दर बना लेना ही सुख है। अपनी इन्द्रियों को अच्छे कामों में लगाना सुख है।

---

२. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः,
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥ कठ० १-२-२
तयोः श्रेय अददानस्य साधु भवति,
हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते ॥ कठ० १-२-१

३. सर्वं परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन, लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ महाभारत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके विपरीत दु: + ख अर्थात् अपनी इन्द्रियों को बिगाड़ लेना, उनसे दूषित कर्म करना ही दु:ख है ।

अतएव सुख चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी इन्द्रियों को बस में रखे, इन्द्रियों को बुरे कामों में न लगावे । न बुरा देखे, न बुरा सुने, न बुरा बोले । यदि व्यक्ति अपने आपको बुराई से बचा लेता है तो वह सुखी है, यदि बुराई से नहीं बच सकता या नहीं बचता है तो वह दु:खी रहता है । सबको सुख अभीष्ट है, अत: दुर्गुणों को, बुराइयों को, अनुचित कार्यों को छोड़ना ही सुख का एकमात्र साधन है ।

परिवार सबसे छोटी इकाई है । उससे बड़ी इकाई समाज है, उससे आगे राष्ट्र या देश और उससे बड़ी इकाई विश्व है । हमारा उद्देश्य है कि सबसे छोटी इकाई को सुखी, प्रसन्न, सन्तुष्ट और योगक्षेम से युक्त करें । व्यष्टि सुखी है तो समष्टि भी सुखी होगा । व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज, परस्पर संबद्ध हैं । व्यक्ति की उन्नति से समाज उन्नत होता है और समाज की उन्नति से व्यक्ति । परिवार के लिए विचारणीय है कि उसे किस प्रकार सुखी, समृद्ध और शान्तियुक्त बनाया जाए ।

परिवार एक प्रकार से राष्ट्र और समाज का संक्षिप्त रूप है । इसमें पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई-बहिन और पौत्र-पौत्री आदि सभी समन्वित हैं । परिवार को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाना एक राष्ट्र को सुन्दर बनाने के तुल्य है । एक सुन्दर और सुव्यवस्थित परिवार स्वर्ग है और एक विकृत तथा अव्यवस्थित परिवार नरक है । हमारा लक्ष्य है परिवार को स्वर्ग बनाना और योगक्षेम से युक्त करना । इसके लिए वेदों में प्राप्त शिक्षाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है ।

पारिवारिक व्यक्तियों के कर्तव्य

पति-पत्नी—पति और पत्नी के कर्तव्यों की विस्तृत व्याख्या वेदामृतम् भाग २—'सुखी गृहस्थ' में की गई है । यहाँ पर कुछ मुख्य बातें दी जा रही हैं । वेदों का आदेश है कि दम्पती का जीवन तभी सुखमय हो सकता है, जब वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समन्वित ढंग से कार्य करेंगे। उनमें परस्पर सद्भाव, पारस्परिक स्नेह, विचारों का आदान-प्रदान और मिलकर काम करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। जहाँ पति या पत्नी केवल अपने हित की बात सोचते हैं, वहाँ दुःख, क्लेश मनोमालिन्य आदि प्रारम्भ होते हैं। अतः मंत्र कहता है कि पति-पत्नी मिलकर गृहस्थ धर्म का निर्वाह करें।[४]

पत्नी का कर्तव्य बताया गया है कि वह पति से सदा मधुर और शान्तियुक्त वाणी बोले। मधुर वचन पारस्परिक स्नेह को दृढ करता है, सौमनस्य लाता है और आन्तरिक आनन्द देता है। कटु वचन घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और असहिष्णुता को जन्म देता है। अतः कटुवचन और ताना देना सर्वथा त्याज्य है।[५]

यजुर्वेद में पत्नी के कुछ गुणों और कर्तव्यों का वर्णन है। पत्नी स्वयं तेजस्विनी हो, योग्य हो, विदुषी हो, स्वयं नियमों का पालन करने वाली हो, परिवार की मर्यादाओं की रक्षा करे और परिवार को पुष्ट करे। उसका कर्तव्य है कि वह परिवार को नियन्त्रण में रखे, सबके भोजनादि की व्यवस्था करे, परिवार की सुरक्षा करे।[६]

माता-पिता, सास-ससुर—माता-पिता एवं सास-ससुर का कर्तव्य बताया गया है कि वे अपनी सन्तान से तथा पुत्र-वधू आदि से अत्यन्त मधुर वचन बोलें तथा उदार हृदय से उन्हें धन दें। मधुर वचन पारिवारिक शान्ति का कारण है। कटु वचन से पिता-पुत्र, सास-बहू आदि में निकृष्ट विवाद, मनोमालिन्य और कटुताएं उत्पन्न होती हैं, अतः कटुवचन और कटु व्यवहार सर्वथा त्याज्य है। उदार हृदय से पुत्रादि और वधुओं को धन देने से पारिवारिक शान्ति रहती है और परिवार की श्रीवृद्धि होती है।[७]

---

४. अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु। (मंत्र १०, ८३)
५. जाया पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शन्तिवाम्। (मंत्र ६)
६. यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री। (मंत्र ३३)
मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी। (मंत्र ३४)
७. पिता माता मधुवचाः सुहस्ता। (मंत्र २१)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माता-पिता और सास-ससुर का कर्तव्य है कि अपने जीवनकाल में ही वे पुत्रादि को उनका अधिकार दे दें तथा संपत्ति में उनके हिस्से का अंश उन्हें दे दें। लोभवश या असावधानी के कारण अपने सामने संपत्ति का विभाजन न करने से पिता आदि की मृत्यु के पश्चात् भाइयों में, वहिनों में तथा अन्य संवन्धियों में अनेक प्रकार के आर्थिक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, अतः दूरदर्शिता इसी में है कि संपत्ति का यथा योग्य विभाजन पिता आदि अपने सामने ही कर दें।[८]

पुत्रादि का कर्तव्य है कि वे अपने माता-पिता का सदा कल्याण सोचें और उनका हित करें। यही पितृयज्ञ है। इससे सन्तान पैतृक ऋण से उऋण होती है।[९]

माता का कर्तव्य वताया गया है कि वह शिशुओं की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखे। वे बच्चों के लिए नए वस्त्र वुनें और वनावें।[१०]

भाई-बहिन—वेद की शिक्षा है कि भाई-भाई, भाई-वहिन और वहिन-बहिन परस्पर प्रेम से रहें। वे अपने पारस्परिक मतभेदों आदि को प्रेम से सुलझा लें। उनका कोई भी विवाद कटुता धारण न करे।[११]

वेद का कथन है कि भाई-भाई प्रेम से रहें। वे छोटे-वड़े का भेद-भाव न करें। वे मिलकर काम करते हैं तो उन्हें सदा सौभाग्य प्राप्त होगा।[१२]

भाई-वहिन का प्रेम अत्यन्त सात्त्विक है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने देनी चाहिए। उनका स्नेह, सौहार्द और ममत्व आदर्श रूप में ही रहना चाहिए। (मंत्र ७९)

---

८. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते। (मंत्र २२)

९. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु। (मंत्र २०)

१०. वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति। (मंत्र ९७)

११. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। (मंत्र २४)

१२. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते,
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। (मंत्र २५)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र-पुत्री—पुत्र का कर्तव्य है कि वह माता-पिता का आज्ञापालक हो। उनकी सदा सेवा करे।[१३]

पुत्र की प्राप्ति का बहुत महत्त्व है। पुत्र की प्राप्ति से माता-पिता अपने पूर्वजों के ऋण से उऋण होते हैं। अतः योग्य सन्तान का होना वंश वृद्धि के लिए आवश्यक है।[१४]

पुत्र के गुण बताए गए हैं कि वह सुन्दर हो, शुभ कर्म करने वाला हो, माता-पिता का कृतज्ञ हो, वीर हो, कर्मठ हो, उत्तम गुणों से युक्त हो, आस्तिक हो, माता-पिता का आज्ञाकारी हो, सज्जन हो, ऐश्वर्य-संपन्न हो, हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला हो।[१५] (मंत्र २६ से ३२)

परिवार में क्या गुण होने चाहिए ?

परिवार को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए वेदों में कुछ गुणों का निर्देश है। इन गुणों को धारण करने वाले परिवार सदा सुखी, प्रसन्न और समृद्ध रहते हैं। उस घर में श्री का निवास होता है, पारस्परिक स्नेह और विश्वास होता है तथा शान्ति का वातावरण विद्यमान रहता है।

वेद का कथन है कि आस्तिकता सब सुखों का मूल है जिस परिवार में आस्तिकता है, वहाँ दोष, दुर्गुण और पाप स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अतः परिवार के सभी व्यक्तियों में आस्तिकता एवं ईश्वर-विश्वास का भाव जागृत होना चाहिए।[१६]

परिवार में संगठन और एकता होनी चाहिए। सब एक दूसरे से प्रेम करें। सबके हृदय मिले हुए हों। पारस्परिक द्वेष की भावना को दूर करें। सबमें मानसिक सौहार्द हो। मिलकर एक लक्ष्य को लेकर चलें। सबमें समन्वय की भावना

१३. अनुव्रतः पितुः पुत्रो, मात्रा भवतु संमनाः। (मंत्र ६)

१४. एतत् तदग्ने अनृणो भवामि, अहतौ पितरौ मया॥ (मंत्र ३२)

१५. ते सूनवः स्वपसः सुदंससः०। (मंत्र २६)
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो०। (मंत्र २७)

१६. ईशा वास्यमिदं सर्वम्०। (मंत्र ३)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो। सबमें पारस्परिक विश्वास हो। छोटे-बड़े का भेद-भाव भुलाकर सौभाग्य के लिए निरन्तर यत्नशील हों। मिलकर चलें, मिलकर बोलें और एकमत होकर निर्णय करें।[१७] (मंत्र ५ से ११, १५, २५, ६५, ६६)

वेद का कथन है कि परिवार में प्रेम, धैर्य और स्वावलम्बन गुण होने चाहिएं, तभी परिवार में रायस्पोष और योगक्षेम रहता है।[१८]

प्रसन्नचित्त रहना न केवल परिवार की सुख-शान्ति के लिए उपयोगी है, अपितु अपने स्वास्थ्य और विकास के लिए भी आवश्यक है।[१९]

परिवार में सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक है कि धन-समृद्धि हो, आर्थिक सुख-सुविधाएं हों और अन्न का कोष हो।[२०]

लक्ष्मी के दो रूप हैं—पवित्र और अपवित्र, शुभ और अशुभ। पवित्र साधनों से प्राप्त लक्ष्मी शुभ और श्रेयस्कर है। अनुचित साधनों से अर्जित लक्ष्मी अशुभ, अपवित्र और नाशकारी है। अतः वेदों में शुभ लक्ष्मी के संग्रह का ही आदेश दिया गया है।[२१] (मंत्र ४७, ४८, ५२, ५४, ६२)

परिवार के व्यक्ति नीरोग और स्वस्थ हों। स्वस्थ मनुष्य ही इस संसार के सुखों का भोग कर सकते हैं और जीवन को सुखमय बना सकते हैं।[२२] (मंत्र १९, २०, ७१)

---

१७. सहृदयं सांमनस्यम्, अविद्वेषं कृणोमि वः। (मंत्र ५)
समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः। (मंत्र ६५)
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। (मंत्र ६६)

१८. इह रतिरिह रमध्वम्, इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। (मंत्र ५६)

१९. विश्वदानीं सुमनसः स्याम। (मंत्र ८०)

२०. पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च। (मंत्र ६७)
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व। (मंत्र ६८)

२१. एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य०। (मंत्र ४७)
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः, याः पापीस्ता अनीनशम्। (मंत्र ४८)

२२. स्वावेशो अनमीवो भवा नः। (मंत्र १९)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदों के अनुसार धर्म और श्री का स्थायी संबन्ध है। जहाँ धर्म का निवास है, वहाँ श्री और सुख है। अतः अथर्ववेद में श्री और धर्म को साथ रखा गया है। स्थायी सुख के लिए धर्म का पालन अनिवार्य है।[२३] (मंत्र १४, ४९)

परिवार के व्यक्ति क्या करें ?

परिवार के व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे उत्तम गुणों को अपनावें, जिससे परिवार सदा सुखी रहे। इसके लिए वेदों में अनेक साधन बताए गए हैं। उनका ही यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

परिवार के व्यक्ति सद्गुणों को अपनावें और दुर्गुणों को छोड़ें। भद्र को ग्रहण करें, पापों को छोड़ें। अपनी इन्द्रियों से भद्र वस्तुओं को ही ग्रहण करें। अशुभ वचन आदि का परित्याग करें। सद्गुण जीवन की आधार-शिला हैं। पाप विनाशक तत्त्व हैं।[२४] (मंत्र २, ३२, ८१)

परिवार को सुखी बनाने का एकमात्र उपाय है कि परिवार के सभी व्यक्ति पुरुषार्थी हों। वे यथाशक्ति पूरा परिश्रम करें। परिश्रम से ही सभी प्रकार की सफलता प्राप्त होती है। कर्महीन की सारी योजनाएँ असफल होती हैं।[२५] (मंत्र ५, ५७-५९, ८८)

परिश्रम के साथ ही स्वावलम्बन गुण को भी अपनाना आवश्यक है। स्वावलम्बी को दुःख और कष्ट नहीं सताते। उसे संसार मधुमय दीखता है। स्वावलम्बी के पास श्री और सुख स्वयं आते हैं।[२६]

---

२३. श्रीश्च धर्मश्च। (मंत्र १४)

२४. यद् भद्रं तन्न आसुव। (मंत्र २)
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः०। (मंत्र ८१)

२५. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (मंत्र ४)
कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। (मंत्र ५७)

२६. स्वतवांश्च प्रघासी च। (मंत्र १८)
इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। (मंत्र ५६)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिश्रम और स्वावलम्बन के साथ ही जागरूकता अत्यावश्यक है। यदि व्यक्ति जागरूक नहीं रहेगा, तो उसका सारा परिश्रम नष्ट हो सकता है। जागरूक को ही विद्या, ऐश्वर्य, प्रभुत्व आदि सब कुछ प्राप्त होता है। अतः मंत्र कहता है कि प्रमाद-रहित होकर सदा जागरूक रहो।[२७] (मंत्र ४६, ६०, ६१)

परिवार को स्वर्ग बनावें। जहाँ परिवार में स्नेह, सद्भाव, पुरुषार्थ आदि गुण होते हैं, वहाँ नीरोगता स्वस्थता और आनन्द की प्रचुरता होती है।[२८]

वेद की शिक्षा है कि स्वपुरुषार्थ से उपार्जित धन का ही भोग करना चाहिए। दूसरों की संपत्ति देखकर लोभ नहीं करना चाहिए। सन्तोष ही सुख का साधन है। असन्तोष से सदा दुःख मिलता है।[२९]

परिवार में आनन्द का वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है कि परिवार के व्यक्ति प्रसन्नचित्त रहें। आमोद-प्रमोद का वातावरण रहे। हास्य, विनोद, प्रसन्नचित्तता और स्वभाव-माधुर्य अपने स्वास्थ्य के लिए शुभ है और परिवार की प्रसन्नता के लिए भी शुभ है।[३०]

परिवार के सुख के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति निर्भय और साहसी हों। वे सभी आपत्तियों और संकटों का सामना करने के लिए संनद्ध रहें। जहाँ निर्भयता और साहस है, वहाँ संकट नहीं रुकते। उदाहरण दिया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मशक्ति, क्षत्रशक्ति कभी नहीं डरते हैं, उसी प्रकार कभी न डरें।[३१] (मंत्र १७, ८४, ८५)

परिवार के अभ्युदय के लिए आवश्यक है कि परिवार के व्यक्ति ओजस्वी,

---

२७. स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्। (मंत्र ६१)
यो जागार तमृचः कामयन्ते। (मंत्र ६०)

२८. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति०। (मंत्र ४१)

२९. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद् धनम्। (मंत्र ३)

३०. क्रीडी च शाकी चोज्जेषी। (मंत्र १८)
विश्वदानीं सुमनसः स्याम। (मंत्र ८०)

३१. मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व। (मंत्र ८५)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेजस्वी और यशस्वी हों। ओजस्वी व्यक्ति ही जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य कर पाते हैं और यशस्वी होते हैं।[३२] (मंत्र १४, ६९, ७१, ८६, ८९)

परिवार की समृद्धि के लिए सत्यनिष्ठा, सत्य-व्यवहार और उचित साधनों को अपनाना आवश्यक है। मंत्र का कथन है कि जहाँ सत्यभाषण है, वाणी में माधुर्य है, आमोद-प्रमोद है, वहाँ सौभाग्य है और धनादि की समृद्धि है।[३३]

मधुर वचन को पारिवारिक शान्ति का साधन बताया गया है। माता-पिता बालकों से मधुर वचन बोलें। पत्नी पति से मधुर वचन बोले और सब परस्पर मधुर वचन ही बोलें।[३४] (मंत्र ६, २१, ९०)

वेदों की शिक्षा है कि प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह निर्धनों, निराश्रितों और दीन-हीनों को अवश्य दान दे। जो दान नहीं देता है और केवल अपने पेट की पूर्ति करता है, उसे अत्यन्त निकृष्ट और महापापी बताया गया है। दान देने से श्री और यश दोनों बढ़ते हैं।[३५] (मंत्र ७२ से ७६)

वेदों में अतिथि-सत्कार का बहुत महत्त्व वर्णित है। वेद का आदेश है कि अतिथि को खिलाए बिना भोजन न करे। वेदज्ञ ही सबसे पूज्य अतिथि है। जो अतिथि को बिना खिलाए भोजन कर लेते हैं, उनकी समस्त श्री और समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं।[३६] (मंत्र ३५ से ३७)

---

३२. ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च। (मंत्र १४)
ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा। (मंत्र ६९)

३३. सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः। (मंत्र ९२)

३४. जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्। (मंत्र ६)
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता। (मंत्र २१)

३५. शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर। (मंत्र ७४)
केवलाघो भवति केवलादी। (मंत्र ७६)

३६. एष वा अतिथिर्यत् श्रोत्रियः,
तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्। (मंत्र ३६)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गृहस्वामी का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि परिवार में कोई भूखा-प्यासा न रहे।[३७] (मंत्र ४३, ९२)

माता-पिता का कर्तव्य है कि परिवार के सदस्यों को यथायोग्य धन देते रहें। प्रत्येक को अपना हिस्सा मिल जाना चाहिए। यथासंभव वे अपने जीवन-काल में ही पैतृक संपत्ति आदि का विभाजन कर दें।[३८]

परिवार में सदा समृद्धि रहे, इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहें। अतएव योग-क्षेम की कामना की गई है। योग का अर्थ है—धन की प्राप्ति और क्षेम का अर्थ है—धन की सुरक्षा। अतएव योगक्षेम शब्द कुशलता का वाचक हो गया है।[३९] (मंत्र १२, १३, १६, ३९)

धनोपार्जन के लिए दूर देशों में भी जाने का विधान है। दूर देशों में जाने से धन ज्ञान और अनुभव की वृद्धि होती है।[४०] (मंत्र ९३)

परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र की सुरक्षा और समृद्धि में पूरा योगदान करे। वह राष्ट्र-रक्षा में जागरूक रहे और देश के लिए आवश्यकतानुसार अपना जीवन भी अर्पित करे।[४१] (मंत्र ८६)

तपस्वी एवं साधनामय जीवन व्यतीत करें तथा वेदों के भक्त हों। वेदों से ही मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होता है।[४२] (मंत्र ८२, ९१, १००)

काम के दो रूप माने गए हैं—शुभ और अशुभ। अशुभ काम भोग एवं विषय-वासना को बढ़ाता है तथा विषयासक्ति के द्वारा जीवन को नष्ट करता है।

---

३७. अक्षुध्या अतृष्या स्त। (मंत्र ४३)

३८. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते।(मंत्र २२)
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधात्। (मंत्र २३)

३९. पाहि क्षेम उत योगे वरं नः। (मंत्र १२)

४० ऐष्यामि भद्रेणा सह। (मंत्र ९३)

४१. वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा। यजु० ९-२३
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। अथर्व० १२-१-६२

४२. अग्ने तपस्तप्यामहे। (मंत्र ८२)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुभ काम संकल्प-शक्ति और इच्छा शक्ति को देता है। यह जीवन को उन्नत करता है, अतः ग्राह्य है।[४३] (मंत्र ६३, ८७)

इन गुणों को अपनाने से परिवार बनते हैं। उनकी श्रीवृद्धि होती है और परिवार में सुख-समृद्धि का निवास होता है।

परिवार के व्यक्ति क्या न करें

परिवार क्यों बिगड़ते हैं ? क्यों टूटते हैं ? क्यों पारस्परिक सद्भाव समाप्त होता ? क्यों परिवार नष्ट होते हैं ? इन बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ दुर्गुण हैं, दोष हैं तथा कुछ न्यूनताएं हैं, जिनसे परिवार नष्ट होते हैं। श्रेष्ठ जनों का कर्तव्य है कि इन दोषों से अपने परिवार को बचावें।

परिवारों के टूटने का मुख्य कारण है—स्वार्थपरता, धनलिप्सा और स्व-केन्द्रित होना। जब मनुष्य केवल अपने स्वार्थ को मुख्य समझने लगता है और सारी संपत्ति पर अपना अधिकार चाहता है, तब ईर्ष्या, द्वेष, कटुता और कलह उत्पन्न होते हैं। अतः स्वार्थ को मुख्यता न देकर परिवार के हित को मुख्यता देनी चाहिए। इसीलिए वेद का कथन है कि अपने अंश का ही भोग करो, दूसरों की संपत्ति की ओर लालच से न देखो। त्याग की भावना बढ़ावो।[४४]

क्रोध, ईर्ष्या और कटुभाषण परिवार के नाशक तत्त्व हैं। इनका परित्याग आवश्यक है।[४५]

विषय-वासनाओं में न फंसें। अधिक भोगवादी प्रवृत्ति सदा दुःख का कारण है, अतः अधिक सुखमय जीवन बिताने की प्रवृत्ति दुःखद है। यह शारीरिक और मानसिक शक्ति को क्षीण करती है।[४६]

---

४३. यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः। (मंत्र ६४)
४४. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्। (मंत्र ३)
४५. सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः। (मंत्र ९४)
४६. अन्यत्र पापीरप वेशया धियः (मंत्र ६४)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुचित साधनों से प्राप्त लक्ष्मी विनाश का कारण है। इससे परिवार की श्री और गौरव समाप्त होते हैं। अतः अशुभ लक्ष्मी या काले धन से बचें।[४७]

दुर्गुणों, पापों और दुर्व्यसनों से बचें। दुर्व्यसन व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों को नष्ट करते हैं। अतः इनको परिवार में प्रविष्ट न होने दिया जाए।[४८] (मंत्र २, ३२, ८५)

असत्य को छोड़ें। असत्य-व्यवहार परिवार का नाशक है। यह जीवन को नरक बना देता है। मनुष्य को अपने लक्ष्य से च्युत कर देता है।[४९]

ऋणी होना परिवार के लिए दुःखकर है, अतः ऋण से सदा बचना चाहिए। जो अनृणी हैं, वे ही संसार में प्रसन्न और निश्चिन्त रह सकते हैं।[५०]

परिवार में भय का भाव नहीं आने देना चाहिए। सभी को उत्साही, साहसी और निडर होना चाहिए।[५१]

वेद के आदेशानुसार यदि इन दुर्गुणों से दूर रहें तो परिवार सदा सुखी और प्रसन्न रहेगा।

---

४७. या या लक्ष्मीः पतयालूर्जुष्टा०। (मंत्र ५२)

४८. पाप्या हतो न सोमः। (मंत्र ८५)

४९. पापासः सन्तो अनृता असत्या०। (मंत्र ९९)

५०. अनृणा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्०। (मंत्र ९८)

५१. गृहा मा बिभीत मा वेपध्वम्०। (मंत्र १७)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संकेत-सूची

१	—एकवचन
२	—द्विवचन
३	—बहुवचन
अथर्व०	—अथर्ववेद संहिता
अदादि०	—अदादिगण
आशी०	—आशीर्लिङ्
Inj.	—Injunctive
उणादि०	—उणादि सूत्र
उ०, उ० पु०	—उत्तम पुरुष
उप०	—उपनिषद्
ऋग्०	—ऋग्वेद संहिता
ऐत०	—ऐतरेय ब्राह्मण
क्र्यादि०	—क्र्यादिगण
गोपथ पू०	—गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग
गोपथ उ०	—गोपथ ब्राह्मण उत्तरभाग
च०	—चतुर्थी विभक्ति
चुरादि०	—चुरादिगण
जुहोत्यादि०	—जुहोत्यादिगण
तनादि०	—तनादिगण
ता०, तां०	—तांड्य ब्राह्मण
तुदादि०	—तुदादिगण
तृ०	—तृतीया विभक्ति
तैत्ति०	—तैत्तिरीय ब्राह्मण
दिवादि०	—दिवादिगण
द्वि०	—द्वितीया विभक्ति
नपुं०	—नपुंसक लिंग
पं०	—पंचमी विभक्ति
पा०	—पाणिनीय अष्टाध्यायी
पुं०	—पुंलिंग
पु०	—पुरुष
प्र०, प्र० पु०	—प्रथम पुरुष, प्रथमा
प्रथमा	—प्रथमा विभक्ति
ब्रा०	—ब्राह्मण
भ्वादि०	—भ्वादिगण
म०, म० पु०	—मध्यम पुरुष
यजु०	—यजुर्वेद संहिता
रुधादि०	—रुधादिगण
विधि०	—विधिलिङ्
शत०	—शतपथ ब्राह्मण
ष०	—षष्ठी विभक्ति
सं०	—संबोधन
स०	—सप्तमी विभक्ति
साम०	—सामवेद संहिता
Sub.	—Subjunctive
स्त्री०	—स्त्रीलिंग
स्वादि०	—स्वादिगण

——०——

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुखी परिवार

विषयानुक्रमणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुखी परिवार

मन्त्रानुक्रमणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओम्

वेदामृतम्

भाग ३

सुखी परिवार

१. बुद्धि सन्मार्ग पर चले (गायत्री मन्त्र)

ओं भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० ३६-३; ३-३५; २२-९; ३०-२; ऋग्० ३-६२-१०; साम० १४६२;
तैत्ति० सं० १-५-६-४; तैत्ति० आर० १-११-२

अन्वय—ओं भूः भुवः स्वः । सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि । यः नः धियः प्रचोदयात् ।

शब्दार्थ—(ओम्) रक्षक परमात्मन्, (भूः) सत्-स्वरूप, (भुवः) चित्-स्वरूप, (स्वः) आनन्द-स्वरूप, (सवितुः) संसार के उत्पादक, (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा के, (तत्) उस, (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ, (भर्गः) तेज को, (धीमहि) धारण करते हैं । (यः) जो परमात्मा, (नः) हमारी, (धियः) बुद्धियों को, (प्रचोदयात्) सत्कर्मों में प्रेरित करे ।

हिन्दी अर्थ— सच्चिदानन्द-स्वरूप, संसार के उत्पादक, देव परमात्मा के उस सर्वोत्कृष्ट तेज को हम धारण करते हैं । वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करे ।

Eng. Tr.—O Supreme Lord ! thou art the source of existence, intelligence and bliss, creator of the universe. We cherish thy luminous lustre. Vouchsafe an un-erring guidance to our intellects.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए दो बातों की सबसे अधिक आवश्यकता है—आस्तिकता और बुद्धि की शुद्धता। ये दोनों कार्य गायत्री मन्त्र से सिद्ध होते हैं। गायत्री का अर्थ है—गय और गाय का अर्थ है—प्राण। प्राणा वै गयाः (शतपथ ब्रा० १४–८–१५–७)। गयाः प्राणाः, गयाः एव गायाः, तान् त्रायते इति गायत्री। गाय अर्थात् प्राणों की रक्षा करने वाले को गायत्री कहते हैं। गायत्री के जप से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है और शारीरिक तथा बौद्धिक न्यूनता दूर होती है। गायत्री को सावित्री भी कहते हैं। सविता अर्थात् सूर्य या ब्रह्म से संबद्ध होने से यह सावित्री मन्त्र है। इसके द्वारा शरीर में सौर शक्ति की उत्पत्ति होती है।

गायत्री ही ब्रह्मवर्चस् या ब्रह्मतेज है। गायत्री ब्रह्मवर्चसम् (तैत्तिरीय ब्रा० २–७–३–३), तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री (कौषीतकि ब्राह्मण १७–२)। गायत्री के नियमित जप से ब्रह्मवर्चस् प्राप्त होता है। इस ब्रह्मवर्चस् से ही मनुष्य संयमी, जितेन्द्रिय और मनोनिग्रही होता है। अतः एव तांड्य ब्राह्मण में कहा है—वीर्यं वै गायत्री (तां० ७–३–१३)।

गायत्री मंत्र के तीन भाग हैं—(क) महाव्याहृति—ओं भूर्भुवः स्वः। इसमें परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह सत्, चित् और आनन्दरूप है। उसके आनन्द की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। (ख) तत्.........धीमहि। उस आनन्द की प्राप्ति के लिए परमात्मा के तेज या ज्योति को हृदय में धारण करना होगा। परमात्मारूपी दिव्य रत्न को हृदय में रखे बिना ज्ञान की शक्ति ही उद्बुद्ध नहीं होगी। बुद्धि की शुद्धि के लिए आस्तिकता, ईश्वर-विश्वास और ईश्वर की सर्वव्यापकता का ज्ञान चाहिए। मंत्र का द्वितीय भाग आस्तिकता और आत्मिक शक्ति को उत्पन्न करता है। (ग) मंत्र का तृतीय भाग—धियो ....प्रचोदयात्, गायत्री-मंत्र के जप का फल बताता है। ईश्वररूपी मणि को हृदय में धारण करने से उसका प्रकाश बुद्धि को शुद्ध करता है। बुद्धि स्वयं सन्मार्ग पर चलने लगती है। वह अकर्तव्य का परित्याग करके कर्तव्य मार्ग को ही ग्रहण करती है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन सुख की ओर अग्रसर होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(१) **ओम्**—अवतीति ओम्, रक्षा करने वाला। रक्षा अर्थ वाली अव् धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय, अवतेष्टिलोपश्च (उणादि० १-१४२) से मन् के अन् का लोप, ज्वरत्वर० (पा० ६-४-२०) से अव् को ऊठ् (ऊ), गुण। अव् + मन् (म्) = ओम्। (२) **भूर्भुवः स्वः**—भूः, भुवः, स्वः, ये तीन ईश्वर के गुण-बोधक महाव्याहृतियाँ हैं। भूः—सत्, सत्ता; भुवः—चित्, ज्ञान, चेतना; स्वः—आनन्द, इन तीन गुणों से युक्त परमात्मा सच्चिदानन्द है। (३) **सवितुः**—सू (जन्म देना, प्रेरणा देना) + तृच् (तृ) = सवितृ + षष्ठी १। (४) **वरेण्यम्**—वरणीय, सर्वश्रेष्ठ, अत्युत्तम, सर्वोत्कृष्ट। वृ + एन्य। (५) **भर्गः**—तेज। भृज् + घञ् (अ)। भृजी भर्जने, पापों को नष्ट करता है। यहाँ भर्गस् नपुंसक लिंग शब्द है। भर्ग का अर्थ वीर्य है। 'वीर्यं वै भर्गः' (शतपथ ब्रा० ५-४-५-१)। (६) **धीमहि**—धारण करते हैं। धा + लुङ् आत्मनेपद + उ० पु० ३। अडागम-रहित लुङ्, Injunctive, है। अधिकांश भाष्यकारों ने धीमहि का अनुवाद—ध्यायामः, चिन्तयामः, ध्यान करते हैं, किया है। 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु में छान्दस संप्रसारण माना है। धा धातु का रूप मानना अधिक उचित है। (७) **प्रचोदयात्**—प्र + चुद् + णिच् + लेट् प्र० पु० १। चुरादिगणी 'चुद् संचोदने' से। प्रेरित करे। विधिलिङ् में प्रचोदयेत् होगा। (८) छन्द की पूर्ति के लिए वरेण्यम् को 'वरेणिअम्' पढ़ा जाता है।

२. सद्गुणों को अपनावें

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

ऋग्० ५-८२-५; यजु० ३०-३; तैत्ति० ब्रा० २-४-६-३;

अन्वय—हे सवितः देव, विश्वानि दुरितानि परा सुव। यत् भद्रं तत् नः आ सुव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(हे सवितः देव) हे संसार के उत्पादक देव, (विश्वानि) सारे, (दुरितानि) दुर्गुणों को, (परा सुव) दूर हटावो। (यत्) जो, (भद्रम्) शुभ, कल्याणकारी हो, (तत्) वह, (नः) हमें, (आ सुव) दीजिए, प्रेरित कीजिए।

हिन्दी अर्थ—हे संसार के उत्पादक देव ! आप हमारे सारे दुर्गुणों को दूर कीजिए और जो कल्याणकारी गुण हों, उन्हें हमें दीजिए (उनको हमारे अन्दर प्रेरित कीजिए)।

Eng. Tr.—O All-creating God ! please keep far from us all evils and let us attain what-ever be beneficial to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में संस्कृति का लक्षण बताया गया है। संस्कृति क्या है ? संस्कार, परिष्कार और संशोधन को संस्कृति कहते हैं। कृषि (Agriculture) से संस्कृति (Culture) को समझा जा सकता है। कृषि में अनावश्यक घास-फूंस को खोदकर निकाला जाता है और उपयोगी बीजों को बोया जाता है तथा उन्हें खाद-पानी आदि देकर पुष्ट किया जाता है। इसी प्रकार संस्कृति में अवांछनीय तत्त्वों, दुर्गुण दोष आदि, को हटाया जाता है और उनके स्थान पर सद्गुणों को प्रतिष्ठित किया जाता है। यह कार्य ही संस्कृति है। दुर्गुण-निवारण और सद्गुण-संस्थापन संस्कृति है। अतएव मंत्र में कहा गया है कि दुर्गुणों, दुर्विचारों, दुःखदायी तत्त्वों को दूर कीजिए और जो भी शुभ तत्त्व, शुभ-विचार, सद्गुण आदि हैं, उन्हें हमें दीजिए। यह संस्कृति का क्रम जीवन भर चलता रहता है। इसके द्वारा ही मनुष्य पापों और दुर्विचारों से बचता है और सद्गुणों में प्रवृत्त होता है। सद्गुणों में यह प्रवृत्ति जब बद्धमूल हो जाती है, तब दुर्भावना आदि का क्षय हो जाता है और सद्गुण ही निरन्तर स्थान पाते हैं। तभी मानव-जीवन देवत्व की ओर अग्रसर होता है।

टिप्पणी—(१) सवितः—संसार के उत्पादक या प्रेरक। सू (उत्पन्न करना, प्रेरणा देना) + तृच् (तृ) + संबोधन। (२) दुरितानि—दुर्गुण। दुरित—दुर् + इ (जाना) + क्त (त)। (३) परा सुव—हटाओ, दूर करो। सू (प्रेरणा देना, जन्म देना, तुदादि) + लोट् म० १। (४) नः—हमको। (५) आ सुव—दो, प्रेरित करो। सू + लोट् म० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३. स्वयं अर्जित धन का उपभोग करें

ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

यजु० ४०-१

अन्वय—इदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत् ईशा वास्यम् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, कस्यस्विद् धनं मा गृधः ।

शब्दार्थ—(इदं सर्वम्) यह सब, (यत् किं च) जो कुछ, (जगत्याम्) गतिशील पृथ्वी में, (जगत्) गतिशील, चर प्राणीमात्र है, वह, (ईशा) परमात्मा से, (वास्यम्) आच्छादित, व्याप्त है । (तेन) उस परमात्मा के द्वारा, (त्यक्तेन) त्याग किए हुए जगत् को, त्याग की भावना से, (भुञ्जीथाः) भोग करो । (कस्यस्विद्) किसी के, (धनम्) धन को, (मा गृधः) मत चाहो, लालच की भावना से मत चाहो ।

हिन्दी अर्थ—इस गतिशील संसार में जो कुछ भी गतिशील या चरात्मक है, वह सब कुछ परमात्मा से व्याप्त है। उस परमात्मा के द्वारा दिए हुए जगत् को त्याग-भाव से भोगो। किसी के धन को लालच की भावना से मत चाहो।

Eng. Tr.—Whatever movable entity has its being in the universe of motion is environed by the Supreme Ruler. Look at the material world with the feeling of renunciation and lust not after anyones riches.

अनुशीलन——जीवन को सुखी बनाने के लिए आस्तिकता की आधारशिला अत्यावश्यक है। जिस प्रकार नींव या आधार के बिना भवन की सुस्थिरता की कल्पना नहीं की जा सकती है; उसी प्रकार आस्तिकता रूपी नींव के बिना सुख जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। परमात्मा सर्वव्यापक है। सृष्टि के प्रत्येक कण में वह विद्यमान है । उसकी सत्ता का अनुभव करना सबसे बड़ी योग्यता है। पाप अज्ञात या गुप्त स्थानों में किया जाता है । परमात्मा की सर्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यापकता मान लेने पर ऐसा कोई स्थान नहीं मिल सकता है, जहाँ परमात्मा न हो। उससे छिपा कर कोई पाप नहीं किया जा सकता है। अतः आस्तिक व्यक्ति विवश होकर पापों से विरत हो जाता है । यही उन्नति और उत्थान की प्रथम सीढ़ी है। मंत्र में जीवन को सुखी बनाने के लिए दूसरा साधन बताया गया है— त्याग की भावना। संसार की प्रत्येक वस्तु को निःस्वार्थ भाव से भोगना तथा आसक्ति को छोड़ना। मनुष्य को अपने कर्मों और पुरुषार्थ के द्वारा जो सुख-सुविधा प्राप्त हुई है, उससे उसे सन्तुष्ट रहना चाहिए। अतएव कहा गया है कि— 'संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम्' सन्तोष ही सबसे बड़ा धन है। धन और ऐश्वर्य में आसक्ति मानवीय दुःखों का कारण है, अतः आसक्ति को छोड़कर त्याग की भावना से ही सांसारिक भोगों को भोगना चाहिए। मंत्र का अन्तिम चरण आदेश देता है कि—लोभ को छोड़ दो, पराई संपति पर कुदृष्टि न डालो, पराए धन की लिप्सा न करो। स्वोपार्जित और पुरुषार्थ-लब्ध धन अपना है। उसका भोग करें। उसी में सुख है, शान्ति है और मानसिक आनन्द है।

टिप्पणी—(१) ईशा—ईश्वर से। ईशा—ईश् (स्वामी होना, अदादि) + क्विप् (०) + तृ० १। (२) वास्यम्—व्याप्त, आच्छादित। वस् (आच्छादित करना, अदादि) + ण्यत् (य)। (३) त्यक्तेन—उस परमात्मा के द्वारा परित्यक्त या प्रदत्त संसार से। स्व-स्वामिभाव संबन्ध को छोड़कर या त्याग की भावना से।। त्यज् + क्त (त) = त्यक्त। (४) भुञ्जीथाः—भुज् (भोग करना, रुधादि) + विधिलिङ् + म० १। (५) मा गृधः—लालच मत करो। गृध् (लालच करना, दिवादि) + लुङ् + म० १। मा के कारण अडागम का अभाव। (६) कस्यस्वित्—किसी का।

४. आजीवन कर्म करते रहें

कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु० ४०–२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत् । एवं त्वयि, इतः अन्यथा न अस्ति । कर्म नरे न लिप्यते ।

शब्दार्थ—(इह) इस संसार में, (कर्माणि) कर्मों को, (कुर्वन् एव) करता हुआ ही, (शतं समाः) सौ वर्ष, (जिजीवेषेत्) जीने की इच्छा करे । (एवं) इस प्रकार से (त्वयि) तेरे लिए मुक्ति है । (इतः अन्यथा) इससे भिन्न प्रकार से, (न अस्ति) मुक्ति नहीं है । (कर्म) अनासक्त भाव से किया हुआ कर्म, (नरे) मनुश्य में, (न लिप्यते) लिप्त नहीं होता है, अर्थात् निष्काम भाव से किए हुए कर्म से मनुष्य वन्धन में नहीं पड़ता है ।

हिन्दी अर्थ—इस संसार में मनुष्य कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे । इस प्रकार से तुम्हारी मुक्ति होगी । इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से मुक्ति नहीं होती है । निष्काम भाव से किया हुआ कर्म मनुष्य में लिप्त नहीं होता है, अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति कर्म बन्धन में नहीं पड़ता ।

Eng. Tr.—One should like to live in this world doing hard work for hundred years. There is no other way for one's salvation. A selfless and detached action keeps the doer away form harm.

अनुशीलन—यह चारों वेदों के मंत्रों में वहुत महत्त्वपूर्ण मन्त्र है । कर्म ही जीवन है, कर्म ही शक्ति है, कर्म ही रक्षक है और कर्म ही गति है । जीवन की सफलता कर्म या पुरुषार्थ पर निर्भर है, अतएव मंत्र का आदेश है कि सौ वर्ष तक सदा कर्मठ, पुरुषार्थी और उद्योगी रहें । जीवन में आलस्य को स्थान न दें, हीनता और निराशा की भावना को स्थान न दें । जहाँ पुरुषार्थ है, वहाँ श्री का निवास है, वहाँ सुख और सम्पत्ति है और वहीं पर आनन्द है । मंत्र में यह भी निर्देश दिया गया है कि कर्म में आसक्ति नहीं होनी चाहिए । कर्तव्य-बुद्धि से कर्म किया जाए, अनासक्ति के भाव से कर्मों में प्रवृत्ति हो और निःस्वार्थ भाव प्रधान हो । अनासक्ति के भाव के उदय होने से जीवन में पवित्रता आती है, शान्ति और स्थिरता आती है । यह मंत्र ही भगवद्गीता के अनासक्ति-योग एवं कर्मयोग का आधार है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसका भाव ही गीता में—कर्मण्येवाधिकारस्ते० श्लोक में दिया गया है। जीवन में पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें। यही जीवन है, यही जागृति है और यही सुख का मूल है।

टिप्पणी—(१) कुर्वन्—करता हुआ। कृ (करना) + शतृ प्र० १। (२) जिजीविषेत्—जीने की इच्छा करे। जीव् (जीना) + इच्छा अर्थ में सन् (स) + विधिलिङ् प्र० १। (३) त्वयि—तेरे लिए मुक्ति है। (४) लिप्यते—लिप्त होता है। लिप् + लट् प्र० १।

५. परिवार में प्रेम और सद्भाव हो

सहृदयं सांमनस्यम्, अविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत, वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

अथर्व० ३-३०-१

अन्वय—सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं वः कृणोमि। जातं वत्सम् अघ्न्या इव, अन्यः अन्यम् अभिहर्यत।

शब्दार्थ—(सहृदयम्) सहृदयता, प्रेमभाव, (सांमनस्यम्) एकचित्तता, मन का शुभ विचारों से युक्त होना, (अविद्वेषम्) द्वेष से रहित होना, (वः) तुम्हारे लिए, (कृणोमि) मैं करता हूँ। (जातम्) शीघ्र उत्पन्न, (वत्सम्) बछड़े को, (अघ्न्या इव) जैसे गाय, उसी प्रकार, (अन्यः अन्यम्) परस्पर, एक-दूसरे से, (अभि हर्यत) प्रेम करो।

हिन्दी अर्थ—मैं (परमात्मा) सहृदयता, सांमनस्य और द्वेषहीनता तुम्हारे लिए उत्पन्न करता हूँ। नवजात बछड़े को जैसे गाय प्रेम करती है, उसी प्रकार तुम सब परस्पर प्रेमभाव रखो।

Eng. Tr.—O Men ! I (God) give you the qualities of wholeheartedness, similar mentality and fellow-feeling without enmity. As the cow loves her new calf, so you should love yuor fellow-neighbour.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—इस मंत्र में संगठन के लिए चार बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। वे हैं—१. हृदय की एकता, २. मन की एकता, ३. द्वेष का अभाव, ४. प्रेम और सद्भाव। हृदय और मन की एकता संगठन के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है—द्वेष का अभाव, द्वेष का परित्याग। लक्ष्य आदि एक होने पर भी यदि संगठित होने वाले समाज में पारस्परिक द्वेष है, कलह है, ईर्ष्या है और मनोमालिन्य है, तो वह समाज सुसंगठित नहीं हो सकता है। अतः आवश्यक है कि संगठन को सुदृढ करने के लिए पारस्परिक द्वेष, मनोमालिन्य और ईर्ष्या को तिलांजलि दी जाए। इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यकता है—परस्परिक प्रेम और सहानुभूति की। जैसे गाय अपने नए बछड़े से घनिष्ट प्रेम करती है। उसके लिए प्राण देने को भी उद्यत रहती है। इसी प्रकार यदि समाज में घनिष्ट प्रेम का प्रवाह होगा, एक दूसरे के लिए प्राण देने को उद्यत रहेंगे और सदा एक दूसरे का हित-चिन्तन करेंगे, तो वह समाज अवश्यमेव सुसंगठित होगा।

टिप्पणी—(१) **सहृदयम्**—सहृदयता। समानं हृदयम्, समान को स। (२) **सांमनस्यम्**—शुभ मन वाला होना। सं + मनस् + ष्यञ् (य)। भाव अर्थ में ष्यञ्। (३) **अविद्वेषम्**—द्वेषहीनता। अ + विद्वेष। (४) **कृणोमि**—करता हूँ। कृ (करना, स्वादि) + लट् उ० १। (५) **वः**—तुम्हारे लिए। युष्मद् + च० ३। युष्मभ्यम् के स्थान पर वः है। (६) **अभि हर्यंत**—चाहो, प्रेम करो। हर्य् (चाहना, प्रसन्न होना, स्वादि) + लोट् म० ३। (७) **अघ्न्या**—गाय। अघ्न्या अहन्तव्या, गाय अवध्य होती है, अतः उसे अघ्न्या कहते हैं। नञ् + हन् + यक् (य) + टाप् (आ)। उणादि से सिद्ध होता है।

६. परिवार में सौमनस्य हो

अनुव्रतः पितुः पुत्रो, मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

अथर्व० ३-३०-२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—पुत्रः पितुः अनुव्रतः मात्रा संमनाः भवतु। जाया पत्ये मधुमती शन्तिवां वाचं वदतु।

शब्दार्थ—(पुत्रः) पुत्र, (पितुः) पिता के, (अनुव्रतः) अनुकूल कर्म करने वाला हो, और (मात्रा) माता के साथ, (संमनाः) समान मन वाला हो अर्थात् माता के निर्देशानुसार काम करने वाला, (भवतु) हो। (जाया) पत्नी, (पत्ये) पति से, (मधुमतीम्) मधुर, (शन्तिवाम्) सुखकर, शान्तिप्रद, (वाचम्) वाणी, (वदतु) बोले।

हिन्दी अर्थ—पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और माता के साथ समान मन वाला हो। पत्नी पति से मधुर और सुखद वाणी बोले।

Eng. Tr.—Let the son be obedient to his parents and agreeable to his mother. A wife should speak sweet and beneficial tongue to her husband.

अनुशीलन—इस मन्त्र में जीवन को सुखी बनाने के लिए पिता-पुत्र, माता-पुत्र और पति-पत्नी के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। पुत्र के लिए आदेश दिया गया है कि वह पिता का आज्ञाकारी हो। व्रत का अर्थ है—कर्म, संयम, अनुशासन। अनुव्रतः का अभिप्राय है कि पिता के जैसे कर्म हैं, उसका जैसा संयम और आचरण है, वह जिन नियमों और परम्पराओं का पालन करता है, उसी प्रकार उसका पुत्र भी सत्कर्मों में प्रवृत्त हो, संयम और नियमों का पालन करे तथा वंश-परम्परागत सद्गुणों का अपने अन्दर समावेश करे। माता के प्रति पुत्र का कर्तव्य है कि वह संमनाः हो। माता के हृदय से उसका हृदय मिला हुआ हो। माता का आज्ञाकारी हो, माता का हित-चिन्तक हो और मातृभक्त हो। माता यदि पुत्र के कर्मों से प्रसन्न है तो उसका आशीर्वाद पुत्र को सदा प्राप्त होता रहेगा। स्त्री या पत्नी के कर्तव्यों का निर्देश है कि वह पतिव्रता हो, पति का सदैव हित सोचे, पति से मधुर वचन बोले। स्त्री का प्रत्येक वचन मधुरता से भरा हुआ हो। उसके वचन शान्तिदायक और सुखदायक हों। सुखी जीवन और सुखी परिवार के लिए इन गुणों का होना आवश्यक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(१) अनुव्रतः—अनु-अनुकूल, व्रत-कर्म करने वाला अर्थात् पिता का आज्ञापालक हो। (२) पितुः—पितृ + ष० १। (३) मात्रा—माता के साथ। मातृ + तृ० १। (४) संमनाः—सम्-समान, सदृश, मनस्-मन वाला। माता से पुत्र का मन मिला हुआ हो अर्थात् माता जैसा कहे वैसा करे। (५)पत्ये--पति के लिए। पति + च० १। (६) वदतु—बोले। वद् (बोलना, भ्वादि) + लोट् प्र० १। (७) शन्तिवाम्—सुखद, शान्तिदायक। शम् + ति + मत्वर्थक व + टाप् (आ) + द्वि० १। शम्-सुख, कल्याण, शान्ति।

७. परिवार में हार्दिक एकता हो

संज्ञपनं वो मनसः, अथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं, तेन संज्ञपयामि वः॥

अथर्व० ६-७४-२

अन्वय—वः मनसः संज्ञपनम्, अथो हृदः संज्ञपनम्, अथो भगस्य यत् श्रान्तम्, तेन वः संज्ञपयामि।

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारे, (मनसः) मन का, (संज्ञपनम्) सांमनस्य, एकीकरण, एकता हो। (अथो) और, (हृदः) हृदय का, (संज्ञपनम्) सांमनस्य हो। (अथो) और, (भगस्य) ऐश्वर्य के देवता का, (यत्) जो, (श्रान्तम्) श्रमजन्य तप या पुण्य है, (तेन) उससे, (वः) तुम्हें, (संज्ञपयामि) सांमनस्य से युक्त करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—तुम्हारे मन की एकता हो (तुम्हारे मन एक हों)। तुम्हारे हृदय एक हों। ऐश्वर्य के देव भग का जो श्रम-जनित तेज है, उससे तुम्हें एकता के भाव से युक्त करता हूँ।

Eng. Tr.—Let there be harmony in your minds and hearts. I harmonise you by the lustre of the Lord of the riches.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि परिवार को सुखी बनाने के लिए पारिवारिक एकता आवश्यक है। परिवार के व्यक्तियों के मन और हृदय मिले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए हों। उनमें अपनी श्रीवृद्धि की कामना हो और वे कठिन परिश्रम के लिए सदा संनद्ध रहें।

इस मंत्र में संज्ञान की शिक्षा दी गई है। संज्ञान का अर्थ है—ठीक ज्ञान, एकत्व की भावना, तादात्म्य की अनुभूति। परिवार हो या समाज, सर्वत्र तादात्म्य की अनुभूति आवश्यक है। जहाँ परस्पर समन्वय, सद्‌भाव, सहानुभूति और समवेदना होगी, वहीं श्रीवृद्धि होगी। श्रीवृद्धि का सूत्र या मूल है—संज्ञान और श्रम।

मंत्र में भग के साथ श्रान्त को रखा गया है। जहाँ अथक परिश्रम है, वहाँ ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य और श्रम, ये दोनों साथ चलते हैं। जहाँ एक का साथ छूटा, वहाँ दूसरा असहाय हो जाता है। कठिन श्रम की परिणति ही ऐश्वर्य या वैभव है। अतएव मंत्र में शिक्षा दी गई है कि ऐश्वर्य का साधन परिश्रम है, उस परिश्रम की भावना से तुम्हें युक्त करता हूँ। मन और हृदय की एकता हो, श्रम का उसमें समन्वय हो तो सफलता, सिद्धि और श्री स्वयं प्राप्त होती है।

टिप्पणी (१) संज्ञपनम्—सांमनस्य, एकता का भाव, एकीकरण। सम् + ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०) + णिच् + ल्युट् (अन)। ज्ञाप् को ह्रस्व होकर ज्ञप्। (२) वः—तुम्हारा। युष्माकम् का संक्षिप्त रूप है। (३) भगस्य—भग का। ऐश्वर्य के देवता का नाम भग है। (४) श्रान्तम्—श्रमजनित तप या पुण्य। श्रान्त—थका हुआ। यहाँ थकान से उत्पन्न तप या पुण्य अर्थ है। (५) संज्ञपयामि—एकता के भाव से युक्त करता हूँ। सम् + ज्ञा (जानना) + णिच् + लट् उ० १, ज्ञाप् को ज्ञप् होता है। (६) वः—तुम्हें। युष्मान् के स्थान पर है।

८. परिवार में सौमनस्य हो

येषामध्येति प्रवसन्, येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुप ह्वयामहे, ते नो जानन्त्वायतः॥

अथर्व० ७-६०-३; यजु० ३-४२

अन्वय—प्रवसन् येषाम् अध्येति, येषु बहुः सौमनसः। (तान्) गृहान् उप ह्वयामहे। ते आयतः नः जानन्तु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(प्रवसन्) प्रवास को जाता हुआ, (येषाम्) जिनको, जिन परिवार वालों को, (अध्येति) स्मरण करता है। (येषु) जिनमें, जिन परिवार वालों में, (बहुः) बहुत अत्यधिक, (सौमनसः) सौहार्द, हार्दिक एकता है। (तान् गृहान्) उन घरों को, उन परिवार वालों को, (उप ह्वयामहे) हम बुलाते हैं, हम निमन्त्रित करते हैं। (ते) वे लोग, (आयत) आते हुए, आने वाले, (नः) हमको, (जानन्तु) जानें।

हिन्दी अर्थ—प्रवास को जाता हुआ व्यक्ति जिन परिवार वालों को स्मरण करता है, जिन (परिवार वालों) में हार्दिक एकता है, ऐसे परिवार वालों को हम आमन्त्रित करते हैं। वे लौटकर आने पर हम लोगों को पहचानें।

Eng. Tr.—We invite those family-members, who are in perfect harmony and are remembered dy those who are going abroad. On our return from abroad they (family-members) should recognise us.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि पारिवारिक सुख का मूल है—सौमनस्य। सौमनस्य का अर्थ है—सद्भावना, हार्दिक प्रेम और सामंजस्य। जहाँ प्रेम है, सहानुभूति है, समवेदना है और हार्दिक एकता है, वही परिवार सदा सुखी रहता है। उस परिवार की श्रीवृद्धि होती है, समृद्धि होती है और धन-धान्य की वृद्धि होती है। अतएव मंत्र में सूत्ररूप में सुखी परिवार का साधन बताया है—**'येषु सौमनसो बहुः'**। परिवार की समृद्धि मिलजुल कर रहने और परस्पर प्रेम-भाव पर निर्भर है।

जब परिवार वालों में एकता होगी, तब वे एक दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होंगे। कष्ट के अवसर पर अनेक सहयोगी हो जाने से कष्ट बंट जाता है। परिवार के सदस्यों का थोड़ा थोड़ा सहयोग मनुष्य का बहुत बड़ा सहारा हो जाता है और वह बड़ी विपत्तियों को भी सरलता से पार कर लेता है।

मंत्र में यह भी शिक्षा दी गई है कि यदि परिवार का कोई सदस्य प्रवास में जाता है तो उसे सदा स्मरण करते रहना चाहिए। उससे आवश्यक पत्राचार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि बनाए रखना चाहिए। वह जब लौटकर आवे तो उसका हार्दिक स्वागत-सत्कार किया जाए।

टिप्पणी—(१) अध्येति—स्मरण करता है। अधि+इ (स्मरण करना, अदादि, पर०)+लट् प्र० १। इसके साथ षष्ठी होती है, अतः येषाम् में षष्ठी है। (२) प्रवसन्—प्रवास में या परदेश जाता हुआ। प्र+वस् (रहना, भ्वादि, पर०)+शतृ (अत्) प्र० १। (३) सौमनसः—मित्रता, हार्दिक प्रेम, एकता। सुमनस्+अण् (अ), भाव अर्थ में। (४) गृहान्—घर वालों को, परिवार वालों को। (५) उप ह्वयामहे—बुलाते हैं, आमन्त्रित करते हैं। उप+ह्वे (बुलाना, भ्वादि, आ०)+लट् उ० ३। (६) जानन्तु—जानें। ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०)+लोट् प्र० ३। ज्ञा को जा। (७) आयतः—आते हुए, आने वाले, आने पर। आ+इ (जाना, अदादि)+शतृ द्वि० ३।

९. परिवार में सौमनस्य हो

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि,
एकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः,
सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

अथर्व० ३-३०-७

अन्वय—सध्रीचीनान् वः संमनसः कृणोमि। संवननेन सर्वान् एकश्नुष्टीन् (कृणोमि)। अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव, सायंप्रातः वः सौमनसः अस्तु।

शब्दार्थ—(सध्रीचीनान्) मिलकर साथ चलने वाले, (वः) तुम्हें, तुम लोगों को, (संमनसः) समान मन वाला, हार्दिक एकता वाला, (कृणोमि) करता हूँ। (संवननेन) सामंजस्य के द्वारा, (सर्वान्) सबको, (एकश्नुष्टीन्। कृणोमि) एक गुच्छे की तरह समन्वित करता हूँ। (अमृतम्) अमृत की, (रक्ष-माणाः) रक्षा करते हुए, (देवाः इव) देवों की तरह, (सायंप्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल, दिनभर (वः) तुममें, (सौमनसः) हार्दिक एकता, (अस्तु) होवे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—मिलकर साथ चलने वाले तुम लोगों को मैं हार्दिक एकता से युक्त करता हूँ । सौमनस्य के द्वारा तुम सबको एक गुच्छे के तुल्य समन्वित करता हूँ । अमृत की रक्षा करने वाले देवों में जिस प्रकार सौमनस्य था, उसी प्रकार सायं और प्रातः (दिनभर) तुममें भी सौमनस्य हो ।

Eng. Tr.—I (God) harmonise all the fellow-members with the feeling of cordiality. I synthesize you, like a bouquet, with the feeling of fellowship. let there be concord amongst you throughout the day, as the gods had concord, while protecting the nectar.

अनुशीलन—इस मंत्र में परिवार को सुखी बनाने के लिए बहुत सुन्दर उपदेश दिया गया है कि— मिलकर चलो; तुम्हारे मन एक हों, परिवार में फूल के गुच्छे की तरह रहो, परिवार में दिनभर सौमनस्य हो और परिवार की इसी प्रकार सुरक्षा करो, जैसे देवता अमृत की रक्षा करते हैं ।

परिवार की समृद्धि के लिए आवश्यक है कि परिवार के सभी सदस्यों में भावनात्मक एकता हो । वे एकमत होकर ही किसी कार्य को करें । मिलकर चलने का भाव यह है कि परिवार में एकरूपता हो । वे किसी एक के कहने में चलें । सबकी राय अलग-अलग न हो ।

मंत्र में बहुत सुन्दर बात कही गई है कि परिवार के सभी सदस्य फूल के तुल्य हैं और परिवार फूलों का गुच्छा है । जैसे गुलदस्ते में सारे फूल मिलकर एक समन्वित सौंदर्य प्रकट करते हैं, इसी प्रकार परिवार के सारे सदस्य एक गुच्छे की तरह मिलकर काम करें ।

मंत्र में आगे शिक्षा दी गई है कि परिवार के सभी सदस्यों में दिनभर सौमनस्य हो । उनके उठने-बैठने, वार्तालाप, कार्य-कलाप में सज्जनता और शिष्टता हो । प्रत्येक में विनय, शील, सौजन्य हो ।

मंत्र की यह भी शिक्षा है कि परिवार एक निधि है, कोष है, खजाना है । इसकी उसी प्रकार रक्षा करनी चाहिए, जैसे देवता अमृत की रक्षा करते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभी के कठिन परिश्रम और जागरूकता से ही परिवार की उन्नति होती है, परिवार का ऐश्वर्य बढ़ता है और परिवार की सर्वत्र कीर्ति फैलती है।

टिप्पणी—(१) **सध्रीचीनान्**—साथ चलने वाले। सह (साथ) + अञ्च् (चलना) + ख (ईन) = सध्रीचीन + द्वि० ३। सह को सध्रि आदेश। (२) **संमनसः**—समान मन वाला। संमनस् + द्वि० ३। (३) **कृणोमि**—करता हूँ। कृ (करना, स्वादि) + लट् उ० १। (४) **एकश्नुष्टीन्**—एक गुच्छे की तरह मिले हुए। श्नुष्टि—गुच्छा, बंडल। (५) **संवननेन**—हार्दिक एकता से। (६) **रक्षमाणाः**—रक्षा करते हुए। रक्ष् (रक्षा करना, भ्वादि, आ०) + लट् > शानच् (आन) + प्र० ३। (७) **सौमनसः**—हार्दिक एकता, हार्दिक प्रसन्नता। सुमनस् + भाव अर्थ में अण्।

१०. परिवार में समन्वय हो

वयमु त्वा गृहपते जनानाम्,
अग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु
तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥

ऋग्० ६-१५-१९; तैत्ति० ब्रा० ३-५-१२-१

अन्वय—हे गृहपते अग्ने, जनानां वयम् उ त्वा समिधा बृहन्तम् अकर्म। नः गार्हपत्यानि अस्थूरि सन्तु। नः तिग्मेन तेजसा सं शिशाधि।

शब्दार्थ—(हे गृहपते अग्ने) हे गृह के अधिपति यज्ञिय अग्नि, (जनानाम्) लोगों में, सामान्य जनों में से, (वयम् उ) केवल हमने ही, (त्वा) तुझको, (समिधा) समिधाओं से, (बृहन्तम्) बड़ा, प्रदीप्त, प्रज्वलित, (अकर्म) किया है। (नः) हमारे, (गार्हपत्यानि) गृहस्थधर्म, पारिवारिक सम्बन्ध, (अस्थूरि) अपृथक्, समन्वित, समन्वययुक्त, (सन्तु) हों। (नः) हमें, (तिग्मेन) तीक्ष्ण, उग्र, (तेजसा) तेज से, (सं शिशाधि) तीक्ष्ण कीजिए।

हिन्दी अर्थ—हे गृहपति यज्ञिय अग्नि! सामान्य जनों में से केवल हमने ही तुझको समिधाओं से प्रदीप्त किया है। हमारे पारिवारिक सम्बन्ध समन्वय से युक्त हों। हमें तीक्ष्ण तेज से तेजस्वी कीजिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng. Tr.—O Fire-God, protector of our houses ! only we have kindled you with the fuel-sticks. Let our family relations be harmonious. Make us lustrous by sharp splendour.

अनुशीलन—इस मंत्र में दैनिक यज्ञ से पारिवारिक समन्वय और तेजस्विता का वर्णन किया गया है । मंत्र में वर्णन किया गया है कि हम लोग ही प्रतिदिन यज्ञ करते हैं । अतः हमारे परिवार में समन्वय हो और हमें तेजस्विता प्राप्त हो ।

इस मंत्र से स्पष्ट है कि दैनिक यज्ञ पारिवारिक सौमनस्य का आधार है । मंत्र में कहा गया है कि—'अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु' हमारा गृहस्थ-धर्म एकांगी न हो । स्थूरि का अर्थ है—एकांगी, अस्थूरि—सर्वांगीण, समन्वययुक्त । गृहस्थ धर्म समन्वययुक्त कब हो सकता है ? जब परिवार में परस्पर सद्भाव हो, एकता हो, मिल कर काम करने की भावना हो और एक-लक्ष्यता हो । जब परिवार के सभी व्यक्ति मिलकर काम करेंगे और उनका लक्ष्य एक होगा, तभी समन्वय की भावना पुष्ट होगी । यह काम यज्ञ करता है । यज्ञ के ये लाभ हैं—प्रतिदिन मिल कर यज्ञ करने से परस्पर सद्भाव बढ़ता है, सात्त्विकता आती है, आस्तिकता के भाव बढ़ते हैं और मन में जो ईर्ष्या और द्वेष के भाव होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार परिवार में समन्वय स्वतः स्थापित हो जाता है ।

यज्ञ का दूसरा लाभ यह है कि मनुष्य में तेजस्विता आती है । जहां सत्त्व गुण है, सात्त्विकता है और आस्तिकता है, वहां तेजस्विता स्वयं रहती है । तेजस्विता एक प्रकार से सत्त्वगुण का ही प्रकाशन है । अन्दर सात्त्विकता है तो मुंह पर तेज स्वयं दिखाई देगा ।

टिप्पणी—(१) उ—और, वस्तुतः, केवल । वयम् उ—केवल हमने । (२) **अकर्म**—किया है । कृ (करना, स्वादि, पर०) + लुङ् + उ० ३ । Root aorist है । (३) **समिधा**—समिधाओं से । समिध् + तृ० १ । (४) **अस्थूरि**—स्थूरि—एकांगी, अकेले चलने वाला, अलग रहने वाला । अस्थूरि—मिलकर चलने वाला, समन्वय युक्त ढंग से रहने वाला । एक घोड़े वाले रथ को स्थूरि कहते हैं । दो घोड़े वाले रथ को अस्थूरि । अतः मिलकर चलने वाला अर्थ है । (५) **गार्हपत्यानि**—गृहस्थ-संबन्ध, पारिवारिक संबन्ध । गृहपति + ण्य (य) + प्र० ३ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(६) तिग्मेन—तीक्ष्ण, तीव्र, तेज धार वाला। (७) तेजसा—तेज से। तेजस् + तृ० १। (८) सं शिशाधि—तीक्ष्ण करो। यहां उग्र तेज से तेजस्वी करो अर्थ है। शो (तीक्ष्ण करना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० १।

११. परिवार में मिलकर रहें

इहैव स्त माप याताध्यस्मत्
पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु
मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु॥

अथर्व० ६–७३–३

अन्वय—हे सजाताः, इह एव स्त, अस्मत् अधि मा अप यात। पूषा परस्तात् वः अपथं कृणोतु। वास्तोष्पतिः वः अनु जोहवीतु। मयि वः रमतिः अस्तु।

शब्दार्थ—(हे सजाताः) हे समान कुल में उत्पन्न हुए लोगों, (इह) यहाँ, परिवार में, (एव) ही, (स्त) होओ, रहो। (अस्मत् अधि) हमसे दूर, (मा) मत, (अप यात) जाओ। (पूषा) पुष्टिकर्ता देव, (परस्तात्) आगे के मार्ग को, इधर उधर जाने के मार्ग को, (वः) तुम्हारे लिए, (अपथम्) दुर्गम, अगम्य, (कृणोतु) कर दे। (वास्तोष्पतिः) गृहस्वामी यज्ञिय अग्नि, (वः) तुम्हें, (अनु जोहवीतु) अनुकूलता से बुलावे, पुकारे। (मयि) मेरे विषय में, (वः) तुम्हारी, (रमतिः) विश्वसनीयता, विश्वास, अनुकूलता, (अस्तु) हो।

हिन्दी अर्थ—हे समान कुल में उत्पन्न हुए बन्धुओ ! तुम लोग यहीं रहो, हमसे दूर न जाओ। पूषा देव तुम्हारे आगे के मार्ग को दुर्गम कर दे। गृहपति यज्ञिय अग्नि तुम्हें अनुकूलता से हमारे पास बुलावें। मुझमें तुम्हारा विश्वास हो।

Eng. Tr.—O Family-members ! Stay here. Don't go away far from us. Let the god Pushan make your path difficult. May Lord of the houses, the domestic fire, call you to us agreeably. You should confide in me.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—इस मंत्र में कामना की गई है कि परिवार के व्यक्ति मिलकर रहें, एक स्थान पर रहें और उनमें परस्पर सद्भाव हो। जहाँ तक संभव हो, परिवार के लोगों को छोड़कर न जावे। संवन्धि-जनों का वियोग दुःखकर होता है, अतः साथ रहने की कामना की गयी है। यदि कोई परिवार के लोगों को छोड़कर दूर रहना चाहता है तो उसके लिए निषेध किया गया है।

मंत्र के अन्तिम पद में कहा गया है कि परस्पर विश्वास का भाव हो, अनुकूलता हो और पारस्परिक आकर्षण हो। रमतिः का भाव यह भी है कि एक दूसरे के मिलने पर आनन्द और आह्लाद हो। परिवार में जब तक विश्वास की मात्रा अधिक रहती है, तभी तक समन्वय संभव है। जब किसी कारणवश परस्पर अविश्वास की मात्रा उत्पन्न होती है, तब परिवार में विघटन शुरू होता है। इस विघटन को बचाने के लिए ही परस्पर विश्वास को आवश्यक बताया गया है।

टिप्पणी—(१) **स्त**—होओ, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (२) **मा अप यात**—दूर मत जाओ। अप + या (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (३) **अस्मत् अधि**—हमसे दूर। दूर अर्थ में अधि के साथ पंचमी है। (४) **परस्तात्**—आगे, आगे के मार्ग को। (५) **अपथम्**—कुपथ, दुर्गम मार्ग। अ + पथिन् + अ। (६) **कृणोतु**—करे। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लोट् प्र० १। (७) **वास्तोष्पतिः**—गृहदेवता, गृहस्वामी। वास्तु (घर) + पति (स्वामी)। (८) **अनु जोहवीतु**—अनुकूलता से बुलावे। ह्वें (बुलाना, भ्वादि, पर०) + यङ् लुक् + लोट् प्र० १। वार वार बुलाना अर्थ में यङ् और उसका लोप। (९) **सजाताः**—समान परिवार वाले। स—एक परिवार में, जात-उत्पन्न। समान को स आदेश। (१०) **रमतिः**—रमण, अनुकूलता, विश्वास।

१२. परिवार में योगक्षेम हो

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते,
सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ऋग्० ७–५४–३; तैत्ति० ३–४–१०–१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—हे वास्तोष्पते, ते शग्मया रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि । नः क्षेमे उत योगे वरं पाहि । यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात ।

शब्दार्थ—(हे वास्तोष्पते) हे गृहपति यज्ञिय अग्नि, (ते) तेरे, (शग्मया) सुखद या शक्तिशाली, (रण्वया) रमणीय, (गातुमत्या) गतिशील, प्रगतिशील, (संसदा) संपर्क से, संगति से, (सक्षीमहि) संगत हों, युक्त हों । (नः) हमें, (क्षेमे) धन-संरक्षण में, (उत) और, (योगे) धन-प्राप्ति में, अर्थात् योगक्षेम में, (वरम्) अच्छी तरह, ठीक ढंग से, (पाहि) रक्षा करो, बचाओ । (यूयम्) तुम सब, (नः) हमें, (सदा) सर्वदा, (स्वस्तिभिः) कल्याणों से, कल्याण प्रदान करके, (पात) रक्षा करो ।

हिन्दी अर्थ—हे गृहपति यज्ञिय अग्नि ! हम तुम्हारी शक्तिशाली, मनोरम और प्रगतिशील संगति से युक्त हों । तुम हमारी योग और क्षेम में रक्षा करो । तुम सब हमें सदा कल्याण प्रदान करके सुरक्षित रखो ।

Eng. Tr.—O Lord of the houses, the domestic fire ! Let us be blessed with your forceful, pleasant and progressive company. May you protect us in acquisition and preservation of wealth. May you protect by bestowing welfare on us.

अनुशीलन—इस मंत्र में पारिवारिक अग्नि की उपासना का वर्णन है और प्रार्थना की गई है कि इस अग्नि के द्वारा हमारा योग-क्षेम हो तथा हमें सभी सुख मिलें । पारिवारिक अग्नि को ही गार्हपत्य अग्नि कहते हैं । प्रत्येक गृहस्थ परिवार में इस अग्नि का रहना आवश्यक माना गया है।

गार्हपत्य अग्नि सुखद, रमणीय और प्रगतिशील बताई गई है । इसका अभिप्राय यह है कि गार्हपत्य अग्नि में नित्य हवन करने से सुख की वृद्धि होती है और निरन्तर प्रगति होती है । अग्नि की अधर्षणीयता शिक्षा देती है कि जीवन में अधृष्य हो, अजेय हो । अग्नि का ऊर्ध्वमुख होना शिक्षा देता है कि सदा उच्च लक्ष्य की ओर दृष्टि रखो । कभी नीचे न देखो । कभी निम्नमार्ग की ओर प्रवृत्त न हो । अग्नि में प्रकाश है, तेजस्विता है, इससे शिक्षा मिलती है कि सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश फैलाओ और जीवन में तेजस्वी रहो ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंत्र में आगे योग-क्षेम की प्रार्थना की गई है। अप्राप्त धन की प्राप्ति को योग कहते हैं और प्राप्त धन की सुरक्षा को क्षेम। इस प्रकार लाभ और सुरक्षा को संमिलित कर योगक्षेम शब्द बना है। इसका सामान्य अर्थ कुशलता है। परिवारिक यज्ञ के द्वारा योग-क्षेम होता है और सभी प्रकार की कुशलता परिवार में रहती है।

टिप्पणी—(१) **वास्तोष्पते**—हे गृहस्वामिन्! यहाँ यज्ञिय अग्नि को गृहस्वामी और गृहरक्षक बताया गया है। वास्तु (गृह) + पति (स्वामी) = वास्तोष्पति + सं० १। घर का स्वामी। (२) **शग्मया**—शक्तिशाली या सुखद। शग्म का अर्थ शक्तिशाली, समर्थ, शक्त और सुखद है। शग्मा + तृ० १। (३) **संसदा**—संगति से, संपर्क से, साथ बैठने से। सम् (साथ) + सद् (बैठना) + तृ० १। साथ बैठने के आधार पर ही संसद् सभागृह के लिए है। (४) **सक्षीमहि**—युक्त हों, प्राप्त करें। सच् (साथ देना, साथ चलना, भ्वादि, आ०) + विधिलिङ् + उ० ३। (५) **रण्वया**—मनोरम, रमणीय। रण्वा + तृ० १। (६) **गातुमत्या**—गतिशील, प्रगतिशील। गातु का अर्थ गति, प्रगति, मार्ग है। गातु + मत् + ई + तृ० १। (७) **पाहि**—रक्षा करो। पा (रक्षा करना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (८) **योगे क्षेमे**—योगक्षेम में। अप्राप्त धन की प्राप्ति योग है और प्राप्त धन की सुरक्षा क्षेम है। अतः योगक्षेम का अर्थ पूर्ण कुशलता है। (९) **पात**—रक्षा करो। पा (रक्षा करना, अदादि) + लोट् म० ३।

१३. परिवार में योग-क्षेम हो

उपोहश्च समूहश्च, क्षत्तारौ ते प्रजापते।
ताविहा वहतां स्फातिं, बहुं भूमानमक्षितम्॥

अथर्व० ३-२४-७

अन्वय—हे प्रजापते, उपोहः च समूहः च ते क्षत्तारौ। तौ इह स्फातिम् आ वहताम्, बहुम् अक्षितं भूमानम् (आवहताम्)।

शब्दार्थ—(हे प्रजापते) हे प्रजा के पालक परमात्मन्, (उपोह चः) संग्रह करना, (समूहः च) ठीक संवर्धन, ठीक विनियोग, (ते) तेरे, (क्षत्तारौ) दूत, अग्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूत, सारथि हैं। (तौ) वे दोनों, (इह) यहाँ, इस परिवार में, (स्फातिम्) समृद्धि को, (आ वहताम्) लावें। (बहुम्) बहुत, (अक्षितम्) अक्षय, (भूमानम्) पूर्णता, प्रचुरता या बाहुल्य को लावें।

हिन्दी अर्थ—हे प्रजा के पालक परमात्मन्! धन का संग्रह और संवर्धन ये दोनों तेरे अग्रदूत हैं। ये दोनों यहाँ समृद्धि को लावें। ये बहुत अधिक अक्षय परिपूर्णता को भी दें।

Eng. Tr.—O Lord of the universe! acquisition and preservation of wealth are your pioneers. Let them fetch here prosperity and abundance of immutable wealth.

अनुशीलन—इस मंत्र में योग-क्षेम के लिए उपोह और समूह शब्द आए हैं। इन्हें समृद्धि का अग्रदूत या सारथि कहा गया है। उपोह और समूह ये विवेक की दो शक्तियां हैं। एक शक्ति का काम है—ग्रहण, संग्रह और लाभ। यह शक्ति लाने का काम करती है। धन कहां से आवे? कैसे आवे? इन विषयों पर विचार करना विवेक की उपोह शक्ति का काम है। धनार्जन और धनागम संबन्धी विषयों का विवेचन और निर्णय उपोह का काम है। इसको प्रचलित रूप में 'योग' कहते हैं।

विवेक की दूसरी शक्ति समूह है। समूह का काम है—प्राप्त धन का संरक्षण, उसका समुचित उपयोग और विनियोग। विवेक के ये दो पक्ष हैं। इनको प्रजापति और समृद्धि का अग्रदूत कहा गया है। विचार करने से ज्ञात होता है कि विवेक के ये दो पक्ष पति-पत्नी पर भी लागू होते हैं। पुरुष का काम है—धन-संग्रह, धनार्जन, धन-प्राप्ति की चिन्ता करना। दूसरी ओर पत्नी या स्त्री का काम है—प्राप्त धन को सुरक्षित रखना, उसका समुचित उपयोग करना। इस प्रकार उपोह और समूह का समन्वित रूप योगक्षेम है। इसी प्रकार इन दोनों शक्तियों का समन्वय दम्पती हैं।

टिप्पणी—(१) उपोहः—समीप लाना, संग्रह करके लाना। उप + ऊह् (चलना, हटना) + अ। (२) समूहः—धन को एकत्र करके रखना। समूह का अभिप्राय है धन का संरक्षण और उसका ठीक विनियोग। उपोह और समूह शब्द योग एवं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षेम अर्थ में हैं। सम् + ऊह् + अ। (३) क्षत्तारौ—सारथि, दूत, अग्रदूत। क्षद् (काटना) + तृ + प्र० २। (४) आ वहताम्—लावें। आ + वह् (लाना, भ्वादि-पर०) + लोट् प्र० २। (५) स्फातिम्—समृद्धि, उन्नति। स्फाय् (बढ़ना, मोटा होना) + क्तिन् (ति) + द्वि० १। (६) भूमानम्—बहुत्व, पूर्णता, प्रचुरता। बहु (बहुत) + इमन् + द्वि० १। बहु को भू आदेश। (७) अक्षितम्—अक्षय, अनश्वर। अ + क्षि (नष्ट होना) + क्त (त)। विशाल अक्षय समृद्धि प्राप्त हो।

१४. परिवार में धर्म और ऐश्वर्य हो

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च,
वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च॥

अथर्व० १२-५-७

अन्वय—ओजः च, तेजः च, सहः च, बलं च, वाक् च, इन्द्रियं च, श्रीः च, धर्मः च॥

शब्दार्थ—(ओजः च) ओज या ओजस्विता, (तेजः च) तेज या तेजस्विता, (सहः च) शक्ति या सामर्थ्य, (बलं च) बल, (वाक् च) वाणी, बोलने की शक्ति, (इन्द्रियं च) इन्द्रियाँ, इन्द्रियों में शक्ति, (श्रीः च) लक्ष्मी, ऐश्वर्य, (धर्मः च) और धर्म हों।

हिन्दी अर्थ—परिवार में ओज, तेज, शक्ति, बल, भाषण शक्ति, हृष्ट-पुष्ट इन्द्रियाँ, लक्ष्मी और धर्म का निवास हो।

Eng. Tr.—May these be in our family, viz. vigour, lustre, zeal, strength, power of speech, robust organs, prosperity and dharma.

अनुशीलन— इस मंत्र में परिवार में ८ गुणों के अस्तित्व की कामना की गई है। ये गुण हैं—ओज, तेज, सामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रिय, श्री और धर्म।

स्पष्टीकरण के लिए यदि मंत्र को उल्टी ओर से लिया जाए तो भाव अधिक स्पष्ट होता है। धर्म सभी प्रकार की सिद्धि या सफलता का साधन है। धर्म के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने पर ही श्री या लक्ष्मी प्राप्त होती है। श्री से इन्द्रियों और वाणी में बल आता है। उस बल के द्वारा ही मनुष्य में ओज, तेज, सामर्थ्य और बल आते हैं। ओज, तेज, साहस और बल में क्या अन्तर है? ओज शक्ति का आन्तरिक पुंज है। यही संचालक है। ऊर्जा का स्रोत है। शारीरिक शक्ति का सारभाग है। ओज का विकसित एवं प्रकट रूप तेज है। तेज आकृति पर दिखाई देता है। मुख-मंडल पर प्रकट होने वाली आभा तेज है। ओजस् का शारीरिक प्रदर्शन दो रूप में होता है-- सहस् या सामर्थ्य और बल रूप में। किसी कार्य को करने में आन्तरिक प्रेरणा सहस् या सामर्थ्य है। उसका शारीरिक उपयोग और प्रयोग बल है।

टिप्पणी--(१) **ओजः**--ओज, ओजस्विता। ओजस्+प्र० १। (२) **तेजः**--तेज, तेजस्विता। तेजस्+प्र० १। (३) **सहः**--शक्ति या सामर्थ्य। इसका सहनशक्ति अर्थ भी होता है। सहस् +प्र० १। (४) **वाक्** वाणी, भाषण-शक्ति। (५) **इन्द्रियम्**--इन्द्रियाँ, इन्द्रियों में शक्ति या पुष्टता। (६) **धर्मः**--धर्म, धर्मानुकूल आचरण।

१५. परिवार में संगठन से श्रीवृद्धि

इहैव हवमा यात म इह
संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुः,
अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः॥

अथर्व० १-१५-२

अन्वय--(हे देवाः) इह एव मे हवम् आ यात। उत हे संस्रावणाः गिरः, इह इमं वर्धयत। यः पशुः, (सः) सर्वः इह आ एतु। या रयिः (सा) अस्मिन् तिष्ठतु।

शब्दार्थ--(हे देवाः) हे देवो, (इह एव) यहां पर ही, (मे) मेरे, (हवम्) आह्वान पर, पुकार पर, (आ यात) आइए। (उत) और, (हे संस्रावणाः गिरः) हे सामूहिक रूप से निकलने वाली वाणियाँ, संगठन की वाणियां, (इह) यहां, (इमम्) इसको, (वर्धयत) बढ़ावो, समृद्ध करो। (यः पशुः) जो भी पशु हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(स सर्वः) वह सब, (इह) यहां, इस परिवार में, (आ एतु) आवे। (या रयिः) जो भी सम्पत्ति है, (सा) वह, (अस्मिन्) इसमें, इस परिवार में, (तिष्ठतु) रहे।

हिन्दी अर्थ—हे देवो! मेरे आह्वान पर यहां ही आइए। संगठन की वाणियां यहां इस (परिवार) को बढ़ावें। जो कुछ भी पशु-समृद्धि है, वह सारी यहां आवे। जो भी संपत्ति है, वह सब इस (परिवार) में रहे।

Eng. Tr.—O Gods! listen to my invocations and came here. Let the call of unity strengthen our family. May we possess the cattle-wealth and prosperity.

अनुशीलन—इस मंत्र में पारिवारिक संगठन पर बल दिया गया है। जहां पारिवारिक संगठन है, वहां श्री, समृद्धि, पशुधन आदि सभी रहते हैं।

मंत्र में 'संस्रावणा गिरः' का उल्लेख किया गया है। 'संस्रावणा गिरः' का अर्थ है—सामूहिक वाणी, सामूहिक ध्वनि, या सामूहिक नारा। जहां सब मिलकर एक बात या एक नारा लगाते हैं, वहां एकत्व की पुष्टि होती है, एकता का बीज विकसित होता है और संगठन की भावना जागृत होती है। परिवार में इसी संगठन की भावना को जागृत करने का मंत्र में संकेत है।

सभी देवता और सभी व्यक्ति इस संगठन-यज्ञ में सम्मिलित हों। सभी मिलकर एक लक्ष्य, एक बात, एक कर्तव्य निर्धारित करें। यदि यह कार्य संपन्न हो जाता है तो उस परिवार में पशुधन और सभी प्रकार की श्री स्वयं आती है।

टिप्पणी—(१) हवम्—आह्वान पर, पुकार पर। हृ (ह्वे, पुकारना) + अच् (अ)। (२) आयात—आवो। आ + या (आना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (३) संस्रावणाः—संस्रावणा का अर्थ है—साथ बहने वाली, साथ चलने वाली, अतः संस्रावण यज्ञ का अर्थ होता है—संगठन का यज्ञ। सम् + स्रु (बहना, भ्वादि) + णिच् + ल्युट् (अन) + टाप् (आ)। संस्रावणा गिरः का अर्थ है संगठन की वाणियां। (४) वर्धयत—बढ़ाओ। वृध् (बढ़ाना, भ्वादि आ०) + णिच् + लोट् म० ३। अ को आ, छान्दस दीर्घ। (५) गिरः—वाणियां। गिर् + प्र० ३। (६) आ एतु—आवे। एतु—इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् प्र० १। (७) सर्वः पशुः—सारा पशुधन इसके पास आवे। (८) या रयिः—जो भी संसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की समृद्धि या सम्पत्ति है, वह इसके पास रहे। (९) तिष्ठतु—रहे। स्था (रुकना, भ्वादि) + लोट् प्र० १।

१६. परिवार सुख-संपन्न हो

रेवती रमध्वमस्मिन् योनावस्मिन्
गोष्ठे ऽस्मिन् लोके ऽस्मिन् क्षये।
इहैव स्त मापगात ॥

यजु० ३-२१

अन्वय—हे रेवतीः, अस्मिन् योनौ, अस्मिन् गोष्ठे, अस्मिन् लोके, अस्मिन् क्षये, रमध्वम्। इह एव स्त, मा अपगात।

शब्दार्थ—(हे रेवतीः) हे समृद्धियाँ, हे समृद्धि की देवियाँ, (अस्मिन् योनौ) इस मूल स्थान में, (अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशाला में, (अस्मिन् लोके) इस परिवार में, (अस्मिन् क्षये) इस घर में, (रमध्वम्) रमो, आनन्द से रहो, (इह एव) यहाँ पर ही, (स्त) रहो। (मा) मत, (अपगात) दूर जावो, छोड़कर जावो।

हिन्दी अर्थ—हे समृद्धि की देवियाँ! तुम इस मूल स्थान में, इस गोशाला में, इस परिवार में, इस घर में आनन्दपूर्वक रहो। तुम यहीं रहो, कभी यहाँ से न हटो।

Eng. Tr.—O Goddess of wealth! may you reside comfortably in the central place, in the cow-pen, in this family and in this house. Let you remain here permanently and never leave our residence.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्थायी समृद्धि की कामना की गई है। हमारे परिवार में, हमारे घर में, हमारे मूल निवास में सर्वत्र-समृद्धि का वास हो। समृद्धि स्थायी रूप से रहे, कभी हमारे परिवार को न छोड़े।

संसार में सभी समृद्धि चाहते हैं। यह कामना उचित है। पर क्या समृद्धि के लिए अपेक्षित साधना भी सभी करते हैं? नहीं। साधना के बिना समृद्धि स्थायी नहीं रह सकती है। साधना क्या है? अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि इन्द्रियों के दास न बनकर उनके स्वामी बन जाते हैं तो साधना का पथ प्रशस्त हो जाता है। जहाँ इन्द्रिय-विजय है, संयम है, मनोनिग्रह है और चारित्रिक शुद्धता है, वहाँ श्री का स्थायी निवास होता है। यही भाव चाणक्यसूत्रों में दिया गया है:—

अर्थस्य मूलं राज्यम् ।। ३ ।।

राज्यमूलम् इन्द्रियजयः ।। ४ ।। चाणक्यसूत्र ३, ४

अर्थ या धन की प्राप्ति राज्य से होती है और राज्य का अस्तित्व इन्द्रिय-जय या इन्द्रिय-संयम पर है। जहाँ इन्द्रियजय नहीं है, वहाँ न राज्य रुकेगा और न धन। इस प्रकार विचार करने से ज्ञान होता है कि सभी स्थायी समृद्धियों का मूल संयम या इन्द्रिय-विजय है।

टिप्पणी—(१) **रेवतीः**—समृद्धियाँ, धन से युक्त शक्तियाँ। रयि (धन) + मत् + ङीप् (ई) + प्र० ३। रयि को रे और म को व। (२) **रमध्वम्**—रमो, आनन्द से रहो। रम् (रमना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० ३। (३) **योनौ**—योनि में, परिवार के मूल निवास स्थान में। (४) **गोष्ठे**—गोशाला में। गो + स्था + क (अ)। (५) **लोके**—संसार में। यहाँ परिवार अर्थ है। (६) **क्षये**—घर में। वेद में क्षय का अर्थ घर है। (७) **स्त**—होओ, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (८) **मा अपगात**—मत हटो, मत दूर जावो। समृद्धियाँ इस घर से न हटें। अपगात—अप + इ (जाना, अदादि, पर०) + लुङ् म० ३। इ को गा आदेश, मा के कारण लुङ्।

१७. परिवार निर्भय हो

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वम्
ऊर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमनाः सुमेधा
गृहानैमि मनसा मोदमानः ।।

यजु० ३-४१

अन्वय—हे गृहाः, मा बिभीत, मा वेपध्वम्। ऊर्जं बिभ्रतः (वः) एमसि। ऊर्जं बिभ्रत् सुमनाः सुमेधाः मनसा मोदमानः वः गृहान् आ एमि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(हे गृहाः) हे परिवार के लोगो, (मा बिभीत) मत डरो, (मा वेपध्वम्) न कांपो। (ऊर्जं बिभ्रतः) शक्ति को धारण करने वाले, (वः) तुम लोगों के पास, (एमसि) हम लोग आते हैं। (ऊर्जं बिभ्रत्) शक्ति को धारण करने वाला मैं, (सुमनाः) प्रसन्नचित्त, (सुमेधाः) श्रेष्ठ बुद्धि वाला, (मनसा मोदमानः) मन से आनन्दित, (वः) तुम्हारे, (गृहान्) घरों पर, (आ एमि) आता हूँ।

हिन्दी अर्थ—हे परिवार के लोगो ! तुम (किसी प्रकार के भय से) न भयभीत हो और न कांपो। शक्तिशाली तुम लोगों के सहायतार्थ हम आते हैं। मैं शक्तिशाली, प्रसन्नचित्त, बुद्धिमान्, मन से आनन्दित होता हुआ तुम्हारे घर आता हूँ।

Eng. Tr.—O Family-members ! neither fear nor tremble. Be bold. I approach to help you. I come to your residence, possessing strength, noble mind, good intellect and cheerful mind.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि परिवार के सभी लोग निर्भय हों, सभी सामर्थ्य से युक्त हों और वे किसी भी विपत्ति में न घबरावें।

इस मंत्र में बताया गया है कि जहाँ साहस है, धैर्य है, वहाँ भय नहीं आता है। जिनमें साहस नहीं है, परिस्थिति से लड़ने की क्षमता नहीं है और आपत्ति के प्रतीकार की योग्यता नहीं है, वे ही घबराते हैं, भयभीत होते हैं और अपने को किंकर्तव्यविमूढ पाते हैं। अतएव परिवार के प्रत्येक व्यक्ति में साहस, धैर्य और विवेक चाहिए।

जहाँ मनुष्य में साहस होता है, वहाँ दूसरे भी उसके सहायक हो जाते हैं। मंत्र में कहा गया है कि परिवार के जो लोग प्रवास आदि में जाते हैं। वे अधिक योग्य, व्यवहार-कुशल और संपन्न हो जाते हैं। वे लोग जब भी घर लौटकर आते हैं, उनमें साहस, धैर्य, ज्ञान और धन का वैभव होता है। उनके आने से परिवार में प्रसन्नता बढ़ती है और शक्ति-संचय होता है।

टिप्पणी—(१)गृहाः—घर वाले, परिवार के लोगो। (२) मा विभीत—मत डरो, किसी शत्रु का भय मत करो। विभीत—भी (डरना, जुहोत्यादि, पर०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

+ लोट् म० ३ । (३) मा वेपध्वम्—मत कांपो । वेप् (कांपना, भ्वादि आ०) + लोट् म० ३ । (४) ऊर्जं विभ्रतः—शक्ति रखने वाले, हिम्मत रखने वाले । विभ्रतः—भृ (धारण करना, जुहोत्यादि, पर०) + लट् > शतृ + द्वि० ३ । (५) एमसि—हम आते हैं । आ + इ (आना, अदादि, पर०) + लट् उ० ३ । मः को मसि । (६) विभ्रत्—धारण करता हुआ । भृ + शतृ + प्र० १ । (७) सुमनाः—प्रसन्न मन । सुमनस् + प्र० १ । (८) सुमेधाः—श्रेष्ठ वुद्धि वाला । सुमेधस् + प्र० १ । (९) आ एमि—आता हूँ । आ + इ (आना, अदादि, पर०) + लट् उ० १ । (१०) मोदमानः—प्रसन्न होता हुआ । मुद् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन) ।

१८. परिवार स्वावलम्बी हो

स्वतवांश्च प्रघासी च,
सान्तपनश्च गृहमेधी च ।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ।

यजु० १७-८५

अन्वय—स्वतवान् च, प्रघासी च, सांतपनः च, गृहमेधी च, क्रीडी च, शाकी च, उज्जेषी च (एधि) ।

शब्दार्थ—(स्वतवान् च) स्वावलम्वी, (प्रघासी च) सुन्दर भोजन करने वाला, (सांतपनः च) तप करने वाला, तपस्वी जीवन व्यतीत करने वाला, (गृहमेधी च) गृहस्थ धर्म का पालन करने वाला, (क्रीडी च) खेलने-कूदने वाला, क्रीडाशील, (शाकी च) सामर्थ्य वाला, शक्तिशाली, (उज्जेषी च) सदा विजयी, (एधि) होवो ।

हिन्दी अर्थ—(हे गृहस्थ, तुम) स्वावलम्बी, सुन्दर भोजन करने वाले, तपस्वी जीवन व्यतीत करने वाले, गृहस्थ धर्म के पालक, क्रीडाशील, शक्तिशाली और सदा विजयी हो ।

Eng. Tr.—O House-holder ! Be self-reliant, well-nourished, practising penance, observing domestic rules, joyous, vigorous and victorious.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—इस मंत्र में स्वास्थ्य और समृद्धि के कुछ नियम सूत्ररूप में दिए गए हैं। ये नियम हैं—स्वावलम्बी हो, स्वास्थ्यवर्धक अन्न खाओ, जीवन तपस्वी बनाओ, गृहस्थ के नियमों का पालन करो, खेलो कूदो और प्रसन्न रहो, हृष्ट-पुष्ट हो और सदा विजयी हो।

जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है कि मनुष्य में कुछ आवश्यक गुण हों। इन गुणों में स्वावलम्बन प्रमुख है। स्वावलम्बन सभी गुणों का आधार है, सुख का मूल है। जहाँ पराश्रयता या दूसरे पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति है, वहीं दुःख है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि उत्तम खाना खाओ, पौष्टिक आहार ही लो, जीवन को संयमी बनाओ, सदा प्रसन्नचित्त रहो, खेलो कूदो और मस्त रहो, शरीर के प्रत्येक अंग में शक्ति हो, हृष्ट-पुष्ट हो। यदि ये विशेषताएँ मनुष्य में आ जाती हैं तो उसका जीवन मधुर हो जाता है। वह जीवन में सर्वत्र विजयी होता है। विपत्तियाँ उसे कभी भी हरा नहीं सकती हैं।

टिप्पणी—(१) **स्वतवान्**—स्व—अपना, तवस्—बल, शक्ति, स्वावलम्बी। स्वतवस् + प्र० १। (२) **प्रघासी**—बढ़िया खाने वाले, अच्छा भोजन करने वाले। प्र + घस् (खाना) + णिनि (इन्) + प्र० १। (३) **सांतपनः**—अच्छा तप करने वाला। सम् + तप् (तप करना) + अन + अण् (अ)। (४) **गृहमेधी**—गृहस्थ धर्म का पालन करने वाला। गृह + मेध + इन् + प्र० १। (५) **क्रीडी**—खेलने वाला। क्रीड् + णिनि (इन्) + प्र० १। (६) **शाकी**—शक्तिशाली। शक् (सकना, स्वादि) + णिनि (इन्) + प्र० १। (७) **उज्जेषी**—विजयी। उत् + जि (जीतना + स + इन् प्र० १। सदा विजय की कामना करने वाला। जि धातु से जेष बना है। उज्जेष का अर्थ विजय है।

१९. परिवार में सभी नीरोग हों

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्,
स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

ऋग्० ७-५४-१; तैत्ति० सं० ३-४-१०-१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—हे वास्तोष्पते, अस्मान् प्रति जानीहि। नः स्वावेशः अनमीवः भव। यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व। नः द्विपदे शं भव, (नः) चतुष्पदे शं (भव)।

शब्दार्थ—(हे वास्तोष्पते) हे गृहपति यज्ञिय अग्नि, (अस्मान्) हमें, (प्रति जानीहि) जानिए, पहचानिए। (नः), हमारे लिए, (स्वावेशः) सरलता से प्रवेश के योग्य, सुखद निवास-योग्य, (अनमीवः) रोग-रहित, नीरोगता देने वाले, (भव) होओ। (यत्) जो कुछ, जिस इच्छा से, (त्वा) तेरे पास (ईमहे) आते हैं, (तत्) वह, (नः) हमें, (प्रति जुषस्व) प्रदान करो, दो। (नः) हमारे, (द्विपदे) मनुष्यों या परिवार वालों के लिए, (शं भव) कल्याणकारी हो। (नः चतुष्पदे) हमारे पशुओं के लिए, (शं भव) कल्याणकारी हो।

हिन्दी अर्थ—हे गृहपति यज्ञिय अग्नि! हमें जानिए। हमारे लिए सरलता से प्रवेश के योग्य और नीरोगता देने वाले होओ। हम जिस इच्छा से तुम्हारे पास आते हैं, वह हमें दीजिए। हमारे मनुष्यों (परिवार के सदस्यों) और पशुओं के लिए कल्याणकारी होओ।

Eng. Tr.—O Lord of the house, the domestic fire! recognise us. Be easily accessible and health-giving to us. Fulfil our desires. Be benevolent to our men and cattle.

अनुशीलन—इस मंत्र में गृहपति के रूप में विद्यमान गार्हपत्य अग्नि से प्रार्थना की गई है कि—घर सुखद हो, निरोग हो, कामनाओं को पूर्ण करे और सभी मनुष्यों एवं पशुओं के लिए सुखद हो।

मंत्र में 'स्वावेशः' का भाव है कि घर सुखद प्रवेश वाला हो। घर के कमरे, द्वार और खिड़कियाँ इस प्रकार बने हों कि उसमें आराम से प्रवेश किया जा सके और शान्ति से रहा जाए। अच्छे घर की विशेषता और सुन्दरता इसी में है कि वह सुखद हो। निवास आदि की दृष्टि से उसमें सभी सुविधाएँ हों।

'अनमीवः' का भाव है कि घर ऐसा साफ-सुथरा बना हो कि उसमें धूप और हवा का ठीक प्रवेश हो सके। रोग के कीटाणु उस घर में न रहने पावें। यज्ञ से ये रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं, अतः अनमीवः अर्थात् रोग-रहित कहा गया है। रोग के कीटाणु नहीं होंगे तो परिवार के व्यक्ति भी नीरोग रहेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंत्र में कहा गया है कि यज्ञिय अग्नि हमारी कामनाओं को पूर्ण करे। यज्ञ मनुष्य की इच्छाओं को पूर्ण करता है और समृद्धि का साधन है। गीता में भी यज्ञ को अभीष्ट का पूर्तिकर्ता बताया है।

एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्। गीता ३-१०

टिप्पणी—(१) **वास्तोष्पते**—हे गृहपति यज्ञिय अग्नि। वास्तु–घर, पति–स्वामी। वास्तोष्पति–घर का स्वामी। गार्हपत्य अग्नि के लिए है। (२) **प्रति जानीहि** जानिए, पहचानिए। ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०) + लोट् म० १। (३) **स्वावेशः**-सु–सरलता से, आवेशः—प्रवेश के योग्य। (४) **अनमीवः**—रोगरहित, नीरोगता देने वाले। अ—नहीं, अमीव–रोग। (५) **भव**—होओ। भवा–अ को छान्दस दीर्घ। भू + लोट् म० १। (६) **त्वा**—तुझको, तेरे पास। त्वाम् के स्थान पर है। (७)**ईमहे**—आते हैं, किसी कामना के साथ आते हैं। ई (जाना, अदादि, आ०) + लट् उ० ३। ई धातु किसी इच्छा के साथ जाने अर्थ में है। (८) **प्रति जुषस्व**—दो। जुष्। (सेवन करना, तुदादि, आ०) + लोट् म० १। (९) **द्विपदे**—द्विपाद् अर्थात् मनुष्यों के लिए। द्विपद् + च० १। (१०) **चतुष्पदे**—चार पैर वालों अर्थात् पशुओं के लिए चतुष्पद् + च० १।

२०. माता-पिता सुखी रहें

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

अथर्व० १–३१–४

अन्वय—नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु। गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति। नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रम् अस्तु। ज्योक् एव सूर्यं दृशेम।

शब्दार्थ—(नः) हमारे, (मात्रे) माता के लिए, (उत) और (पित्रे) पिता के के लिए, (स्वस्ति अस्तु) कल्याण हो। (गोभ्यः) गायों के लिए, (जगते) संसार भर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिए, (पुरुषेभ्यः) सभी पुरुषों के लिए, (स्वस्ति) कल्याण हो। (नः) हमारे लिए, (विश्वम्) सभी, (सुभूतम्) ऐश्वर्य, (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान, (अस्तु) हो। (ज्योक् एव) चिरकाल तक, (सूर्यम्) सूर्य को, (दृशेम) देखें।

हिन्दी अर्थ—हमारे माता और पिता का कल्याण हो। गायों, समस्त संसार और सभी पुरुषों का कल्याण हो। हमारे लिए सभी ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हों। हम चिरकाल तक सूर्य को देखें।

Eng. Tr.—May there be welfare to our parents, the cows, the whole world and all mankind. Let us have all-round prosperity and knowledge. May we see the sun for a long time.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीन शुभ प्रार्थनाएं हैं :—१. माता, पिता, गाय और समस्त जगत् का कल्याण हो। २. हमें समस्त ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त हो। ३. दीर्घायु हों और चिरकाल तक सूर्य को देखते रहें।

संसार में माता-पिता से बढ़कर और कोई शुभचिन्तक नहीं है। माता-पिता की सदा कामना रहती है कि उनकी सन्तान सभी सद्गुणों में उनसे बढ़कर हो। अतएव कहा गया है कि—'सर्वत्र विजयं कांक्षेत्, पुत्रादिच्छेत् पराभवम्।" मनुष्य सर्वत्र विजय ही चाहे, परन्तु ज्ञान और गुणों में अपने पुत्र से पराजय चाहे। इससे माता-पिता की हार्दिक कामना प्रकट होती है। इसका ही फल होता है—संतान की श्रीवृद्धि। माता-पिता की सेवा से पुत्र के आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

माता-पिता के कल्याण के साथ ही विश्व-कल्याण और विश्वबन्धुत्व का भाव जागृत करना चाहिए। इसका शुभ परिणाम यह होगा कि मनुष्य को ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी। ज्ञान का फल है—ऋत का पालन, कर्तव्यों और स्वास्थ्य के नियमों का पालन। स्वास्थ्य के नियमों के पालन से मनुष्य शतायु होता है।

टिप्पणी—(१) **स्वस्ति**—कल्याण, शुभ, मंगल। सु—अच्छा, अस्ति—होवे। (२) **मात्रे**—माता के लिए। मातृ + च० १। (३) **पित्रे**—पिता के लिए। पितृ + च० १। (४) **जगते**—सारे संसार के लिए। जगत् + च० १। (५) **सुभूतम्**—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐश्वर्य, समृद्धि । (६) **सुविदत्रम्**—उत्तम ज्ञान, उत्तम विद्या, उत्तम ज्ञानवान् । 'सुविदत्रः कल्याणविद्यः' (निरुक्त ६—१४) । सु—उत्तम, विदत्र—ज्ञान या ज्ञानी । (७) **ज्योक्**—चिरकाल तक, देर तक । अव्यय है । (८) **दृशेम**—देखें । दृश् (देखना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३ । दृश् को पश्य् नहीं हुआ है । दृशेम = पश्येम ।

२१. माता-पिता दानी मधुरभाषी हों

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै
द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता
भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥

ऋग्० ५-४३-२

अन्वय—(अहं) सुष्टुती नमसा अमृध्रे द्यावा पृथिवी वाजाय आ वर्तयध्यै (इच्छामि) । यशसौ पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नः अविष्टाम् ।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, (सुष्टुती) सुन्दर स्तुति से, (नमसा) नमस्कार से, (अमृध्रे) अजेय, अधर्षणीय, अयोध्य, (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी को, (वाजाय) बल या शक्ति के लिए, अन्न के लिए, (आ वर्तयध्यै इच्छामि) अपनी ओर लाना चाहता हूँ । (यशसौ) यशस्वी द्यावापृथिवी, (पिता माता) पिता और माता के तुल्य हैं । (मधुवचाः) मधुर बोलने वाले, (सुहस्ता) दान देने के कारण सुन्दर हाथ वाले हैं । (भरे भरे) प्रत्येक युद्ध में, प्रत्येक संघर्ष या संकट में, (नः) हमारी, (अविष्टाम्) रक्षा करें ।

हिन्दी अर्थ—मैं सुन्दर स्तुति से और नमस्कार से अजेय द्युलोक और पृथिवी को अपनी शक्ति की वृद्धि के लिए अपनी ओर लाना चाहता हूँ । यशस्वी द्यावा-पृथिवी पिता और माता के तुल्य हैं । ये दोनों मधुरभाषी और सुन्दर दानी हैं । ये प्रत्येक संकट में हमारी रक्षा करें ।

Eng. Tr.—I want to propitiate the invincible heaven and earth, by obeisance and whole-hearted prayers, to

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

strengthen my body. The noble heaven and earth are like parents. They are sweet-tongued and charitable. May they protect us in every crisis.

अनुशीलन—इस मंत्र में माता-पिता के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। माता-पिता के कर्तव्य हैं—वे मधुर बोलने वाले हों, सुन्दर दानी हों और यशस्वी हों। वे प्रत्येक कठिनाई के समय अपने बालकों की रक्षा करें।

माता-पिता '**मधुवचाः**' हों। मधुर भाषण अपनी प्रसन्नता के लिए है और दूसरों का वशीकरण मंत्र है। मधुर भाषण से जितनी सरलता से दूसरे को जीता जा सकता है, उतनी सरलता से अन्य किसी उपाय से नहीं। माता-पिता मधुरभाषी हैं तो उनके पुत्रादि भी मधुरभाषी होंगे।

माता-पिता के लिए दूसरा कर्तव्य बताया गया है कि वे '**सुहस्ता**' सुन्दर हाथों वाले हों। वे सुन्दर दान देनेवाले और कठिन परिश्रमी हों। माता-पिता जितने उदार विचार वाले और कर्मठ होंगे, उतनी ही विशेषता उनके पुत्रों में दिखाई देगी।

माता-पिता यशस्वी हों। व्यक्ति यशस्वी तभी होगा, जब उसका चरित्र शुद्ध होगा, उसमें आस्तिकता और पवित्रता होगी तथा उसमें नैतिक उदात्तता होगी। माता-पिता को दी गई ये शिक्षाएँ उनके पुत्रों में भी स्वयं परिलक्षित होंगी।

टिप्पणी—(१) **सुष्टुती**—सुन्दर स्तुति या स्तोत्र से। सु + स्तुति + तृ० १। तृतीया एक० का रूप है। (२) **नमसा**—नमस्कार से। नमस् + तृ० १। (३) **आवर्तयध्यै**—अपनी ओर लाना चाहता हूँ। इच्छामि का अध्याहार होगा। आ + वृत् (घुमाकर लाना, भ्वादि) + णिच् + तुमर्थ में अध्यै। आवर्तयितुम् इच्छामि। (४) **वाजाय**—बल के लिए, शक्ति प्राप्त करने के लिए, अन्न के लिए। वाज के दोनों अर्थ हैं—बल और अन्न। (५) **अमृध्रे**—अ–नहीं, मृध्र–शत्रु। जिनका कोई शत्रु नहीं है, जो असम या अजेय हैं। अमृध्रा + द्वि० २। (६) **मधुवचाः**—मधु–मधुर, वचस्—बोलनेवाले, मृदुभाषी। मधुवचस् + प्र० १। (७) **सुहस्ता**—सुहस्तौ, दान देने के कारण सुन्दर हाथ वाले, सुन्दर दानी। (८) **भरे भरे**—प्रत्येक युद्ध में, प्रत्येक संघर्ष या संकट में। भर का अर्थ है—बल-प्रयोग वाले स्थान। (९) **यशसौ**—यशस्वी द्यावापृथिवी। यशस् (यशस्वी) + प्र० २।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१०) अविष्टाम्—रक्षा करें। अव् (रक्षा करना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० २। यहाँ पर लुङ्-मूलक लोट् है।

२२. पुत्रादि को यथायोग्य धन बांटें

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते,
रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं,
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः॥

ऋग्० २-१३-४

अन्वय—(हे इन्द्र) प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्तः आसते। आयते पृष्ठं प्रभवन्तं रयिम् इव। असिन्वन् पितुः भोजनं दंष्ट्रैः अत्ति। यः ता प्रथमम् अकृणोः, सः उक्थ्यः असि।

शब्दार्थ—(हे इन्द्र) हे इन्द्र, हे परमात्मन्, (प्रजाभ्यः) अपनी सन्तानों को, (पुष्टिम्) धन, (विभजन्तः) यथायोग्य बांटते हुए, (आसते) रहते हैं अर्थात् ऐसे गृहस्थ सुखपूर्वक अपने घरों में रहते हैं। (आयते) आगन्तुक या अतिथि को, (पृष्ठम्) पोषक, धारक, (प्रभवन्तम्) भरण आदि में समर्थ, (रयिम् इव) धन को जैसे देते हैं। (असिन्वन्) अपने आपको पारिवारिक संपत्ति में बद्ध न रखने वाला, (पितुः भोजनम्) पितृरूप द्युलोक से प्राप्त भोजन को, (दंष्ट्रैः) दाढ़ों से, दांतों से, (अत्ति) खाता है। (यः) जिसने, (ता) इन नियमों को, (प्रथमम्) सर्वप्रथम, (अकृणोः) बनाया है, (सः) वह तुम, (उक्थ्यः असि) प्रशंसनीय हो।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्! अपनी सन्तानों को यथायोग्य धन का विभाजन करने वाले गृहस्थ (सुखपूर्वक अपने घरों में) रहते हैं, जैसे अतिथि को पोषक और धारक धन (देकर प्रसन्न रहते हैं)। अपने आपको पारिवारिक संपत्ति में बद्ध न रखने वाला व्यक्ति पितृरूप द्युलोक से प्राप्त भोजन को दांतों से खाता है। जिसने सर्वप्रथम ये नियम बनाए हैं, वह इन्द्र स्तुत्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng. Tr.—O God ! the house-holders, distributing shares to their descendants, lead a peaceful life, as the persons by giving gifts to the guests ramain joyful. A detached person enjoys heavenly food. The Lord Indra is praise-worthy, who first of all formulated these rules.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी माता-पिता के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपनी संपत्ति का यथायोग्य विभाजन पुत्रों में कर दें। इस प्रकार वे सुख से जीवन व्यतीत करेंगे। जिस प्रकार अतिथि को अन्नादि देकर गृहस्थ अपने आपको सुखी मानता है। उसी प्रकार पुत्रों को धन देकर गृहस्थ को सुख अनुभव करना चाहिए। जो माता-पिता अपने आपको धन के बन्धन से मुक्त कर लेते हैं। वे सदा सुख से रहते हैं।

धन और स्थिर संपत्ति, ये सबसे अधिक विवाद के विषय होते हैं। माता-पिता के सामने इनका विभाजन हो जाने से धन-संबन्धी समस्याएं हल हो जाती हैं और भविष्य में इनसे संबद्ध विवाद समाप्त हो जाते हैं। धन जितना सुख का साधन है, उतना ही कटुता का आधार भी है। दायादों के विवादों का कहीं अन्त नहीं है। यहाँ तक कि सगे-संबन्धी भी धन-संबन्धी विवादों को लेकर जीवन भर के लिए एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं। अतः मंत्र में शिक्षा दी गई है कि माता-पिता स्वयं पुत्रादि को धन बांटकर देदें। इससे उनका और बच्चों का भावी जीवन सुखमय हो जाता है।

टिप्पणी—(१) **प्रजाभ्यः**—अपनी प्रजा या सन्तानों को। (२) **पुष्टिम्**—धन, पोषक तत्व। (३) **विभजन्तः**—बांटने वाले, यथायोग्य देने वाले गृहस्थ। वि + भज् (बांटना, भ्वादि, पर०) + शतृ + प्र० ३। (४) **आसते**—रहते हैं, सुखपूर्वक रहते हैं। आस् (बैठना, रहना, अदादि, आ०) + लट् प्र० ३। (५) **पृष्ठम्**—पीठ के तुल्य धारक। (६) **प्रभवन्तम्**—समर्थ, परिवार के पोषण में समर्थ। प्र + भू (समर्थ होना, भ्वादि) + शतृ + द्वि० १। (७) **आयते**—आने वाले या अतिथि के लिए। आ + इ (आना, अदादि) + शतृ + च० १। (८) **असिन्वन्**—अ—नहीं, सिन्वन्—बांधता हुआ। अपने आपको बन्धन से मुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखता हुआ। अ + सि (बांधना, स्वादि) + शतृ + प्र० १। (९) पितुः—पिता के, द्युलोकरूपी पिता के द्वारा प्रदत्त। (१०) अत्ति—खाता है। अद् (खाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० १। (११) ता—उन्हें, उन नियमों को। तानि का संक्षिप्त रूप है। (१२) अकृणोः—किया, बनाया। कृ(करना, स्वादि, पर०) + लङ् + म० १। (१३) उक्थ्यः—प्रशंसनीय, स्तुत्य। उक्थ (प्रशंसा, स्तुति) + य। वच् से उक्थ बना है।

२३. माता पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु-
वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधाद्
अन्वस्य केतमिषितं सवित्रा॥

ऋग्० २-३८-५

अन्वय—अग्नेः प्रभवः शोकः दुर्यः, नाना ओकांसि, विश्वम् आयुः वि तिष्ठते। सवित्रा अनु इषितम्, अस्य केतम्, ज्येष्ठं भागं माता सूनवे आ अधात्।

शब्दार्थ—(अग्नेः) गार्हपत्य अग्नि से, (प्रभवः) उत्पन्न होने वाला, (शोकः) प्रकाश, तेज, दीप्ति, (दुर्यः) गृह का रक्षक है। (नाना ओकांसि) अनेक गृहों को, (विश्वम् आयुः) सम्पूर्ण आयु को, (वि तिष्ठते) अधिष्ठित होता है, अर्थात् सभी गृहों और सम्पूर्ण आयु का अधिष्ठाता होता है। (सवित्रा) पिता के द्वारा, (अनु इषितम्) प्राप्त किए गए, संग्रह किए गए, (अस्य केतम्) पिता के सूचक या पैतृक धन के सूचक, (ज्येष्ठं भागम्) श्रेष्ठ भाग को, (माता) माता, (सूनवे) अपने पुत्र को, (आ अधात्) देती है, रखती है।

हिन्दी अर्थ—गार्हपत्य अग्नि से उत्पन्न होने वाला तेज घर का रक्षक है। वह सभी घरों का और संपूर्ण आयु का अधिष्ठाता है। (बालक के) पिता द्वारा संग्रह किए गए और पैतृक धन के सूचक श्रेष्ठ भाग को माता अपने पुत्र को देती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng.Tr.—The lustre, originating from the domestic fire, protects the houses. It is the supreme power that protects the houses and governs the longevilty. A noble mother hands over the ancestral and acquired property to her son.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। वे हैं—१. गार्हपत्य अग्नि गृह और परिवार वालों की आयु का रक्षक है। २. माता पैतृक संपत्ति अपने पुत्र को देती है।

इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि पारिवारिक अग्नि में बहुत तेज है। यहाँ पारिवारिक अग्नि में दैनिक यज्ञ भी संमिलित है। पारिवारिक यज्ञ से परिवार में एक अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न होती है। परिवार में एकता, सामंजस्य, सौहार्द, आत्मीयता और समवेदना का भाव जागृत होता है, जो अन्य किसी प्रकार से उद्‌बुद्ध नहीं किया जा सकता है। इस पारिवारिक यज्ञ से एक ओर आस्तिकता और सात्त्विकता उत्पन्न होती है, दूसरी ओर पारिवारिक संगठन का मूल प्राप्त होता है।

मंत्र में दूसरी बात कही गई है कि परिवार की जो कुछ भी पैतृक संपत्ति है, उसके अधिकारी पुत्र हैं। पैतृक संपत्ति पर अन्य किसी का अधिकार नहीं है। माता की जो अपनी निजी संपत्ति है, उसके भी अधिकारी पुत्र ही हैं। अतः पिता के तुल्य माता का भी कर्तव्य है कि वह परिवार की पैतृक एवं वंश-परंपरागत संपत्ति को तथा अपनी सुरक्षित संपत्ति को भी अपने पुत्रों को यथायोग्य दे दे।

टिप्पणी—(१) **ओकांसि**—घरों को। ओकस् (घर) + द्वि० ३। (२) **दुर्यः**—गृह-रक्षक, घर के लिए हितकारी है। दुर् (घर) + य। हित अर्थ में य प्रत्यय। (३) **विश्वम् आयुः**—संपूर्ण आयु का, या जीवन भर। (४) **वि तिष्ठते**—अधिष्ठाता है, स्वामी रहता है। वि + स्था (रहना, भ्वादि) + लट् प्र० १। स्था को तिष्ठ्, आ० है। (५) **अग्नेः०**—अग्नि से, प्रभवः—उत्पन्न होने वाला, शोकः—तेज, प्रकाश। (६) **आ अधात्**—रखती है देती है। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (७) **अनु इषितम्**—अन्वेषित, संग्रह किया गया। इष् (भेजना, दिवादि) + क्त (त)। (८) **अस्य केतम्**—केतम्—सूचक, प्रज्ञापक। पैतृक धन के सूचक। (९) **सवित्रा**—पिता के द्वारा। सवितृ (पिता, उत्पादक, जनक) + तृ० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२४. भाई-बहिनों में प्रेम-भाव हो

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्-मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा, वाचं वदत भद्रया॥

अथर्व० ३-३०-३

अन्वय—भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्, उत स्वसा स्वसारं मा (द्विक्षत्)। सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा भद्रया वाचं वदत।

शब्दार्थ—(भ्राता) भाई, (भ्रातरम्) भाई से, (मा) मत, (द्विक्षत्) द्वेष करे। (उत) और, (स्वसा) बहिन, (स्वसारम्) बहिन से, (मा द्विक्षत्) मत द्वेष करे। (सम्यञ्चः) समान गति या एक विचार वाले, (सव्रताः) एक प्रकार से कर्म करने वाले, (भूत्वा) होकर, (भद्रया) उत्तम रीति से, कल्याणकारी ढंग से, (वाचं वदत) वाणी कहो, बोलो।

हिन्दी अर्थ—भाई-भाई से द्वेष न करे और बहिन बहिन से द्वेष न करे। एक विचार वाले और एक प्रकार से काम करने वाले होकर शिष्टतापूर्वक वार्तालाप करो।

Eng. Tr.—Let the brother should not be jealous to his brother and similarly the sister should not be jealous to her sister. Having similar thoughts and doing similar tasks you should indulge in affectionate dialogue.

अनुशीलन—इस मंत्र में भाई और बहिन के कर्तव्यों का निर्देश है। जहाँ भाई-भाई में कलह हो या बहिन-बहिन में कलह हो, वह परिवार कभी सुखी नहीं रह सकता है। भाई का झगड़ा चाहे भाई से हो या बहिन से, वहाँ सुख-शान्ति नहीं रह सकती है। इसी प्रकार यदि बहिन का झगड़ा बहिन से हो या भाई से, वहाँ शान्ति की आशा नहीं की जा सकती है। इसलिए वेद का आदेश है कि परिवार की सुख-समृद्धि के लिए भाइयों और बहिनों में पारस्परिक द्वेष या कलह न हो। पारिवारिक वातावरण सुखद कैसे बनाया जा सकता है, इसका उपाय बताया गया है कि सभी समान विचार और समान कर्म वाले होकर परस्पर प्रेम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्ण वार्तालाप करें। परिवार में यदि सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम से बोलते हैं तो उस परिवार में सौहार्द और सामंजस्य रहेगा। परस्पर प्रेम बढ़ेगा और परिवार की श्रीवृद्धि होगी।

टिप्पणी—(१)मा—मत। अव्यय है। (२) द्विक्षत्—द्वेष करे। द्विष् (द्वेष करना, अदादि) + लुङ् प्र० १। मा के कारण लुङ् और अडागम का अभाव। Injunctive है। (३) उत—और। अव्यय है। (४) सम्यञ्चः—सम् + अञ्च् + प्रथमा ३। सम् को समि आदेश। (५) सव्रताः—समान कर्म वाले। व्रत—कर्म। (६) भूत्वा—होकर। भू + क्त्वा (त्वा)। (७) वदत—बोलो। वद् (बोलना, भ्वादि) + लोट् म० ३।

२५. भ्रातृभाव से समृद्धि

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते,
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां
सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

ऋग्० ५-६०-५

अन्वय—अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते भ्रातरः सौभगाय सं वावृधुः। युवा स्वपाः रुद्रः एषां पिता, सुदुघा पृश्निः मरुद्भ्यः सुदिना (अकुरुताम्)।

शब्दार्थ—(अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः) ज्येष्ठ और कनिष्ठ, अर्थात् ऊँच-नीच के भेद-भाव से रहित, (एते) ये, (भ्रातरः) भाई के तुल्य रहने वाले, (सौभगाय) सौभाग्य के लिए, (सं वावृधुः) बढ़े हैं। (युवा) सदा युवक, (स्वपाः) सुन्दर कर्म करने वाला, (रुद्रः) रुद्र, जीवात्मा, (एषाम्) इनका, (पिता) पिता है। (सुदुघा) सुन्दर दूध देने वाली, सुन्दर फल देने वाली, (पृश्निः) पृथिवी, (मरुद्भ्यः) मरुतों के लिए, प्राणों के लिए, (सुदिना) सुन्दर दिन करें।

हिन्दी अर्थ—ज्येष्ठ और कनिष्ठ (ऊँच-नीच, बड़ा-छोटा) के भाव से रहित, ये मरुत् (प्राणवायु) भाई के तुल्य रहते हुए सौभाग्य के लिए बढ़े हैं। सदा युवा और सुन्दर कर्म करने वाला रुद्र (जीवात्मा) इनका पिता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है और सुन्दर अन्नादि-समृद्धि देने वाली पृथिवी मरुतों के लिए शुभ दिन करें।

Eng. Tr.—The Marut Gods, behaving like brothers and abhoring the distinction of high or low, progressed to prosperity. The Lord Rudra, ever-young and virtuous, is their father. May the earth be auspicious to the Maruts.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीन बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। वे हैं— १. छोटे-बड़े का भेदभाव छोड़कर सौभाग्य के लिए आगे बढ़ो। २. सबका पिता परमात्मा है। ३. पुरुषार्थी के लिए पृथ्वी सभी सुखों को देने वाली है।

परिवार की श्रीवृद्धि के लिए आवश्यक है कि पूरे परिवार में भ्रातृत्व (भाई-चारा) हो। बड़े-छोटे का भाव न हो। जहां सम्मिलित या सामूहिक प्रयत्नशीलता है, वहां श्री और सौभाग्य स्वयं उपस्थित रहते हैं। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि कोई भी बड़ा काम प्रारम्भ करेंगे तो उसमें कुछ घनिष्ठ सहयोगी चाहिएं। भाइयों से बढ़कर घनिष्ठता मानने वाला कोई व्यक्ति नहीं होगा। अतः अपने परिवार के सभी व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग प्रांप्त किया जाए।

दूसरी शिक्षा यह है कि परमात्मा सबका पिता है। वह सदा युवा है, सत्कर्म करने वाला है और साथ ही पापी का रोदक होने से रुद्र भी है। जो भ्रातृत्व-भावना से, मिलकर, सद्भावना-पूर्वक काम करेंगे, परमात्मा उनकी श्रीवृद्धि करेगा, अन्यथा नाश करेगा।

तीसरी शिक्षा है कि मरुतों को पृथ्वी सभी सुख देती है। उनके लिए सदा शुभ दिन हैं। मरुत् वायुदेव हैं। वे सदा गतिशील हैं। वे कभी विश्राम नहीं करते हैं। इसी प्रकार जो जीवन में सदा गतिशील हैं, कर्मठ हैं, अध्यवसायी हैं, उनके लिए सारी पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण है। उनके लिए सर्वत्र श्री और विजय है। उनके लिए सारे दिन शुभ दिन हैं।

टिप्पणी—(१) अज्येष्ठासः—अ—नहीं, ज्येष्ठ—बड़ा भाई। प्र० ३। (२) अकनिष्ठसः—अ—नहीं, कनिष्ठ—छोटा भाई। प्र० ३। आपस में बड़े-छोटे के भाव से रहित। (३) भ्रातरः—भ्रातृभाव से रहने वाले। भ्रातृ + प्र० ३। (४) वावृधुः—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बढ़े। वृध् (वढ़ना,म्वादि, पर०) + लिट् प्र० ३। (५) युवा—सदा युवक अर्थात् अजर अमर। (६) स्वपाः—सुन्दर कर्म करने वाला। सु + अपस् (कर्म) + प्र० १। (७) रुद्रः—रुद्र मरुतों का पिता है। जीवात्मा को रुद्र कहते हैं, 'वास्तव्यो वा एष देवः रुद्रः' शत० ब्रा० ५-२-४-१३। 'आत्मा एकादशः रुद्रः' (शत० ११-६-३-७)। शरीर में रहने वाला जीवात्मा रुद्र है। मरुत् अर्थात् प्राण इसके पुत्र हैं। 'प्राणा वै मारुताः' शत० ९-३-१-७। (८) सुदुघा—सुन्दर दूध या अन्नादि समृद्धि देने वाली। (९) पृश्निः—पृथिवी। 'इयं पृथिवी वै पृश्निः' तैत्ति० ब्रा० १-४-१-५। पृथिवी मरुतों की माता के तुल्य है। (१०) सुदिना—सुदिनानि, सुन्दर दिन करे।

२६. पुत्र कर्मठ और कृतज्ञ हों

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो,
महीं जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि,
पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥

ऋग्० १-१५९-३

अन्वय—ते स्वपसः सुदंससः सूनवः पूर्वचित्तये मही मातरा जज्ञुः। स्थातुः च जगतः च अद्वयाविनः पुत्रस्य पदं धर्मणि सत्यं पाथः।

शब्दार्थ—(ते) वे, (स्वपसः) सुन्दर कर्म करने वाले, (सुदंससः) आश्चर्यजनक शक्ति वाले, (सूनवः) पुत्र, (पूर्वचित्तये) पूर्वज्ञान के लिए, प्रातिभ ज्ञान के लिए, (मही) महान्, (मातरौ) मातृतुल्य द्यावापृथिवी को, (जज्ञुः) जानते हैं। (स्थातुः च) स्थावर या अचर, (जगतः च) जंगम या चर, (अद्वयाविनः) निश्छल, निष्कपट (पुत्रस्य) पुत्र के, (पदम्) मार्ग को, (धर्मणि) धर्म कार्यों में, (सत्यम्) अवश्य, वस्तुतः, (पाथः) रक्षा करते हो।

हिन्दी अर्थ—वे सुन्दर कर्म करने वाले, आश्चर्यजनक शक्ति-संपन्न पुत्र प्रातिभज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान) के लिए मातृतुल्य महान् द्युलोक और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथिवी को जानते हैं। चर और अचर जगत् के निश्छल पुत्र के मार्ग की धार्मिक कार्यों में (ये दोनों) अवश्य रक्षा करते हैं।

Eng. Tr.—Those sons, acting skilfully and possessing wonderful powers, know the mother-like heaven and earth for obtaining divine light. They protect the virtuous devotees, both animate or in-animate, while they are performing the religious duties.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीन बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। वे हैं—१. पुत्र कर्मठ, पराक्रमी और सुन्दर हो। २. अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञ हो। ३. निश्छल और धर्मनिष्ठ की द्यावापृथिवी रक्षा करते हैं।

इस मंत्र में देवों को द्यावापृथिवी का पुत्र बताया गया है। साथ ही उनके गुण बताए गए हैं कि वे सुन्दर कर्म करते हैं, देखने में सुन्दर हैं और आश्चर्यजनक शक्ति वाले हैं। इससे पुत्र के कर्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है कि पुत्र सदा कर्मठ हो, सुन्दर काम करने वाला हो, देखने में सुन्दर हो और अपने पुरुषार्थ से आश्चर्यजनक कार्यों को करने वाला हो।

मंत्र में दूसरी बात कही गई है कि वे 'पूर्वचित्तये' पहले किए गए उपकारों के लिए माता-पिता को जानते हैं। उनके प्रति कृतज्ञ रहते हैं। साथ ही प्रारम्भिक ज्ञान और शिक्षा के लिए वे माता-पिता के कृतज्ञ रहते हैं।

मंत्र में तीसरी बात कही गई है कि जो व्यक्ति निश्छल हैं और धर्म के मार्ग पर चलते हैं, उनकी रक्षा द्यावा-पृथिवी करते हैं। संसार की सभी शक्तियां धर्म और सत्य की रक्षा करती हैं। चाहे ईश्वरीय शक्ति हो या प्राकृतिक शक्ति हो, सभी विश्वसंरक्षण के लिए सत्य और धर्म की रक्षा करते हैं। नष्ट करने वाले तत्त्व छल, प्रपंच, मिथ्या-व्यवहार हैं। मंत्र में 'अद्वयाविनः' के द्वारा छल-प्रपंच को छोड़ने का निर्देश है। निष्कपट और धार्मिक की रक्षा द्युलोक और पृथिवी सदा करते हैं। अतएव कहा गया है कि—शुभ कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।'
'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्'। गीता २-४०

टिप्पणी—(१) स्वपसः—सुन्दर कर्म करने वाले। सु+अपस् (कर्म) +प्र० ३। (२) सुदंससः—आश्चर्यजनक शक्ति वाले। सु+दंसस् (आश्चर्यजनक शक्ति)+प्र० ३। वीरता के कार्य करने वाले। सुदंसस् का अर्थ देखने में सुन्दर भी होता है। (३) मही—महान्। मही+प्र० २। (४) जज्ञुः—जानते हैं, जानते थे। ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०)+लिट् प्र० ३। (५) मातरा—मातरौ, द्युलोक और पृथिवी को। मातृ+प्र० २। (६) पूर्वचित्तये—पूर्वज्ञान के लिए। प्रतिभामूलक या ईश्वरीय ज्ञान के लिए। पूर्वचित्ति+च०१। (७) स्थातुः—स्थावर। स्थातृ+ष० १। (८) सत्यम्—अवश्य, वस्तुतः। (९) जगतः—जंगम या चर जगत्। (१०) धर्मणि—धर्म में, धार्मिक कार्य में। धर्मन्+स० १। (११) पाथः—दोनों रक्षा करते हो। पा (रक्षा करना, अदादि, पर०)+लट् म० २। (१२) पदम्—मार्ग को, स्थान को। (१३) अद्वयाविनः—अ—नहीं, द्वयाविन् (कपट-व्यवहार या छल)+ष० १। निश्छल, निष्कपट।

२७. पुत्र वीर कर्मठ सुयोग्य हो

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु
देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो
युक्तग्रावा जायते देवकामः॥

ऋग्० ३-४-९;७-२-९; तैत्ति० सं० ३-१-११-१

अन्वय—हे देव त्वष्टः, रराणः तुरीपम् अध पोषयित्नु तत् नः वि स्यस्व। यतः वीरः कर्मण्यः सुदक्षः युक्तग्रावा देवकामः (पुत्रः) जायते।

शब्दार्थ—(हे देव त्वष्टः) हे संसार के उत्पादक देव, (रराणः) सदा दान देने वाले तुम, (तुरीपम्) तुरन्त प्रभावकारी, शीघ्र प्रवेश करने वाला, (अध) और, (पोषयित्नु) पोषक,(तत्) वह वीर्य, (नः) हमारे लिए, (वि स्यस्व) छोड़ो, दो। (यतः) जिससे, (वीरः) वीर, (कर्मण्यः) कर्मठ, (सुदक्षः) अत्यन्त चतुर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुयोग्य, (युक्ताग्रावा) सोमरस निकालने वाला, सोम को पत्थर पर पीसने वाला, (देवकामः)आस्तिक, देवभक्त पुत्र, (जायते) उत्पन्न हो।

हिन्दी अर्थ—हे सृष्टि कर्ता देव! तुम दाता हो। तुम शीघ्र प्रभावकारी और पोषक वीर्य हमें दो, जिससे वीर, कर्मठ, अतिनिपुण, सोमरस निकालने वाला और आस्तिक पुत्र पैदा हो।

Eng. Tr.—O God, creator of the universe ! you are bestower of the wealth. May you fill me with the effective and conducive force, so that I may bring forth brave, active, intelligent, Some-pressing and theist son.

अनुशीलन—इस मंत्र में योग्य पुत्र की कामना की गई है और उसके गुण बताए गए हैं। योग्य पुत्र के गुण हैं— १. वीर हो, २. कर्मठ हो, ३. सुयोग्य एवं विद्वान् हो, ४. यज्ञादि करे, ५. आस्तिक हो।

योग्य पुत्र की संक्षिप्त समीक्षा इस मंत्र में आ गई है। पुत्र वही है—जो माता-पिता की कष्टों से रक्षा कर सके। पुत् (नरक, दुःख) + त्र (बचाने वाला)। 'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः' (मनु०)। जिसमें सेवा-भाव होगा, कृतज्ञता होगी और धर्मनिष्ठा होगी, वही माता-पिता की सेवा करेगा और उन्हें कष्टों से बचाएगा। इसलिए पुत्र में वीरत्व, उत्साह और साहसिकता चाहिए।

कर्मठता जीवन की सफलता की कुंजी है। जहां कर्मठता है, वहां उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय हैं। कर्मठता जीवन का मार्ग स्वयं प्रशस्त करती है। कर्म का फल श्री है और श्री का साधन कर्म है। इस प्रकार कर्म और श्री में साध्य-साधन या कार्य-कारण संबन्ध है। साथ ही दक्षता, योग्यता और विद्वत्ता भी चाहिए। ज्ञान कर्म का जनक है। ज्ञान से विवेक होता है। विवेक से ग्राह्य और हेय का बोध होता है। जीवन के लिए कौन सा मार्ग उत्तम है, यह भी ज्ञान ही बताता है। अतः पुत्र विज्ञ, प्राज्ञ और योग्य होना चाहिए।

जीवन में आस्तिकता और धार्मिकता खाद का काम देती है। जहां आस्तिकता और धार्मिकता है, वह सदा हरा-भरा रहेगा, सदा फूलेगा-फलेगा, कभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूखेगा नहीं। यह व्यक्ति को भी सदा समृद्धि और ऐश्वर्य की ओर ले जाती है। ऐसा व्यक्ति जीवन में सदा पनपेगा और सुखी रहेगा।

टिप्पणी—(१) तत्—वह। सुप्रसिद्ध वीर्य या शक्ति। (२) तुरीपम्—तुरि (शीघ्र) + आप (पहुंचने वाला)। शीघ्रता से पहुंचने या प्रभाव करने वाला। (३) पोषयित्नु—पोषक, स्वास्थ्यवर्धक। पुष् + णिच् + इत्नु + द्वि० १। (४) त्वष्टः—हे त्वष्टा देव! त्वष्टा संसार का रचयिता है। त्वष्टृ + सं० १। (५) रराणः—दाता, सदा दानी। रा (देना, अदादि) + लिट् > कानच् (आन)। रा को द्वित्व। (६) वि स्यस्व—छोड़ो, दो। वि + सो (छोड़ना, दिवादि) + लोट् म० १। (७) कर्मण्यः—कर्मठ, काम में कुशल। कर्मन् + य। (८) सुदक्षः—अति चतुर, सुयोग्य। (९) युक्तग्रावा—सोमरस निकालने वाला। युक्त–लगाया है, रखा है, ग्रावन्–पत्थर जिसने। प्र०१। (१०) जायते—उत्पन्न होता है, उत्पन्न हो। जन् (उत्पन्न होना, दिवादि, आ०) + लट् प्र० १। जन् को जा आदेश। (११) देवकामः—देवों की कामना करने वाला, आस्तिक, देवभक्त।

२८. पुत्र आज्ञाकारी एवं आस्तिक हो

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः
श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे
अथा देवानामप्येतु पाथः॥

ऋग्० २-३-९; तैत्ति० सं० ३-१-११-२

अन्वय—पिशङ्गरूपः सुभरः वयोधाः श्रुष्टी वीरः देवकामः जायते। त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु। अथ देवानां पाथः अपि एतु।

शब्दार्थ—(पिशङ्गरूपः) सुनहरे वर्ण वाला, गौर वर्ण, (सुभरः) हृष्ट-पुष्ट, (वयोधाः) दीर्घायु, (श्रुष्टी) आज्ञाकारी, (वीरः) वीर, (देवकामः) आस्तिक पुत्र, (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वष्टा) सृष्टिकर्ता परमात्मा, (अस्मे) हमारे लिए, (नाभिम्) कुल के नाभि या केन्द्ररूप, (प्रजाम्) सन्तान को, (वि स्यतु) छोड़े,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दे। (अथ) और, (देवानाम्) देवों का, (पाथः) मार्ग या अन्न, (अपि एतु) आवे, प्राप्त हो।

हिन्दी अर्थ—सुनहरे रंग वाला, हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु, आज्ञाकारी, वीर और आस्तिक पुत्र उत्पन्न हो। सृष्टिकर्ता देव हमारे लिए कुल-वर्धक सन्तान दे और देवों का मार्ग हमें प्राप्त हो।

Eng. Tr.—May we get a fair-complexioned, well-built, long-living, obedient, brave and pious son. May God bless us with a progenitive son. May we tread the devine path.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी पुत्र के गुणों का वर्णन किया गया है। पुत्र के गुण बताए गए हैं—सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु, आज्ञाकारी और आस्तिक हो। वह वंश की वृद्धि करे।

सौन्दर्य और गौर वर्ण पारिवारिक उत्कृष्टता और कुलीनता का सूचक है। सर्वत्र आर्यों को गौर वर्ण ही बताया गया है। अन्य गुणों के साथ सौन्दर्य और गौर वर्ण भी पुत्र के लिए आवश्यक है। पुत्र स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट होना चाहिए। स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि नियमित व्यायाम करे, संतुलित भोजन करे और उसका आहार विहार नियन्त्रित हो। जहाँ जीवन नियमित है, वहाँ स्वास्थ्य और दीर्घायु है।

पितृ ऋण से या माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए आवश्यक है कि पुत्र आज्ञाकारी हो। इससे माता-पिता का ही हित नहीं होता है, अपितु बालक की श्रीवृद्धि होती है। संसार में माता-पिता से अधिक बालक का हितचिन्तक कोई नहीं है।

आस्तिकता बालक के गुणों की वृद्धि करता है। इससे जीवन पवित्र होता है, सात्त्विक भाव आते आते हैं और चारित्रिक उत्थान होता है। अपनी उन्नति के लिए आस्तिकता एक सरल और बहुमूल्य साधन है।

योग्य पुत्र वंश की वृद्धि करे और पैतृक गुणों को पुष्ट करे, यही माता-पिता की कामना रहती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(१) **पिशङ्गरूपः**—सुनहरे रंग वाला, गौर वर्ण। पिशंग–सुनहरा, रूपः—रंग, वर्ण। (२) **सुभरः**—अच्छा हृष्ट-पुष्ट। (३)**वयोधाः**—दीर्घायु। वयस् (आयु या अन्न) + धाः—रखने वाला। वयोधस् + प्र० १। (४) **श्रुष्टी**—आज्ञाकारी, शुश्रूषु। श्रुष्टिन् + प्र० १। (५) **जायते**—उत्पन्न होता है। जन् (उत्पन्न होना, दिवादि) + लट् प्र० १। (६) **देवकामः**—देवों को चाहने वाला, देवभक्त, आस्तिक। (७) **विष्यतु**—छोड़े, दे। वि + सो (छोड़ना, दिवादि, पर०) + लोट् प्र० १। (८) **नाभिम्**—नाभि या केन्द्र स्वरूप, कुल या वंश का वर्धक। (९) **अस्मे**—हमारे लिए। अस्मद् + च० ३। (१०) **अथा**—और। अथ को छान्दस दीर्घ। (११) **अपि एतु**—आवे, प्राप्त हो। इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् प्र० १। (१२। **पाथः**—मार्ग या अन्न। पाथस् (मार्ग) + प्र० १।

२९. पुत्र सुशील एवं संपन्न हो

साधुं पुत्रं हिरण्ययम्।

अथर्व० २०-१२९-५

अन्वय—साधु हिरण्ययं पुत्रम् (लभेमहि)।

शब्दार्थ—(साधुम्) सज्जन, सरल, सुशील, (हिरण्ययम्) सुवर्णयुक्त, संपन्न, (पुत्रं लभेमहि) पुत्र को प्राप्त करें।

हिन्दी अर्थ—हम सुशील और संपन्न पुत्र को प्राप्त करें।

Eng. Tr.—May we get a noble and prosperous son.

अनुशीलन—इस मंत्र में पुत्र के दो गुणों का वर्णन किया गया है। १. पुत्र सरल, सज्जन और सुशील हो। २. संपन्न हो।

पुत्र माता-पिता की प्रतिमूर्ति है। पुत्र में माता-पिता के संस्कार और गुण-धर्म आते हैं। पुत्र की सज्जनता और सुशीलता वंश के लिए वरदान है। किसी भी परिवार में सुशील पुत्र का उत्पन्न होना ईश्वरीय अनुकम्पा ही समझनी चाहिए। अतएव मंत्र में कामना की गई है कि सुशील पुत्र मिले। दूसरी कामना है कि वह पुत्र संपन्न हो। उसे जीवन में आर्थिक कष्ट न हो, वह निर्धनता का शिकार न हो और अभावग्रस्त न हो। यदि जीवन में सरलता है, निष्कपटता है और दुर्गुणों का अभाव है

४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो उसके परिणाम-स्वरूप उसे जीवन में स्थायी समृद्धि प्राप्त होगी। विचारों की शुद्धता भौतिक श्रीवृद्धि का साधन होती है।

टिप्पणी—(१) साधुम्—सरल, ऋजु, सज्जन, सुशील। (२) हिरण्ययम्—सुवर्ण से युक्त, ऐश्वर्य से संपन्न। हिरण्य + मयम् = हिरण्ययम्। बीच के म का लोप।

३०. बालक का शरीर सुदृढ हो

एह्यश्मानमा तिष्ठ, अश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा, आयुष्टे शरदः शतम्॥
अथर्व० २-१३-४

अन्वय—(हे बालक) एहि, अश्मानम् आ तिष्ठ। ते तनूः अश्मा भवतु। विश्वे देवाः ते आयुः शरदः शतं कृण्वन्तु।

शब्दार्थ—(हे बालक) हे बालक, (एहि) आ, (अश्मानम्) इस शिला पर, (आ तिष्ठ) चढ़, पैर रख। (ते) तेरा, (तनूः) शरीर, (अश्मा) पत्थर के तुल्य दृढ़, (भवतु) होवे, बने। (विश्वे देवाः) सारे देवता, (ते) तेरी, (आयुः) आयु को, (शरदः शतम्) सौ वर्ष की, (कृण्वन्तु) करें।

हिन्दी अर्थ—हे बालक ! तू आ और इस शिला पर पैर रख। तेरा शरीर पत्थर के तुल्य दृढ हो जाए। सारे देवता तेरी सौ वर्ष की आयु करें।

Eng. Tr.—O Newly-born son ! come here and stand on this stone. May your body be built as strong as a stone. May all the Gods bless you with a hundred year life.

अनुशीलन—यह नवजात बालक के लिए प्रार्थना है। उसे सर्वप्रथम जब वस्त्र पहनाया जाता है तो उसको पत्थर पर खड़ा किया जाता है। नव-वस्त्र-परिधान के साथ ही बालक के लिए कामना की जाती है कि उसका शरीर पत्थर के तुल्य हृष्ट-पुष्ट हो। उस पर सर्दी-गर्मी का प्रभाव न पड़े। वह सुकोमल शरीर का न हो। कठिनाइयों को सहन कर सके और विपत्तियों का सामना करने में समर्थ हो। जब बालक का शरीर स्वस्थ होगा, हृष्ट-पुष्ट होगा और नीरोग होगा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक 2685

तभी वह दीर्घायु हो सकेगा । दीर्घ आयु के लिए शारीरिक नीरोगता और पुष्टता अनिवार्य है । बचपन से ही बालक के स्वास्थ्य पर इस प्रकार ध्यान रखा जाएगा तो वह अवश्य दीर्घायु होगा ।

टिप्पणी--(१) एहि—आ । आ + इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० १ । (२) अश्मानम्—पत्थर या शिला पर । अश्मन् (पत्थर) + द्वि० १ । (३) आ तिष्ठ—खड़े हो, चढ़ो, पैर रखो । आ + स्था (तिष्ठ्, रुकना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १ । (४) अश्मा—पत्थर, पत्थर के तुल्य कठोर । (५) भवतु—हो । भू (होना) + लोट् प्र० १ । (६) कृण्वन्तु—करें । कृ (करना, स्वादि, पर०) + लोट् प्र० ३ । (७) शरदः शतम्—सौ वर्ष । शरद् (वर्ष) + ष० १ ।

३१. वीर पुत्रों से युक्त हों

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ
सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून् मे
पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥

यजु० ३-३७

अन्वय—भूः भुवः स्वः, प्रजाभिः सुप्रजाः स्याम्, वीरैः सुवीरः, पोषैः सुपोषः (स्याम्) । हे नर्य, मे प्रजां पाहि । हे शंस्य, मे पशून् पाहि । हे अथर्य, मे पितुं पाहि ।

शब्दार्थ—(भूः भुवः स्वः) हे सत्, चित् और आनन्दरूप परमात्मन्, (प्रजाभिः) प्रजा या सन्तानों से, (सुप्रजाः) योग्य सन्तान वाला, (स्याम्) होऊं । (वीरैः) वीर पुत्रों से, (सुवीरः) योग्य वीर-पुत्रों वाला, (स्याम्) होऊं । (पोषैः) ऐश्वर्य या समृद्धि से, (सुपोषः) ऐश्वर्य-सम्पन्न, (स्याम्) होऊं । (हे नर्य) हे मनुष्यों के लिए हितकर ईश, (मे प्रजां पाहि) मेरी सन्तानों की रक्षा करो । (हे शंस्य) हे प्रशंसनीय ईश, (मे) मेरे, (पशून्) पशुओं की, (पाहि) रक्षा करो । (हे अथर्य) हे सतत गतिशील या हे तेजोमय, (मे) मेरे, (पितुम्) अन्न की, (पाहि) रक्षा करो ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—हे सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मन् ! मैं सन्तानों से सु-सन्तान वाला, वीर-पुत्रों से वीर-पुत्र वाला और ऐश्वर्य से ऐश्वर्य-संपन्न होऊं। हे मानव के हितकारी ! तुम मेरी संतानों की रक्षा करो। हे प्रशंसनीय ! तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। हे सतत गतिशील ! तुम मेरे अन्नादि की रक्षा करो।

Eng. Tr. —O God, all-pervading, omniscient and blissful ! May I possess good progeny, gallant sons and bounty of wealth. O Benevolent one ! protect my progeny. O Praiseworthy-one ! protect my animals. O Impetuous one ! protect my food.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से तीन अभीष्ट वस्तुओं की याचना की गई है और तीन वस्तुओं की सुरक्षा की प्रार्थना की गई है। तीन अभीष्ट पदार्थ हैं— १. योग्य संतान, २. वीर संतान, ३. ऐश्वर्य। तीन रक्ष्य वस्तुएं हैं— १. सन्तान, २. पशु, ३ अन्न।

इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि परमात्मा की कृपा से योग्य और वीर सन्तान मिले तथा ऐश्वर्य प्राप्त हो। परिवार की उन्नति के लिए आवश्यक है कि सुयोग्य और वीर पुत्र उत्पन्न हों। यदि संतान योग्य और सुशील नहीं है तो वह परिवार के लिए धूमकेतु है। अयोग्य सन्तान पग-पग पर दुःख देती है। यदि वह योग्य है और कायर है तो भी परिवार के लिए सुखद नहीं है, अतः मंत्र में सुवीर कहा गया है। पुत्र वीर और धीर होना चाहिए। इसके साथ ही प्रार्थना है कि परिवार में ऐश्वर्य हो, पुष्टि हो, समृद्धि हो। ऐश्वर्य के बिना परिवार उजड़े हुए जंगल के तुल्य है। इसलिए मंत्र में सुयोग्य और वीर सन्तान तथा ऐश्वर्य की कामना की गई है।

मंत्र के उत्तरार्ध में परमात्मा से प्रार्थना है कि वह हमारे परिवार के सन्तान, पशु और अन्न की रक्षा करे। सन्तान परिवार की आत्मा है, पशु उनके पोषक हैं और अन्न सन्तान के स्वस्थ्य का आधार है। इस प्रकार परिवार के लिए ये तीनों चीजें चाहिएं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा के गुणों का इस मंत्र में दो प्रकार से वर्णन किया गया है— १. भूः भुवः स्वः । २. नर्य, शंस्य, अथर्य । भूः—सत्‌रूप, भुवः—चेतनरूप, स्वः—आनन्दरूप । इस प्रकार सच्चिदानन्दरूप परमात्मा का उल्लेख है । परमात्मा नर्य—नरों या मनुष्यों का हितकारी है, शंस्य—प्रशंसनीय, स्तोतव्य है और अथर्य—गतिशील एवं प्रेरणा का स्रोत है, तेजोमय है । जो मानवों का हितचिन्तक है, प्रशंसनीय है और प्रेरणा का स्रोत है, वही मानव की उन्नति में सहायक हो सकता है ।

टिप्पणी—(१) भूर्भुवः स्वः—भूः—सत् रूप, भुवः—चित् या ज्ञानरूप, स्वः—आनन्दरूप । भूर्भुवः स्वः को महाव्याहृति कहते हैं । (२) सुप्रजाः—योग्य सन्तान वाला । सु + प्रजस् + प्र० १ । (३) स्याम्—होऊं । अस् (होना, अदादि, पर०) + विधिलिङ् उ० १ । (४) पोषैः—पुष्टि, ऐश्वर्य, समृद्धि, प्रचुरता से । (५)नर्य—हे मानवों के हितकारक । नर + य । हितकर अर्थ से य प्रत्यय । (६) पाहि—रक्षा करो । पा (रक्षा करना, अदादि, पर०) + लोट् म० १ । (७) शंस्य—प्रशंसनीय । शंस् (गुणगान करना) + य । (८) अथर्य—हे निरन्तर गतिशील या तेजोमय । अत् (निरन्तर घूमना, भ्वादि) से निपातन से अथर्य बना है । कुछ टीकाकारों ने यहां तीन अग्नियों को उल्लेख माना है— नर्य से गार्हपत्य अग्नि, शंस्य से आहवनीय अग्नि, अथर्य से दक्षिणाग्नि । अथर् का अर्थ अग्नि या ज्वाला भी है, अतः तेजोमय या दीप्तिमान् । (९) पितुम्—अन्न, भोज्य पदार्थ । पितु अन्नवाचक है ।

३२. पुत्रजन्म से अनृणता

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
　　एतत् तदग्ने अनृणो भवामि, अहतौ पितरौ मया ।
सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त,
　　विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥

यजु० १९—११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—पुत्रः प्रमुदितः धयन् यत् मातरम् आपिपेष, हे अग्ने, तत् एतत् (अहम्) अनृणः भवामि । मया पितरौ अहतौ । (हे देवाः) संपृचः स्थ, मा भद्रेण सं पृङ्क्त । (हे देवाः) विपृचः स्थ, मा पाप्मना वि पृङ्क्त ।

शब्दार्थ—(पुत्रः) मेरा पुत्र, (प्रमुदितः) प्रसन्नचित्त होकर, (धयन्) मां का दूध पीता हुआ, (यत्) जो, (मातरम्) अपनी माता को, (आ पिपेष) पीसता है, पैर से रगड़ता है, (तत् एतत्) तो यह, इस प्रकार से, (अहम्) मैं, (अनृणः) उऋण, (भवामि) होता हूँ। (मया) मैंने, (पितरौ) अपने माता-पिता की, (अहतौ) हानि नहीं की, उनकी वंश-परंपरा को विच्छिन्न नहीं किया । (हे देवाः) हे देवो, (संपृचः स्थ) तुम मिलाने वाले हो, संयोजक हो, (मा) मुझको, (भद्रेण) शुभ गुणों से, कल्याण से, (सं पृङ्क्त) युक्त करो। (विपृचः स्थ) तुम वियोजक हो, सत्य-असत्य के विवेचक हो, (मा) मुझे, (पाप्मना) पापों से, (वि पृङ्क्त) वियुक्त करो, पृथक् करो ।

हिन्दी अर्थ—मेरा पुत्र प्रसन्न होकर मां का दूध पीता हुआ जो अपनी मां को रगड़ता है, हे अग्नि ! इससे मैं (पितृ ऋण से) उऋण हो रहा हूँ। मैंने अपने माता-पिता की वंश-परंपरा को विच्छिन्न नहीं किया है। हे देवो ! तुम संयोजक हो, मुझे सद्‌गुणों से संयुक्त करो। तुम वियोजक हो, मुझे पापों से पृथक् करो।

Eng. Tr.—O Fire-god ! I am free from debt, as a son is born to me, who sucks the breast of his mother joyously and treads on her. By begetting a son, I have rendered a good service to my parents. OGo ds ! you are uniting force, unite me with virtues. O Gods ! you are separating force, separate me from vices.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीन बातों का उल्लेख किया गया है—१. पुत्रजन्म से पितृ-ऋण से उऋणता, २. सद्‌गुणों से युक्त होना, ३. दुर्गुणों या पापों से पृथक् होना।

मंत्र में कहा गया है कि पुत्र-जन्म से पिता अपने पूर्वजों के ऋण से उऋण होता है। कुल-वृद्धि और वंश-परंपरा को अविच्छिन्न रखना, यह प्रत्येक मानव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का कर्तव्य है। वंश-परंपरा को पुत्रजन्म के द्वारा अविच्छिन्न रखा जाता है। अतएव पुत्रजन्म पर प्रसन्नता प्रकट की जाती है। बच्चा मां का दूध पीवे, मां की गोद में खेले-कूदे और मां के अंगों को धूलि-धूसरित करे, यह प्रसन्नता की बात है। इसका ही मंत्र में वर्णन किया गया है। पुत्रजन्म से पिता अपने माता-पिता के ऋण से मुक्त होता है। यही है पितृ-ऋण से उऋणता।

देवों के दो धर्म हैं—संश्लेषण और विश्लेषण, संयोजन और वियोजन, संपर्क और विपर्क। देवों में विवेक है, अतः वे कुछ गुणों को मिलाते हैं और कुछ तत्वों को पृथक् करते हैं। मंत्र में कहा गया है कि वे संपृच् (मिलाने वाले) हैं। वे हमें सद्गुणों, भद्र विचारों और शुभ संकल्पों से युक्त करें। संसार की जो भी अच्छाइयां हैं, उनसे हमें युक्त करें। दूसरी ओर वे वियोजक या विपृच् हैं। अतः वे हमें पापों से हटावें, दुर्गुणों से रहित करें और अभद्र या अशिव से पृथक् रखें। इस प्रकार देवों की दोनों शक्तियों से सद्गुणों का ग्रहण और दुर्गुणों का परित्याग होता है। नवजात बालक भी सद्गुणों को ग्रहण करेगा और दुर्गुणों को छोड़ेगा।

टिप्पणी—(१) **आ पिपेष**—पीसा, रगड़ा, मां को पैरों से रगड़ा। आ + पिष् (पीसना, रुधादि, पर०) + लिट् प्र० १। (२) **प्रमुदितः**—प्रसन्नचित्त होकर। (३) **धयन्**—दूध पीता हुआ। धे (मां का दूध पीना, भ्वादि, पर०) + शतृ प्र० १। (४) **अनृणः भवामि**—पितृ-ऋण से उऋण होता हूँ। (५) **पितरौ अहतौ**—अपने माता-पिता को हानि नहीं पहुँचाई। उनकी वंश-परंपरा लुप्त नहीं की। (६) **संपृचः स्थ**—मिलाने वाले हो, संयोजक हो। सं + पृच् (मिलाना, रुधादि) + क्विप् (०) + प्र० ३। स्थ—तुम हो। अस् (होना, अदादि) + लट् म० ३। (७) **भद्रेण**—शुभ गुणों से, कल्याण से। (८) **सं पृङ्क्त**—युक्त कीजिये। सं + पृच् (मिलाना, रुधादि) + लोट् म० ३। (९) **विपृचः स्थ**—वियोजक हो, विश्लेषण करने वाले हो। वि + पृच् (हटाना, रुधादि) + क्विप् (०) + प्र० ३। (१०) **पाप्मना**—पापों से। पाप्मन् (पाप) + तृ० १। (११) **वि पृङ्क्त**—हटाइए, वियुक्त कीजिए। वि + पृच् (हटाना) + लोट् म० ३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३३. स्त्री से परिवार की समृद्धि

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥

यजु० १४-२२

अन्वय—यन्त्री राट् यन्त्री यमनी असि, ध्रुवा धरित्री असि। त्वा इषे, त्वा ऊर्जे, त्वा रय्यै; त्वा पोषाय (उपदधामि)।

शब्दार्थ—(यन्त्री) नियन्त्रण करने वाली, (राट्) प्रकाशमान, तेजस्विनी, (यन्त्री) स्वयं नियन्त्रण में रहने वाली, (यमनी) सबको नियमों में रखने वाली, (असि) है। (ध्रुवा) निश्चल भाव से परिवार में रहने वाली, (धरित्री) परिवार की धारक, या पृथिवी के तुल्य सहनशील, (असि) है। (त्वा इषे) तुझे अन्नसमृद्धि के लिए, (त्वा ऊर्जे) तुझे शक्ति और सामर्थ्य के लिए, (त्वा रय्यै) तुझे श्रीवृद्धि के लिए, (त्वा पोषाय) तुझे पुष्टि या धन-संरक्षण के लिए, (उपदधामि) रखता हूं।

हिन्दी अर्थ—स्त्री परिवार का नियन्त्रण करने वाली, तेजस्विनी, स्वयं नियन्त्रण में रहने वाली और सबको नियम में रखने वाली है। वह परिवार में निश्चल भाव से रहने वाली और परिवार की धारक (पोषक) है। तुझे अन्न-समृद्धि के लिए, शक्ति के लिए, श्री-वृद्धि के लिए और घर की पुष्टि के लिए रखते हैं।

Eng. Tr.—A woman is the controller of the family. She is brilliant. She regulates others and observes rules herself. She is an asset to the family. She supports the family. We possess you for food, strength, prosperiy and happiness.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्त्री के ६ गुणों का उल्लेख किया गया है। सुयोग्य गृहिणी में ये ६ गुण होने चाहिएँ—१. परिवार को नियंत्रण में रखे, २. स्वयं नियन्त्रण में रहे, ३. स्वयं नियमों का पालन करे और दूसरों से नियमों का पालन करावे, ४. तेजस्विनी एवं स्वामिनी हो, ५. परिवार में स्थिर भाव से रहे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६.परिवार का पालन-पोषण करे। इसका परिणाम यह होता है कि उस परिवार में अन्न, बल, श्री और समृद्धि इन चारों तत्त्वों का निवास होता है।

स्त्री परिवार को तभी नियन्त्रण में रख सकती है, जब वह स्वयं नियन्त्रण में रहना जानती हो। स्वयं संयम और नियमों का पालन करने वाली स्त्री ही परिवार को भी संयम और नियम में रख सकती है। अतएव मंत्र में स्त्री के अधिकार और कर्तव्य दोनों का समन्वय किया गया है। परिवार में नियन्त्रण, नियम, संयम और व्यवस्था अनिवार्य है। जहां इनका अभाव है, वहां अव्यवस्था और अनिश्चय की स्थिति रहती है।

नियन्त्रण और नियम के अतिरिक्त परिवार की सुचारु व्यवस्था के लिए स्त्री का विदुषी और तेजस्वी होना भी अनिवार्य है। कर्तव्य की शिक्षा देने के लिए स्वयं विदुषी होना भी आवश्यक है। स्त्री परिवार में स्थिर भाव से रहेगी, तभी वह स्थायी व्यवस्था कर सकेगी। स्थिर होने के लिए आवश्यक है कि वह परिवार को अपना समझे। उसके साथ तादात्म्य स्थापित करे। तभी उसमें परिवार के पालन-पोषण का भाव जागृत होगा। तभी वह धरित्री हो सकेगी। पृथिवी धरित्री है। वह संसार को पालती है। इसी प्रकार सुख-दुःखों को सहन करते हुए परिवार का पालन स्त्री का धर्म है।

टिप्पणी—(१) **यन्त्री**–नियन्त्रण करने वाली। यम् + तृच् (तृ) + ङीप् (ई)। (२) **राट्**—चमकने वाली, तेजस्विनी। राज् (चमकना, भ्वादि) + क्विप् (०) + प्र० १। ज् को ट्। (३) **यमनी**—नियम में रखने वाली। यम् + ल्युट् (अन) + ङीप् (ई) + प्र० १। (४) **ध्रुवा**—ध्रुव के तुल्य निश्चल भाव से रहने वाली। (५) **धरित्री**—परिवार की धारक। धरित्री का अर्थ पृथिवी भी है, अतः पृथिवी के तुल्य सहनशील। धृ + इत्र + ङीप् (ई)। (६) **इषे**—अन्न या अन्न-समृद्धि के लिए। इष् + च० १। (७) **ऊर्जे**—बल या शक्ति के लिए। ऊर्ज् + च० १। (८) **रय्यै**—धन के लिए। रयि (धन) + च० १। (९) **पोषाय**—पुष्टि के लिए, धन को सुरक्षित रखना पुष्टि है। पोष + च० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३४. स्त्री परिवार की उन्नायक

मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥

यजु० १४-२१

अन्वय—(हे स्त्रि) मूर्धा राड् असि, ध्रुवा धरुणा असि, धर्त्री धरणी असि। त्वा आयुषे, त्वा वर्चसे, त्वा कृष्यै, त्वा क्षेमाय (उपदधामि)।

शब्दार्थ—(हे स्त्रि) हे स्त्री, (मूर्धा) तू मूर्धन्य, अग्रगण्य, सर्वोत्कृष्ट है, (राड् असि) तू तेजस्विनी है, (ध्रुवा) तू निश्चल रूप से रहने वाली, (धरुणा) परिवार की आधार-रूप, (असि) है। (धर्त्री) परिवार को धारण करने वाली, (धरणी) पृथ्वी की तरह सहनशील या मर्यादा-स्वरूप है। (त्वा आयुषे) तुझको दीर्घ आयु के लिए, (त्वा वर्चसे) तुझे तेजस्विता के लिए, (त्वा कृष्यै) तुझे कृषि की समृद्धि के लिए, (त्वा क्षेमाय) तुझे परिवार के कल्याण के लिए, (उपदधामि) रखता हूँ।

हिन्दी अर्थ—हे स्त्री ! तू मूर्धन्य है, तू तेजस्विनी है, तू निश्चल रूप से रहने वाली हैं, तू परिवार की आधार-रूप है, तू परिवार को धारण करने वाली है, तू पृथ्वी के समान मर्यादा-रूप है। तुझे दीर्घायु, तेजस्विता, कृषि-समृद्धि और परिवार के कल्याण के लिए परिवार में रखता हूँ।

Eng. Tr.—O woman ! You are pioneer, brilliant, stable, supporter, nourishing and rules-observing like the earth. I possess you in the family for longevity, brilliance, agricultural prosperity and welfare.

अनुशीलन—इस मंत्र की व्याख्या के लिए पूर्व मंत्र ३३ की व्याख्या भी देखें। दोनों मन्त्रों में कुछ बातें समान हैं। इस मंत्र में भी स्त्री के छः गुणों का उल्लेख है। वे हैं—१. स्त्री विदुषी, अग्रगण्य हो, २. तेजस्विनी हो, स्वामिनी हो, ३. निश्चल भाव से परिवार में रहने वाली हो, ४. परिवार की आधाररूप हो, ५. परिवार की पालक हो, ६. सहनशील एवं मर्यादा-पालक हो। स्त्री इन गुणों से युक्त होती है तो परिवार में लोगों की आयु बढ़ेगी, उनका तेज बढ़ेगा, उनका कल्याण होगा और परिवार की कृषि में विकास होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री परिवार का आधार है। वह परिवार को स्वर्ग बना सकती है और नरक भी। स्त्री जितनी अधिक सुशिक्षित और सुसंस्कृत होगी, उतना ही परिवार सुखी और शान्तियुक्त होगा। परिवार में सुन्दर वातावरण की सृष्टि करना स्त्री का कर्तव्य है। अतः मंत्र में कहा गया है कि वह अपनी योग्यता और विद्वत्ता से मूर्धन्य होकर रहे। स्वयं तेजस्विनी हो। परिवार में स्थिररूप से रहे। परिवार को अपना घर समझे और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करे। वह परिवार का आधार है, अतः अपने कर्तव्यों का पालन करे। वह दूसरों के हित की चिन्ता करे, उन्हें सुख-सुविधा प्रदान करे। वह परिवार की मर्यादाओं से परिचित हो और उन मर्यादाओं की रक्षा करे।

ऐसा करने से परिवार में श्रीवृद्धि होगी। परिवार के सदस्यों की आयु बढ़ेगी और उनमें तेजस्विता आएगी। उनका जीवन सुखी होगा। साथ ही पशु-समृद्धि के कारण कृषि में भी उन्नति होगी और धन-धान्य की वृद्धि होगी।

टिप्पणी—(१) मूर्धा असि—शिर के तुल्य, मूर्धन्य, अग्रगण्य है। (२) राट्—तेजोमय, प्रकाशमान। राज् (चमकना) + क्विप् (०) + प्र० १। (३) ध्रुवा—निश्चल, स्थिर। परिवार में स्थिर रूप से रहने वाली। (४) धर्त्री—धारण करने वाली। परिवार को धारण करने वाली या पालक। (५) धरुणा—आधार-स्वरूप, परिवार की आधार-रूप। (६) धरणी—पृथ्वी, आधार। पृथ्वी की तरह मर्यादारूप सहनशील। (७) आयुषे—दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए। आयुष् (आयु) + च० १। (८) वर्चसे—तेज या तेजस्विता के लिए। वर्चस् + च० १। (९) कृष्यै—कृषिकर्म के लिए, कृषि की उन्नति के लिए। (१०) क्षेमाय—परिवार के सुख या कल्याण के लिए। संगृहीत धन की सुरक्षा को क्षेम कहते हैं।

३५. अतिथि-सत्कार अनिवार्य कर्म

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति,
य: पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३५ ॥
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति,
य: पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३६ ॥

अथर्व० ९-६-३५, ३६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति, एषः गृहाणां कीर्ति च वै यशः च अश्नाति ।

यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति, एषः गृहाणां श्रियं च वै संविदं च अश्नाति ।

शब्दार्थ—(यः) जो, (अतिथेः) अतिथि से, (पूर्वः) पहले, (अश्नाति) भोजन करता है, (एषः) वह, (गृहाणाम्) अपने घर की, (कीर्ति च वै) कीर्ति को, (यशः) यश को, (अश्नाति) खाता है, नष्ट करता है । (यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि से पहले भोजन करता है, (एषः) वह (गृहाणाम्) घर की, (श्रियं च वै) लक्ष्मी को, (संविदं च) और समृद्धि को, संपत्ति को, (अश्नाति) खाता है, नष्ट करता है ।

हिन्दी अर्थ—(क) जो अतिथि से पहले भोजन करता है, वह अपने घर की कीर्ति और यश को खा जाता है, अर्थात् नष्ट कर देता है । (ख) जो अतिथि से पहले भोजन करता है, वह अपने परिवार की श्री और सम्पत्ति को खा जाता है , अर्थात् नष्ट कर देता है ।

Eng. Tr. – (A) He who takes meal before serving to a guest, ruins his family's fame and glory.

(B) He who takes meal before serving to a guest, loses his family's wealth and prosperity.

अनुशीलन—इस मंत्र में अतिथि-सत्कार का महत्त्व वर्णित है । अतिथि को खिलाकर ही खावे । जो अतिथि को खिलाने से पूर्व खा लेता है, उसके परिवार की कीर्ति, यश, श्री और संविद् समाप्त हो जाते हैं ।

अतिथि-सत्कार एक सामाजिक कार्य है । ज्ञानी, विद्वान् और संन्यासी को अतिथि कहते हैं । वे भिक्षावृत्ति से अपनी आजीविका चलाते हैं । समाज का कर्तव्य है कि उनके संरक्षण और भोजनादि की व्यवस्था करे । इसलिए पंचयज्ञों में अतिथियज्ञ या अतिथि-सत्कार का विधान हैं । प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह अतिथि का आदर करे और उसे भोजनादि दे । जो अतिथि का निरादर करता है और उसे भोजनादि नहीं देता, वह पापी होता है । अतिथि उसके पुण्यों को ले जाता है और उसके घर पर पाप छोड़ जाता है । अतएव कहा है कि—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा, पुण्यमादाय गच्छति ।। हितो० मित्र० ६१

मंत्र में वर्णन किया गया है कि अतिथि को न खिलाकर खाने वाले की कीर्ति, यश, श्री और सम्पत्ति नष्ट हो जाती हैं । कीर्ति और यश में यह अन्तर है कि कीर्ति में विस्तार है, यश में स्थिरता है । कीर्ति समाज में गुणगान है और यश श्रद्धामूलक है । यश में स्थायित्व है । इसी प्रकार श्री और संविद् में अन्तर है । श्री सभी प्रकार की सम्पत्ति है, पूर्वजों से प्राप्त या स्वार्जित । संविद् स्वयं उपार्जित और संगृहीत धन है । संविद् का अर्थ ज्ञान और एकता भी है । अतिथि-सत्कार न करने से परिवार की एकता और सामंजस्य का नाश होता है ।

टिप्पणी—(१) **कीर्तिं च यशः च**—कीर्ति और यश का । गुणों का जन-साधारण में गुणगान कीर्ति है और श्रद्धामूलक ख्याति यश है । (२) **वै**—अवश्य, निश्चय से, वस्तुतः । अव्यय है । (३) **अश्नाति**—खाता है । कीर्ति आदि को नष्ट कर देता है । अश् (खाना, क्र्यादि, पर०) + लट् प्र० १ । (४) **श्रियं संविदं च**—श्री और संपत्ति को । श्री लक्ष्मी या प्राप्त धन है, स्वयं पुरुषार्थ से उपार्जित एवं संगृहीत धन संविद् है, संविद् + द्वि० १ । संविद् के अर्थ हैं—ज्ञान, एकता, प्राप्ति, उपलब्धि, समन्वय ।

३६. अतिथि-सत्कार महान् व्रत है

एष वा अतिथिर्यत् श्रोत्रियः,
तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ।। ३७ ।।
अशितावति अतिथौ अश्नीयात्,
यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय,
तद् व्रतम् ।। ३८ ।।

अथर्व० ९-६-३७, ३८

अन्वय—एषः वै अतिथिः यत् श्रोत्रियः, तस्मात् पूर्वः न अश्नीयात् । अतिथौ अशितावति अश्नीयात्, यज्ञस्य सात्मत्वाय, यज्ञस्य अविच्छेदाय, तद् व्रतम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(एषः) यह, (वै) निश्चय से, (अतिथिः) अतिथि है, (यत्) जो, (श्रोत्रियः) वेदज्ञ या वेदपाठी है, (तस्मात्) उससे, (पूर्वः) पहले, (न) नहीं, (अश्नीयात्) खावे, भोजन करे। (अतिथौ) अतिथि के, (अशितावति) खा लेने पर, (अश्नीयात्) खावे, भोजन करे। (यज्ञस्य) यज्ञ की, अतिथियज्ञ की, (सात्मत्वाय) सांगता के लिए, परिपूर्णता के लिए, (यज्ञस्य) यज्ञ के, (अविच्छेदाय) अखंडता के लिए। (तद् व्रतम्) यह व्रत है, अर्थात् यह नियम गृहस्थ को अवश्य पालन करना चाहिए।

हिन्दी अर्थ—(क) वही वस्तुतः अतिथि है, जो वेदपाठी या वेदज्ञ है। उससे पहले भोजन न करे। (ख) अतिथि के भोजन कर लेने पर ही भोजन करे, यज्ञ (अतिथियज्ञ) की परिपूर्णता और अखंडता के लिए। यह व्रत (नियम) है, (सभी गृहस्थों को इसका पालन करना आवश्यक है)।

Eng. Tr.—(A) He is really a guest, who is well-versed in the Vedas. One should not take one's meal before serving it to him.

(B) One should take one's meal only when the guest has taken it. This rule is to be observed by all for the perfection and completion of the sacrifice.

अनुशीलन—इस मंत्र में अतिथि-सत्कार के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। अतिथि के भोजन कर लेने पर ही भोजन करे, इससे यज्ञ पूर्ण होता है और यज्ञ का पूरा फल मिलता है। यह अतिथि-सत्कार गृहस्थ के लिए नियम है।

इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि योग्य अतिथि कौन है? जो वेदज्ञ है या वेदपाठी है, वही सच्चा अतिथि है। वह जहाँ भी जाता है, वहां पूज्य है, मान्य है। वेदज्ञ अतिथि जिस परिवार में भी जाता है, वहां सर्वप्रथम उसे भोजन कराना चाहिए। उसके पश्चात् ही अन्य व्यक्ति भोजन करें। इस मंत्र में वेदज्ञ को श्रोत्रिय कहा है। जो वेदज्ञ हैं या वेद पढ़ते हैं, वे श्रुति-परम्परा को स्थायी बनाते हैं। वेद ज्ञान का आधार है। वेद ही हमारी आचार-संहिता है। जो वेद और शास्त्रों को पढ़ता है। वह मानव-मात्र की आचार-संहिता का ज्ञान रखता है। साथ ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे सारे शास्त्रों और धर्मग्रन्थों में वेद ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वमान्य हैं, अतः उनको सर्वत्र प्राथमिकता दी जाती है। मंत्र में इसी भाव से श्रोत्रिय को सर्वप्रथम भोजन खिलाने का आदेश है।

टिप्पणी—(१) **श्रोत्रियः**—वेदज्ञ या वेदपाठी। 'श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' (पा० ५-२-८४)। श्रोत्र (वेद) + घ (इय)। वेद को जानने वाला या वेद पढ़ने वाला ही वास्तविक रूप में अतिथि है। (२) **न अश्नीयात्**—न खावे, न भोजन करे। अश् (खाना, क्र्यादि, पर०) विधिलिङ् प्र० १। (३)**अशितावति**—खा लेने पर। अश् (खाना) + क्त (त) + मतुप् (वत्) + स० १। अशित को अशिता, छान्दस दीर्घ। (४) **अतिथौ**—अतिथि के। अतिथि + स० १। (५) **यज्ञस्य**—यज्ञ की। यहाँ अतिथियज्ञ अर्थ है। (६) **सात्मत्वाय**—पूर्णता या सांगता के लिए। स + आत्मन् + त्व + च० १। आत्मा से युक्त होने के लिए। (७) **अविच्छेदाय**—अ—नहीं, विच्छेदाय—खंडित होने के लिए। अर्थात् अखंडता के लिए। (८) **तद् व्रतम्**—यह व्रत या नियम है। यज्ञ के लिए व्रत का पालन अनिवार्य होता है, अतः गृहस्थ के लिए उक्त नियम अनिवार्य है।

३७. अतिथि-सत्कार का महत्त्व

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति,
यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३१ ॥
ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति,
यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३३ ॥

अथर्व० ९-६-३१, ३३

अन्वय—यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति, एषः गृहाणाम् इष्टं च वै पूर्तं च अश्नाति ॥

यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति, एषः गृहाणाम् ऊर्जां च वै स्फातिं च अश्नाति ॥

शब्दार्थ—(यः) जो, (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहले, (अश्नाति) भोजन करता है, (एषः) वह, (गृहाणाम्) अपने घर के, (इष्टं च वै) यज्ञ आदि कर्मों के फल को, (पूर्तं च) और धर्मार्थ किए गए कृत्यों के फल को, (अश्नाति) खा जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। (यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि से पहले खा लेता है, (एषः) वह, (गृहाणाम्) अपने घर के, (ऊर्जां च वै) शक्ति या सामर्थ्य को, (स्फातिं च) और समृद्धि को, (अश्नाति) खा जाता है।

हिन्दी अर्थ—जो अतिथि से पहले खाना खा लेता है, वह अपने घर के इष्ट (यज्ञादि) और पूर्त (धर्मार्थ-कार्य) को खा जाता है। जो अतिथि से पहले खाना खा लेता है, वह अपने घर की शक्ति और समृद्धि को खा जाता है।

Eng. Tr.—(A) He, who takes meal before serving it to a guest, loses the fruit of sacrifice and other charitable endowments. (B) He, who takes meal before serving it to a guest, loses his family's strength and prosperity.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी अतिथि-सत्कार के महत्त्व का वर्णन है। अतिथि-सत्कार दैनिक कर्तव्य है। पहले अतिथि को भोजन करावे, तत्पश्चात् स्वयं भोजन करे। मंत्र का कथन है कि जो अतिथि से पहले भोजन करता है, वह पापी है। इससे उसकी श्री, समृद्धि और इष्टापूर्त नष्ट हो जाते हैं।

इष्ट का अर्थ है—यज्ञ आदि कर्म। विभिन्न यज्ञों का करना इष्ट है। जो परोपकारार्थ या किसी की स्मृति आदि में कूप, तालाब, धर्मशाला आदि बनाना कार्य हैं, ये पूर्त कहाते हैं। इष्ट और पूर्त का अलग-अलग भी प्रयोग होता है और मिलाकर भी। मिलाने पर इन्हें इष्टापूर्त कहते हैं। इष्टापूर्त में सभी धार्मिक कर्म आ जाते हैं।

ऊर्जा का अर्थ है—शक्ति, बल या पराक्रम। ऊर्जा का अर्थ अन्न भी है। शारीरिक शक्ति ऊर्जा है। ऊर्जा स्फूर्ति का कारण है। स्फाति का अर्थ है—समृद्धि या संपन्नता। श्रीवृद्धि, वैभव और धन-समृद्धि स्फाति हैं। जो अतिथि-सत्कार नहीं करते हैं, उनकी ऊर्जा, समृद्धि, इष्ट और पूर्त नष्ट हो जाते हैं।

चाणक्य ने अतिथि की विधिवत् पूजा का आदेश दिया है।

अतिथिम् अभ्यागतं पूजयेद् यथाविधि। चा० सू० ५१४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनु आदि ने इस विषय में निर्देश दिया है कि पाखंडी, कुकर्मी आदि का सत्कार न करे। उनके लिए कहा है कि—'वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्' (मनु०) अर्थात् वाणीमात्र से भी इनका सत्कार न करे। नीतिशास्त्रकारों का मत है कि जिसके कुल-शील आदि का पता न हो, उसे घर में कभी भी स्थान न दे।

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्। हितोपदेश मित्र० ५५

टिप्पणी—(१) इष्टं च पूर्तं च—यज्ञ आदि कर्मों को इष्ट कहते हैं। यज्ञ का फल भी इष्ट है। धर्मार्थ किए गए दान, धर्मशाला, कूप, तालाब आदि का निर्माण पूर्त कहा जाता है। इनका फल भी पूर्त है। दोनों को मिलाकर इष्टापूर्त कहा जाता है। इसमें सभी धार्मिक कार्य आ जाते हैं। इष्ट—यज् (यज्ञ करना) + क्त (त)। पूर्त—पृ (पूरा करना, भरना) + क्त (त)। (२) अश्नाति—खाता है। अश् (खाना, क्र्यादि) + लट् प्र० १। (३) ऊर्जां च—शक्ति या सामर्थ्य को। (४) स्फातिं च—समृद्धि को। स्फाय् (फूलना, बढ़ना) + क्तिन् (ति)।

३८. घर में सुख-समृद्धि हो

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि,
गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम,
पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व॥

ऋग्० ७-५४-२

अन्वय— हे वास्तोष्पते, नः प्रतरणः एधि। हे इन्दो, गोभिः अश्वेभिः गयस्फानः (एधि)। ते सख्ये अजरासः स्याम। पिता इव पुत्रान् नः प्रति जुषस्व।

शब्दार्थ—(हे वास्तोष्पते) हे गृहस्वामिन् यज्ञिय अग्नि, (नः) हमारे, (प्रतरणः) पार लगाने वाले, उद्धारक, (एधि) होओ। (हे इन्दो) हे चन्द्रमा के तुल्य आह्-लादक, (गोभिः) गायों से, (अश्वेभिः) घोड़ों से, (गयस्फानः) घर की समृद्धि या खुशहाली को करने वाले, (एधि) होओ। (ते) तेरी, (सख्ये) मित्रता में रहते हुए,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अजरासः) वृद्धावस्था-रहित, (स्याम) होवें। (पिता इव पुत्रान्) पिता जिस प्रकार पुत्रों को, उसी प्रकार, (नः) हमें, (प्रति जुषस्व) प्रसन्न रखो, आनन्दित करो।

हिन्दी अर्थ—हे गृहपति यज्ञिय अग्नि ! तुम हमारे उद्धारक होओ। हे चन्द्रतुल्य आह्लादक ! तुम गायों और घोड़ों से हमारे घर की समृद्धि करो। तुम्हारी मित्रता में रहते हुए हम अजर (वृद्धावस्था से रहित) हों। पिता जिस प्रकार पुत्रों को, उसी प्रकार हमें आनन्दित करो।

Eng. Tr.—O Lord of the house, the domestic fire ! be promoter of our family. O Moon-like delighting-one ! make our house prosperous with cows and horses. Let us be unaging under your companionship. May you bless us with joy as a father blesses his sons.

अनुशीलन—इस मंत्र में गार्हपत्य अग्नि का महत्त्व वर्णन किया गया है। गार्हपत्य अग्नि गृहपति का काम करता है। पारिवारिक यज्ञ न केवल दैनिक कर्तव्य है, अपितु परिवार की सभी प्रकार की सुरक्षा, श्रीवृद्धि का आधार है।

इस मंत्र में यज्ञिय अग्नि को परिवार का उद्धारक बताया गया है। उसके द्वारा ही परिवार के सुख की वृद्धि होती है। पशु-समृद्धि होती है, आयु की वृद्धि होती है और सभी प्रकार की सुख-शान्ति रहती है। यज्ञिय अग्नि को परिवार का रक्षक बताया गया है। जिस प्रकार पिता अपने पुत्रों की रक्षा करता है, उन्हें मार्ग बताता है और ज्ञान देता है, उसी प्रकार गार्हपत्य अग्नि परिवार की रक्षा करता है, उनको दीर्घायु करता है और पशु-समृद्धि आदि से युक्त करता है।

टिप्पणी—(१) वास्तोष्पते—हे गृहपति, हे गार्हपत्य अग्नि। वास्तोः—घर के, पति—स्वामी। वास्तु का अर्थ घर है। पारिवारिक यज्ञ की अग्नि को गार्हपत्य अग्नि कहते हैं। (२) प्रतरणः—पार करने वाले, उद्धारक, प्रवर्धक। (३) नः—हमारा। अस्मद् + प० ३। (४) एधि—होओ। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (५) गयस्फानः—गय—घर की, स्फानः—समृद्धि करने वाले। (६) इन्दो—हे चन्द्रमा के तुल्य आह्लादक। इन्दु + सं० १। इन्दु का अर्थ ऐश्वर्ययुक्त भी है। (७) अजरासः—वृद्धावस्था से रहित। जरा—बुढ़ापा। अजर + प्र० ३। (८) सख्ये—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मित्रता में। सखि + य = सख्य + स० १। (९) स्याम—होवें। अस् (होना, अदादि) + विधिलिङ् उ० ३। (१०) जुषस्व—प्रसन्न करो, आनन्दित करो। जुष् (प्रसन्न करना, तुदादि, आ०) + लोट् म० १।

३९. घर में अन्न-समृद्धि हो

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये
शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः॥

यजु० ३-४३; अथर्व० ७-६०-५

अन्वय—इह गावः उपहूताः, अजावयः उपहूताः। अथो अन्नस्य कीलालः नः गृहेषु उपहूतः। क्षेमाय शान्त्यै वः प्रपद्ये, शिवं शग्मं शंयोः शंयोः (अस्तु)।

शब्दार्थ—(इह) इस गृह में, (गावः) गायें, (उपहूताः) आमन्त्रित हैं। (अजावयः) बकरी और भेड़, (उपहूताः) आमन्त्रित हैं। (अथो) और, (अन्नस्य) अन्न का, (कीलालः) रस, पेय, (नः) हमारे, (गृहेषु) घरों में, (उपहूतः) आमन्त्रित है। (क्षेमाय) कल्याण के लिए, प्राप्त धन की सुरक्षा के लिए, (शान्त्यै) शान्ति के लिए, अनिष्ट-निवारण के लिए, (वः प्रपद्ये) तुम्हारी शरण में आता हूँ, तुम्हारे पास आता हूँ। (शिवम्) कल्याण, (शग्मम्) सुख, (शंयोः शंयोः) सुख और कुशलता, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ—इस घर में गाय, बकरी और भेड़ आमन्त्रित हैं। हमारे घरों में अन्न का पेय आमन्त्रित है। (हे गृह के देवो!) अपने कल्याण और शान्ति के लिए तुम्हारी शरण में आता हूँ। यहाँ सुख, कल्याण, शान्ति और कुशलता रहे।

Eng. Tr.—The cows, the goats, the sheep and the sweet beverage of grains are welcomed in our houses. O Gods of the the house! I approach you for peace and welfare. May happiness, welfare, peace and prosperity reside here.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—इस मंत्र में परिवार के सुख एवं समृद्धि के लिए पशु-धन और अन्न-समृद्धि की कामना की गई है। जिस घर में गाय आदि पशु हैं, वहाँ दूध-घी आदि की प्रचुरता होगी। परिवार के सभी व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होंगे। पारिवारिक समृद्धि के लिए पशु-धन भी आवश्यक है। इसी प्रकार अन्न की बहुलता भी होनी चाहिए। विविध अन्नों के द्वारा ही हमारे सारे भोज्य पदार्थ बनते हैं। अतएव पशु एवं अन्न दोनों प्रकार के धनों की प्रार्थना की गई है।

साथ ही यह भी प्रार्थना की गई है कि परिवार में सुख, शान्ति, कल्याण और योगक्षेम रहे। शिव और शग्म में अन्तर किया गया है कि लौकिक सुख शिव है और पारलौकिक सुख शग्म है। शंयोः शब्द योगक्षेम का सूचक है। शम् + योः को मिलाकर शंयोः बना है। शम् का अर्थ है सुख, शान्ति और योः का अर्थ है—सुरक्षा, कल्याण। इस प्रकार शंयोः शब्द योगक्षेम का अर्थ बताता है।

टिप्पणी—(१) **उपहूताः**—आमन्त्रित हैं या बुलाई जा रही हैं। उप + ह्वे (पुकारना, भ्वादि) + क्त (त) + प्र० ३। (२) **अजावयः**—अज–बकरी, अवि–भेड़। (३) **अन्नस्य कीलालः**—अन्नों से बनाया हुआ पेय पदार्थ। कीलाल का अर्थ मधुर रस, मधुर पेय, शक्तिवर्धक आसव आदि पेय है। (४) **क्षेमाय**—कल्याण के लिए। प्राप्त या संगृहीत धन की सुरक्षा क्षेम है। (५) **शान्त्यै**—शान्ति के लिए, सब प्रकार के अनिष्टों के निवारण के लिए। (६) **प्रपद्ये**—पास जाता हूँ, शरण में आता हूँ। प्र + पद् (जाना, दिवादि, आ०) + लट् उ० १। (७) **शिवं शग्मम्**—दोनों का अर्थ सुख है। शिव लौकिक सुख के लिए है और शग्म पारलौकिक सुख के लिए है। (८) **शंयोः शंयोः**—शम्–सुख, योः–कल्याण, सुरक्षा। सभी प्रकार का कल्याण शंयोः है। सदा कल्याण रहे, अतः दो बार पाठ है।

४०. घरों में श्री और शक्ति हों

त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय।
आ पुष्टमेत्वा वसु ॥

अथर्व० ६-७९-२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—हे नभसस्पते, त्वं नः गृहेषु ऊर्जं धारय । पुष्टम् आ एतु, वसु आ (एतु) ।

शब्दार्थ—(हे नभसस्पते) हे अन्तरिक्ष के स्वामिन्, हे परमात्मन्, (त्वम्) तुम, (नः) हमारे, (गृहेषु) घरों में, (ऊर्जम्) शक्ति या बल को, (धारय) रखो । (पुष्टम्) पुष्टिकारक पदार्थ अन्नादि, (आ एतु) आवे, प्राप्त हो । (वसु) धन, (आ एतु) प्राप्त हो ।

हिन्दी अर्थ—हे अन्तरिक्ष के स्वामी परमात्मन् ! तुम हमारे घरों में शक्ति प्रदान करो । यहाँ पौष्टिक पदार्थ और धन आवें ।

Eng. Tr.—O Lord of the space ! bestow strength on our family-members. May nourishing food and wealth come to them.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे घरों में शक्ति, अन्न-समृद्धि और धन दे । शक्ति के द्वारा अन्न का उपयोग होता है । शक्ति जीवन में पराक्रम, स्फूर्ति और साहसिकता देती है । अन्न जीवन की आवश्यकता पूर्ण करता है । अन्न के अभाव में धन निरर्थक है । धन अन्न का साधन है । धन से अन्न प्राप्त किया जाता है और अन्न से शक्ति मिलती है । इस प्रकार ये तीनों चीजें मिलकर परिवार को सुखी बनाते हैं ।

टिप्पणी—(१) नभसस्पते—नभस् अर्थात् अन्तरिक्ष या आकाश के स्वामी । नभसः पते, सं० १ । (२) ऊर्जम्—शक्ति या बल को । ऊर्ज् का अन्न अर्थ भी होता है । ऊर्ज् + द्वि० १ । (३) धारय—रखो । धृ (रखना, दिवादि, आ०) + णिच् + लोट् म० १ । (४) पुष्टम्—पुष्टिकारक पदार्थ, अन्न आदि । (५) आ एतु—आवे, प्राप्त हो । आ + इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् प्र० १ । (६) वसु—धन, समृद्धि ।

४१. घर को स्वर्ग बनावें

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति,
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे
तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥
अथर्व० ६-१२०-३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—यत्र सुहार्दः सुकृतः स्वायाः तन्वः रोगं विहाय मदन्ति । तत्र स्वर्गे अङ्गैः अश्लोणाः अह्रुताः (वयम्) पितरौ पुत्रान् च पश्येम ।

शब्दार्थ—(यत्र) जहाँ, (सुहार्दः) अच्छे हृदय वाले, स्नेही, प्रेमी, (सुकृतः) पवित्र कर्म करने वाले, पुण्यात्मा, (स्वायाः) अपने, (तन्वः) शरीर के, (रोगम्) रोग को, (विहाय) छोड़कर, (मदन्ति) आनन्द से रहते हैं । (तत्र) वहाँ, (स्वर्गे) स्वर्ग-तुल्य घर में, (अङ्गैः) अंगों से, (अश्लोणाः) रोग-रहित, अंग-विकार-रहित, (अह्रुताः) अकुटिल, ऋजु, (पितरौ) अपने माता-पिता को, (पुत्रान् च) और अपने पुत्रों को, (पश्येम) देखें ।

हिन्दी अर्थ—जहाँ शुद्ध हृदय वाले और पवित्रात्मा लोग अपने शरीर के रोगों को छोड़कर आनन्द से रहते हैं, ऐसे स्वर्गतुल्य घर में हम स्वयं अंगों से अविकृत और अकुटिल रहते हुए अपने माता-पिता और पुत्रों को देखें ।

Eng. Tr.—Let us be in the heaven-like houses, with our parents and sons, where the noble-hearted, pious and healthy ones reside joyously.

अनुशीलन—इस मंत्र में परिवार को स्वर्ग बनाने की विधि दी गई है । कोई परिवार कैसे स्वर्ग बन सकता है ? इसके साधन हैं—हृदय की शुद्धता, सत्कर्मों को करना, नीरोगता, अंगविकार का अभाव और ऋजुता ।

जबतक परिवार में सौहार्द नहीं होगा, मित्रता का भाव नहीं होगा और हृदय की शुद्धि नहीं होगी, तबतक परिवार में एकता नहीं होगी । वे मिलकर काम नहीं करेंगे और न उनमें आत्मीयता का भाव जागृत होगा । दूसरी बात बताई गई है कि सत्कर्मों की ओर प्रवृत्ति हो । सभी अच्छे कर्म करें, बुरे कामों से बचें, तभी सुखद वातावरण तैयार हो सकेगा । जहाँ परिवार में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, विवाद आदि हैं, वहाँ सुख और शान्ति की आशा करना व्यर्थ है ।

तीसरी बात बताई गई है कि परिवार में कोई रोगी न हो । रोगी व्यक्ति परिवार के लिए एक समस्या बन जाता है । अस्थायी रोगों की तुरन्त चिकित्सा होनी चाहिए । योगासन, व्यायाम आदि से अन्य रोगों को भी दूर किया जाए ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकृत अंगों की भी चिकित्सा कराई जाए। अनेक अंगविकार उचित पथ्य एवं आहार-विहार के नियन्त्रण से ठीक हो जाते हैं।

अन्तिम बात बताई गई है कि जीवन में कुटिलता न हो, ऋजुता हो, सरलता हो और सुशीलता हो। कुटिलता परिवार की शान्ति का विध्वंसक है और सुशीलता संरक्षक। सरलता और सुशीलता परिवार की रक्षा करते हैं, परिवार की श्रीवृद्धि करते हैं और समन्वय की स्थापना करते हैं।

टिप्पणी—(१) यत्रा—जहाँ। यत्र को यत्रा, छान्दस दीर्घ। (२) सुहार्दः—शुद्ध हृदय वाले। सुहार्द् + प्र० ३। (३) सुकृतः—पवित्र कर्म करने वाले। सुकृत् + प्र० ३। (४) मदन्ति—आनन्दित होते हैं, आनन्द से रहते हैं। मद् (आनन्दित होना, भ्वादि, पर०) + लट् प्र० ३। (५) विहाय—छोड़कर। वि + हा (छोड़ना, जुहोत्यादि) + ल्यप् (य)। (६) तन्वः—शरीर का। तनू + ष० १। (७) अश्लोणाः—रोग-रहित। अ—नहीं, श्लोण—लंगड़ापन आदि अंगविकार। (८) अह्रुताः—अ—नहीं, ह्रुत—कुटिलता, कुटिलता से रहित, ऋजुगामी, सरल। (९) स्वर्गे—स्वर्गतुल्य घर में। जहाँ सुखका निवास है, वह स्वर्ग है। स्वः—सुख, ग—जाना, होना। (१०) पश्येम—देखें। दृश् (पश्य्, देखना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३। (११) पितरौ—अपने माता-पिता को। पितृ (माता-पिता) + द्वि० २।

४२. घर सभी सुविधाओं से युक्त हों

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तः, ते नो जानन्त्वायतः॥

अथर्व० ७-६०-२

अन्वय—इमे गृहाः मयोभुवः ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः। ते वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः आयतः नः जानन्तु।

शब्दार्थ—(इमे) ये, (गृहाः) घर, (मयोभुवः) सुखद, (ऊर्जस्वन्तः) शक्तिप्रद धान्यादि से युक्त, (पयस्वन्तः) दूध आदि से युक्त हैं। (ते) वे घर, (वामेन) अभीष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदार्थों से, धन से, (पूर्णाः तिष्ठन्तः) परिपूर्ण रहते हुए, (आयतः) आने वाले, प्रवास आदि लौटने वाले, (नः) हमको, (जानन्तु) जानें ।

हिन्दी अर्थ—ये घर सुखदायी हैं, अन्नादि से युक्त हैं और दूध आदि से संपन्न हैं । ये सभी अभीष्ट पदार्थों से परिपूर्ण रहते हुए, प्रवासादि से लौटने पर हमको जानें ।

Eng. Tr.—These houses are cosy, plentiful of food and milk. May these happy family-members recognise us, when we return from abroad.

अनुशीलन—इस मंत्र में आदर्श घर की एक रूपरेखा खींची गई है । ये गुण हैं—१. घर सुखद हो, २. घर में अन्न आदि शक्तिप्रद वस्तुएं हों, ३. घर में दूध आदि की प्रचुरता हो, ४. घर में सभी सुविधाएँ उपलब्ध हों ।

सर्वप्रथम घर की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर है कि वह सुखद हो । उसमें धूप और वायु के प्रवेश की व्यवस्था हो । कमरे न बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े । मकान की ऊँचाई, दरवाजे और खिड़कियाँ आदि सुरुचिपूर्ण हों । मकान में आवश्यक सामान रखने आदि की व्यवस्था हो । साथ ही शयन, पठन, भोजन आदि के लिए पृथक् कक्ष हों ।

घर की दूसरी आवश्यकता यह है कि घर में अन्न आदि की ठीक व्यवस्था हो । अच्छा और स्वास्थ्यवर्धक अन्न घर में सुरक्षित रहे । अन्न से ही शरीर में शक्ति आती है, अतः ऊर्जा के स्रोत अन्न आदि ही ऊर्जस्वन्तः से लिए जाएंगे । इसी प्रकार पयस्वन्तः का अभिप्राय है कि घर में दूध, घी, जल आदि का ठीक प्रबन्ध हो ।

तृतीय चरण का अभिप्राय है कि घर में सभी सुविधाएँ उपलब्ध हों । जो अभीष्ट या आवश्यक वस्तुएँ हैं, वे सभी घर में हों । यदि परिवार का कोई व्यक्ति व्यापार आदि के लिए परदेश में गया है, वह जब भी प्रवास से लौटता है, उस समय उसका हार्दिक स्वागत एवं सत्कार किया जाए ।

टिप्पणी—(१) मयोभुवः— सुखदायी । मयस् (सुख) + भू + प्र० ३ । (२) ऊर्जस्वन्तः—शक्तिप्रद अन्नादि से युक्त । ऊर्जस् + मतुप् (वत्) + प्र० ३ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३) पयस्वन्तः—दूध आदि से युक्त। पयस् (दूध, जल) + मतुप् (वत्) + प्र० ३। (४) वामेन पूर्णाः—अभीष्ट पदार्थों से पूर्ण। वाम का अर्थ है अभीष्ट पदार्थ, धन। (५) तिष्ठन्तः—रहते हुए। स्था (तिष्ठ्, रहना, रुकना, भ्वादि) + शतृ (अत्) + प्र० ३। (६) जानन्तु—जानें, समझें। ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०) + लोट् प्र० ३। ज्ञा को जा आदेश। (७) आयतः—आते हुए या आए हुए को। आ + इ (जाना, अदादि, पर०) + शतृ (अत्) + द्वि० ३।

४३. घर में कोई भूखा-प्यासा न रहे

उपहूता भूरिधनाः, सखायः स्वादुसंमुदः।
अक्षुध्या अतृष्या स्त, गृहा मास्मद् बिभीतन॥

अथर्व० ७-६०-४

अन्वय—भूरिधनाः स्वादुसंमुदः सखायः उपहूताः। हे गृहाः, अक्षुध्याः अतृष्याः स्त। अस्मद् मा विभीतन।

शब्दार्थ—(भूरिधनाः) धनी, संपन्न, (स्वादुसंमुदः) स्वादिष्ट पदार्थों से प्रसन्न होने वाले, (सखायः) मित्र, मित्रगण, (उपहूताः) आमन्त्रित हैं, आमन्त्रित किए गए हैं। (हे गृहाः) हे परिवार के लोगो, (अक्षुध्याः) भूख से रहित, (अतृष्याः) प्यास से रहित, (स्त) रहो। (अस्मद्) हमसे, (मा) मत, (विभीतन) डरो।

हिन्दी अर्थ—संपन्न और स्वादिष्ट भोजन से प्रसन्न होने वाले मित्रगण आमन्त्रित किए गए हैं। हे परिवार वालो! तुममें से कोई भी भूखा और प्यासा न रहे। तुम हमसे किसी प्रकार भयभीत न हो।

Eng. Tr.—We invite rich friends, who relish sweets well. O Family-members! none should be left hungry and thirsty in the house. You need not be afraid of us.

अनुशीलन—इस मंत्र में परिवार को सुखी रखने के लिए दो शिक्षाएं दी गई हैं। वे हैं—१. मित्रों को भोजनादि के लिए आमन्त्रित करना, २. परिवार का कोई व्यक्ति भूखा-प्यासा न रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र में प्रथम शिक्षा दी गई है कि अपने मित्रों या इष्टवर्ग को भोजन के लिए निमन्त्रित किया जाए। मित्रों के विषय में दो बातें कही गई हैं—मित्र संपन्न परिवार वाले हों और मधुर भोजन से प्रसन्न होने वाले हों। इस मंत्र का अभिप्राय है कि श्रेष्ठ और कुलीन परिवारों से ही अपना संबन्ध बना कर रखना चाहिए। जिस स्तर के व्यक्तियों से मिलना-जुलना होगा, उसी स्तर का वातावरण बनेगा। उच्च कुलीन व्यक्तियों के सम्पर्क से उच्च विचारों का आदान प्रदान होगा। अतएव नीति का कथन है कि—

ययोरेव समं वित्तं, ययोरेव समं बलम्।
तयोर्विवाहो मैत्री च, नोत्तमाधमयोरपि ॥ हितोपदेश, सुहृद्० १६६

अर्थात् मित्रता और विवाह समान ऐश्वर्य और समान बल वाले से ही करना चाहिए। अपने से ऊँचे या नीचे से नहीं। मंत्र में 'भूरिधनाः' के द्वारा सम्पन्न परिवारों से ही मित्रता उचित बताई है। 'स्वादुसंमुदः' का अभिप्राय है कि मित्रगण मिष्टान्न आदि से प्रसन्न होने वाले हों।

मंत्र की दूसरी शिक्षा है कि परिवार में कोई भूखा-प्यासा न रहे। परिवार की अर्थ-व्यवस्था ठीक रखने पर परिवार का कोई भी सदस्य भूखा-प्यासा नहीं रह सकेगा। साथ ही परिवार से सम्बद्ध नौकर-चाकरों के भी भोजनादि की व्यवस्था ठीक रखनी चाहिए।

टिप्पणी—(१) **उपहूताः**—बुलाए गए हैं, आमन्त्रित हैं। उप + ह्वे (बुलाना) + क्त (त) + प्र० ३। (२) **भूरिधनाः**—भूरि–अधिक, धनाः–धन वाले, संपन्न, धनी। (३) **सखायः**—मित्रगण। सखि + प्र० ३। (४) **स्वादुसंमुदः**—स्वादिष्ट भोजन आदि से बहुत प्रसन्न होने वाले। प्र० ३। (५) **अक्षुध्याः**—अ–नहीं, क्षुध्याः–भूख के योग्य, भूख से पीडित। क्षुध् + य, भूख से पीडित। जो भूख से पीडित नहीं हैं। (६) **अतृष्याः**—प्यास से रहित। प्यास के कष्ट से रहित। तृष् + य = तृष्य। (७) **स्त**—रहो, होओ। अस् (होना, अदादि) + लोट् म० ३। (८) **गृहाः**—हे घर वालो। (९) **अस्मद्**—हमसे। अस्मद् + पं० ३। (१०) **मा बिभीतन**—मत डरो। भी (डरना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० ३। त को तन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४४. महान् सौभाग्य के लिए उठें

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेमम्
उच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन् उपसत्तारो अग्ने
ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये॥

अथर्व० २-६-२

अन्वय—हे अग्ने, सम् इध्यस्व च, इमं च प्र वर्धय। महते सौभगाय च उत् तिष्ठ। हे अग्ने, ते उपसत्तारः मा रिषन्। ते ब्रह्माणः यशसः सन्तु, मा अन्ये।

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे अग्नि, (सम् इध्यस्व च) तुम प्रदीप्त हो, प्रज्वलित हो। (इमं च) और इस यजमान को, (प्रवर्धय) बढ़ाओ, समृद्ध करो। (महते) महान्, (सौभगाय च) सौभाग्य के लिए, (उत् तिष्ठ) उठो, पुरुषार्थ करो। (हे अग्ने) हे अग्नि, (ते) तेरे, (उपसत्तारः) उपासक, (मा रिषन्) न नष्ट हों। (ते) तेरे, (ब्रह्माणः) स्तुतिकर्ता, (यशसः) यशस्वी, (सन्तु) हों, (मा अन्ये) और व्यक्ति नहीं।

हिन्दी अर्थ—हे अग्नि ! तुम प्रदीप्त हो और इस यजमान को समृद्ध करो। महान् सौभाग्य के लिए उठो (प्रयत्न-शील हो)। हे अग्नि ! तेरे उपासक कभी नष्ट न हों। तेरे स्तुतिकर्ता यशस्वी हों, अन्य नहीं।

Eng. Tr.—O Fire-god ! be kindled and make the devotee prosperous. Arise for the great fortune. O Fire-god ! let not your devotee be harmed. May your devotee alone be glorious, not others.

अनुशीलन—इस मंत्र में अग्नि का उदाहरण देकर शिक्षा दी गई है कि यदि जीवन में सौभाग्य की कामना है तो उठो और आगे बढ़ो। जो अग्नि के समीप रहते हैं और यज्ञ करते हैं, वे ही सदा यशस्वी होते हैं, अन्य व्यक्ति नहीं।

अग्नि तेज का पुंज है। अग्नि की शिखा सदा ऊपर की ओर रहती है। अग्नि का स्वाभाविक धर्म उष्णता है। अग्नि को जन्मसिद्ध तेजस्विता मिली है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र में अग्नि का उदाहरण दिया है कि जिस प्रकार अग्नि प्रदीप्त है, उसी प्रकार ऐश्वर्य की कामना करने वाले को सदा प्रवुद्ध होना चाहिए। सौभाग्य का इच्छुक सदा जागरूक हो, सदा प्रगतिशील हो, सदा अपना लक्ष्य ऊंचा रखे और अग्नि के तुल्य जीवन में कभी भी अनुत्साह न आने दे। जो प्रगतिशील है, कर्मण्य है और सदा जागरूक है, उसे जीवन में सफलता और सिद्धि अवश्य मिलती है। अतएव ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि–प्रगतिशील को श्री मिलती है। सूर्य सदा गतिशील है, अतः उसमें तेजस्विता है।

चरैवेति चरैवेति, इन्द्र इच्चरतः सखा।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्॥ ऐत० ब्रा०

जो उत्साही हैं, क्रियाशील हैं, उनके लिए ही यह संसार है। उन्हें ही जीवन में सिद्धि और सफलता मिलती है। उनका ही सौभाग्य और ऐश्वर्य बढ़ता है। मंत्र में शिक्षा दीगई है कि जो अग्नि के समीप बैठते हैं, यज्ञ करते हैं और अग्नि के गुणों से शिक्षा लेते हैं, वे ही संसार में यशस्वी होते हैं, विख्यात होते हैं और श्री-संपन्न होते हैं, अन्य व्यक्ति नहीं।

टिप्पणी—(१) **सम् इध्यस्व**—समिद्ध हो, प्रदीप्त हो, जलो। सम् + इन्ध् (जलना, रुधादि) + कर्मवाच्य य + लोट् म० १। (२) **प्र वर्धय**—बढ़ावो। वृध् (बढ़ना, भ्वादि) + णिच् + लोट् म० १। (३) **उत् तिष्ठ**—खड़े हो, पुरुषार्थ करो। स्था (तिष्ठ्, रुकना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (४) **महते सौभगाय**—महान् सौभाग्य के लिए। (५) **मा रिषन्**—न नष्ट हों। रिष् (क्षति-ग्रस्त होना, दिवादि) + लुङ् प्र० ३। मा के कारण अडागम नहीं, Inj. है। (६) **उपसत्तारः**—उपासक, समीप बैठने वाले। उप + सद् (समीप बैठना, भ्वादि) + तृ + प्र० ३। (७) **ब्रह्माणः**—स्तुतिकर्ता, स्तोत्र-पाठक। ब्रह्मन् के अर्थ मन्त्र, स्तुति, स्तोत्र, पुरोहित, ब्राह्मण हैं। यहाँ स्तुतिकर्ता अर्थ है। (८) **यशसः**—यशस्वी। यशस्विनः के अर्थ में यशसः है। यशस् + प्र० ३। (९) **मा अन्ये**—जो नास्तिक या ईशभक्त नहीं हैं, वे यशस्वी नहीं होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४५. महान् ऐश्वर्य प्राप्त हो

युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु,
महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै
सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।।

ऋग्० ३–५४–३

अन्वय—हे रोदसी, युवोः ऋतं सत्यम् अस्तु । नः महे सुविताय सु प्र भूतम् । हे अग्ने, दिवे पृथिव्यै इदं नमः (अस्तु) । प्रयसा सपर्यामि, रत्नं यामि ।

शब्दार्थ—(हे रोदसी) हे द्यावापृथिवी, (युवोः) तुम दोनों का, (ऋतम्) शाश्वत नियम, (सत्यम्) सत्य, (अस्तु) हो । (नः) हमारे, (महे) महान्, (सुविताय) अभ्युदय के लिए, कल्याण के लिए, (सु) अच्छी तरह, (प्र भूतम्) होओ । (हे अग्ने) हे अग्नि, (दिवे पृथिव्यै) द्युलोक और पृथिवी के लिए, (इदम्) यह, (नमः) नमस्कार, (अस्तु) हो । (प्रयसा) प्रेम से या हवि-रूपी अन्न से, (सपर्यामि) पूजा करता हूँ, (रत्नम्) रत्न या ऐश्वर्य को, (यामि) प्राप्त करता हूँ ।

हिन्दी अर्थ—हे द्यावापृथिवी ! तुम दोनों के शाश्वत नियम सत्य सिद्ध हों । तुम दोनों हमारे महान् अभ्युदय के लिए होओ । हे अग्नि ! द्युलोक और पृथिवी को यह हमारा प्रणाम है । मैं प्रेम से (या हविरूपी अन्न से) तुम्हारी पूजा करता हूँ और रत्नों को प्राप्त करता हूँ ।

Eng. Tr.—O Heaven and earth ! let your eternal laws prove true. May both of you bestow prosperity on us. O Fire-God ! I offer my obeisance to the heaven and earth. I worship yon with the oblations and obtain jewels.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि प्रकृति के कुछ नियम हैं, इन्हें प्राकृतिक नियम या ऋत कहते हैं । जो इन प्राकृतिक नियमों के अनुसार कर्म करते हैं, उन्हें प्रकृति का वरदान मिलता है, उनकी श्रीवृद्धि होती है । जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध आचरण करते हैं, वे संसार से नष्ट हो जाते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति मित्र और शत्रु दोनों है। जो उसके अनुकूल कार्य करता है, प्राकृतिक नियमों का पालन करता है, प्रकृति उसकी सहायता करती है। जो प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है, प्रकृति उसे नष्ट कर देती है। मंत्र में वर्णन किया गया है कि प्रकृति के नियम ऋत हैं, शाश्वत सत्य हैं। इस ऋत को पकड़ने से ही जीवन में सदा सुख की प्राप्ति होगी। भौतिक सुख मिलेगा, श्री-वृद्धि होगी और जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा।

मंत्र के उत्तरार्ध में इस अभ्युदय का गुर (रहस्य) बताया गया है। अभ्युदय का रहस्य है—ईश्वरोपासना, द्युलोक और पृथिवी को प्रसन्न रखना। देवयज्ञ या यज्ञ से द्यावा-पृथिवी को प्रसन्न किया जाता है। जहाँ यज्ञ से द्यावा-पृथिवी प्रसन्न रहते हैं, वहाँ, रत्नों की वर्षा होती है। वहाँ सभी प्रकार की सुख-समृद्धि स्वयं उपस्थित होती है। अतएव मंत्र में कहा गया है कि—

'सपर्यामि प्रयसा, यामि रत्नम्।'

अर्थात् मैं प्रेम से ईश्वरोपासना करता हूँ, अन्नादि से यज्ञ के द्वारा देवों की पूजा करता हूँ और रत्नों को प्राप्त करता हूँ। इस प्रकार मंत्र में रत्नों की प्राप्ति और समृद्धि का एक सूत्र दिया गया है।

टिप्पणी—(१) **युवोः**—तुम दोनों का। युवयोः के स्थान पर युवोः है। युष्मद् (तू) + ष० २। (२) **ऋतम्**—शाश्वत नियम, अटल नियम। (३) **सत्यम् अस्तु**—सत्य सिद्ध हों। (४) **महे**—महान्। महते के स्थान पर महे है। मह् (महान्) + च० १। (५) **सुविताय**—अभ्युदय के लिए, कल्याण के लिए। दुरित का विलोम शब्द है। सु + इत = सुवित + च० १। (६) **प्र भूतम्**—तुम दोनों होओ। भवतम् के स्थान पर भूतम् है। भू (होना, भ्वादि) + लोट् म० २। (७) **सपर्यामि**—पूजा करता हूँ। सपर् (पूजा करना, कण्ड्वादि) + य + लट् उ० १। (८) **प्रयसा**—प्रेम से या अन्न से। प्रयस् के अर्थ हैं—प्रेम, प्रिय अन्न, हविरूप में डाला गया अन्न। (९) **यामि**—जाता हूँ, प्राप्त करता हूँ। या (जाना, अदादि) + लट् उ० १। (१०) **रत्नम्**—रत्न, उत्तम धन, समृद्धि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४६. जो जागता है, वह पाता है

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते,
अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

ऋग्० ५-४४-१५; साम० १८२७

अन्वय—अग्निः जागार, तम् ऋचः कामयन्ते, अग्निः जागार, तम् उ सामानि यन्ति । अग्निः जागार, तम् अयं सोमः आह, अहं तव सख्ये न्योकाः अस्मि ।

शब्दार्थ—(अग्निः) अग्नि या तेजस्वी व्यक्ति, (जागार) जागता है, (तम्) उसको, (ऋचः) ऋचाएँ, (कामयन्ते) चाहती हैं । (अग्निः जागार तम् उ) अग्नि जागता है, उसको ही, (सामानि) सामवेद की ऋचाएं, (यन्ति) प्राप्त होती हैं । (अग्निः जागार) अग्नि जागता है, (तम् अयं सोमः आह) उससे यह सोम कहता है, (अहम्) मैं, (तव) तेरी, (सख्ये) मित्रता में, (न्योकाः) सुखपूर्वक निवास वाला, प्रसन्नचित्त, (अस्मि) हूँ ।

हिन्दी अर्थ—अग्नि (या तेजस्वी व्यक्ति) जागता है, उसको ही ऋचाएँ चाहती हैं । अग्नि जागता है, उसके पास ही सामवेद की ऋचाएँ आती हैं । अग्नि जागता है, उससे सोम कहता है कि मैं तुम्हारी मित्रता में सुखपूर्वक निवास करता हूँ, (प्रसन्न रहता हूँ) ।

Eng. Tr.—The Fire is ever-vigilant, the Rcs (the hymns of the Rgveda) love him. The fire is ever-vigilant, the Samans (the hymns of the Samaveda) go to him. The Fire is ever-vigilant, Soma confessed him of his being very much at ease is his company.

अनुशीलन—यह मंत्र एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा देता है । जो इस शिक्षा को अपना लेता है, उसका जीवन सफल हो जाता है । जो इसे नहीं अपनाता वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन में असफल रहता है। मंत्र की शिक्षा है कि जीवन में सदा जागरूक रहो। जो सदा जागरूक रहता है, उसे ही संसार की सब सम्पदा प्राप्त होती हैं।

संसार कर्म-स्थली है। यह एक रंगशाला है। इसमें व्यक्ति एक अभिनेता के रूप में उपस्थित होता है। जिसे जो कुछ अभिनय करना आता है, वह अपना प्रदर्शन करता है और समय समाप्त होते ही वह रंगमंच से हट जाता है। अभिनय कैसा रहा? यह उसके क्रिया-कलाप पर निर्भर है। मनुष्य कुछ करने के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है। उसे अपना लक्ष्य प्राप्त करना है। वह अपना लक्ष्य तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह सदा सक्रिय रहे और जागरूक रहे। जागरूक को ही जीवन में सफलता मिलती है। पुरुषार्थी को ही लक्ष्मी वरण करती है। अतएव तुलसीदास का कथन है कि पुरुषार्थी को ही संसार का सुख मिलता है, कर्महीन को नहीं।

सकल पदारथ हैं जग माहीं,
करमहीन नर पावत नाहीं ॥ रामचरितमानस

इसको ही संस्कृत में कहा गया है कि—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। हितोपदेश प्रस्ता० ३१

मंत्र का कथन है कि संसार में अग्नि ही जागरूकों में सर्वप्रथम है। वही सदा जागता है। इसलिए सारे वेद उसको ही चाहते हैं। सोमरूप परमात्मा भी अग्नि को ही मित्र बनाता है। सोम भी अग्नि की मित्रता से सदा सुखी रहता है। ये अग्नीषोम (अग्नि + सोम) ही हैं, जो संसार की रचना करते हैं। अग्नि और सोम के समन्वय के बिना सृष्टि-रचना ही नहीं हो सकती है।

टिप्पणी—(१) **अग्निः**—अग्नि या तेजस्वी व्यक्ति। (२) **जागार**—जागता है। जागृ (जागना, अदादि) + लिट् प्र० १। मैकडानल ने गृ (जागना) धातु मानी है और उसका लिट् प्र० १ का रूप माना है। गृ को ही द्विरुक्त जागृ धातु माना है। (३) **ऋचः**—ऋचाएं, ऋग्वेद के मंत्र। ऋच् + प्र० ३। (४) **कामयन्ते**—चाहते हैं। कम् (चाहना, भ्वादि, आ०) + णिङ् (अय) + लट् प्र० ३। जागते हुए को ही वेद चाहते हैं। (५) **सामानि**—सामवेद के मंत्र। सामन् + प्र० ३। (६) **यन्ति**—जाते हैं, प्राप्त होते हैं। इ (जाना, अदादि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर०) + लट् प्र० ३ । (७) आह—कहता है । ब्रू (कहना, अदादि, पर०) + लट् प्र० १ । ब्रू को आह् आदेश । (८) सख्ये—मित्रता में । सखि + य + स० १ । (९) न्योकाः—सुखद स्थान वाला, सुखपूर्वक रहने वाला, प्रसन्नचित्त । नि + ओकस् (घर, निवास) + प्र० १ ।

४७. शुभ लक्ष्मी के स्वामी हों

एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य
साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः ।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः
शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥

अथर्व० ७-११५-३

अन्वय—मर्त्यस्य तन्वा साकं जनुषः अधि एकशतं लक्ष्म्यः जाताः । तासां पापिष्ठाः इतः निः प्रहिण्मः । हे जातवेदः, शिवाः अस्मभ्यं नि यच्छ ।

शब्दार्थ—(मर्त्यस्य) मनुष्य के, (तन्वा साकम्) शरीर के साथ, (जनुषः अधि) जन्म से ही, (एकशतम्) एक सौ, (लक्ष्म्यः) लक्ष्मियां, विभूतियां, (जाताः) उत्पन्न हुई हैं । (तासाम्) उन लक्ष्मियों में से, (पापिष्ठाः) पापी, अधम या नीच वृत्तियों को, (इतः) यहाँ से, अपने हृदय से, (निः प्रहिण्मः) निकालते हैं, दूर करते हैं । (हे जातवेदः) हे उत्पन्न सृष्टि के ज्ञाता परमात्मन्, (शिवाः) शुभ या कल्याणकारी वृत्तियों को, (अस्मभ्यम्) हमें, (नि यच्छ) दीजिए ।

हिन्दी अर्थ—मनुष्य के शरीर के साथ जन्म से ही एक सौ लक्ष्मियां (विभूतियां) उत्पन्न हुई हैं । उनमें से निकृष्ट लक्ष्मियों (वृत्तियों) को अपने हृदय से दूर करते हैं । हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! शुभ वृत्तियाँ हमें दीजिए ।

Eng. Tr.—A man brings innumerable riches with his birth. We throw out polluted (foul) of them. O God ! give us fair instincts and tendencies.

अनुशीलन—मनुष्य परमात्मा का पुत्र है । परमात्मा संसार की समस्त लक्ष्मी का स्वामी है । अतएव मनुष्य अपने पिता की समस्त संपत्ति का उत्तराधिकारी है ।

६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराधिकारी का कर्तव्य है कि वह प्राप्त सम्पत्ति की सुरक्षा करे और उसकी वृद्धि करे। अतएव मंत्र में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य के जन्म के साथ सैकड़ों लक्ष्मी आती हैं। इन लक्ष्मियों को संभाल कर रखना और उनकी वृद्धि करना उसका कर्तव्य है। इन लक्ष्मियों को कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है? इसका उपाय बताया गया है कि मनुष्य की शुभ वृत्तियाँ इनको सुरक्षित रखती हैं और बुरी वृत्तियां इनको नष्ट करती हैं। यदि ईश्वरीय देन की सुरक्षा करनी है, तो शुभ वृत्तियों को अपनाना होगा और शुभ विचारों को जीवन में स्थान देना होगा। जहाँ शुभ वृत्तियाँ हैं, सद्-विचार हैं और सत्कर्मनिष्ठता है, वहाँ लक्ष्मी का निवास है। जहाँ अशुभ वृत्तियाँ हैं, पाप-भावनाएं हैं, कुकर्मों में प्रवृत्ति है, वहाँ लक्ष्मी का नाश हो जाता है। इसलिए वेद का आदेश है कि पाप-वृत्तियों को हटाओ, शुभ वृत्तियों को अपनाओ। इस प्रकार ही ईश्वर से प्राप्त श्री की वृद्धि हो सकती है।

टिप्पणी—(१) **एकशतम्**—एक सौ। (२) **लक्ष्म्यः**—लक्ष्मियां, विभूतियां। यहाँ मानव के शुभ एवं अशुभ संस्कारों या वृत्तियों को लक्ष्मी कहा गया है। (३) **तन्वा साकम्**—शरीर के साथ। तनू + तृ० १। साकम् (साथ) के कारण तृतीया। (४) **जनुषः अधि**—जन्म से ही, जन्म के समय से लेकर। जनुष् (जन्म) + पंचमी १। (५) **जाताः**—उत्पन्न हुईं। जन् + क्त (त) + प्रथमा ३। (६) **पापिष्ठाः**—अत्यन्त पापी, नीच, अधम। पाप + इष्ठन् (इष्ठ) + प्रथमा ३। (७) **निःप्रहिण्मः**—निकालते हैं, दूर करते हैं। निर् + प्र + हि (प्रेरणा देना, स्वादि) + लट् उ० ३। नु के उ का लोप और न् को ण्। (८) **शिवाः**—शुभ या कल्याणकारी वृत्तियां। (९) **अस्मभ्यम्**—हमें। अस्मद् + च० ३। (१०) **जातवेदः**—हे परमात्मन्। जातानि वेद, उत्पन्न हुए जीवों आदि को जानने वाले। (११) **नियच्छ**—दो। नि + दा (यच्छ्, देना, भ्वादि) + लोट् म० १।

४८. घर में पवित्र लक्ष्मी का वास हो

एता एना व्याकरं, खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः, या पापीस्ता अनीनशम्॥

अथर्व० ७-११५-४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—खिले विष्ठिताः गाः इव, एताः एनाः वि आकरम् । पुण्याः लक्ष्मीः रमन्ताम् । याः पापीः ताः अनीनशम् ।

शब्दार्थ—(खिले) चरागाह में, चराऊ भूमि में, (विष्ठिताः) बैठी हुई, (गाः इव) गायों की तरह, (एताः एनाः) इन पूर्वोक्त लक्ष्मियों को, (वि आकरम्) अलग-अलग करता हूँ, छांटता हूँ। (पुण्याः) पवित्र, शुभ, (लक्ष्मीः) लक्ष्मियां, (रमन्ताम्) यहाँ रमें, यहाँ रहें। (याः) जो, (पापीः) अपवित्र, अशुभ लक्ष्मियां हैं, (ताः) उनको, (अनीनशम्) नष्ट करता हूँ।

हिन्दी अर्थ—चारागाह में बैठी हुई गायों की तरह, मैं इन पूर्वोक्त लक्ष्मियों को पृथक्-पृथक् करता हूँ। पवित्र लक्ष्मी मेरे यहाँ निवास करें। जो अपवित्र लक्ष्मी हैं, उनको मैं नष्ट करता हूँ।

Eng. Tr.—I discriminate among the riches, as one makes distinction among the cows, sitting in the pasture. May the auspicious wealth be with me and let the in-auspicious one be away from us.

अनुशीलन—इस मंत्र में अभीष्ट धन को स्पष्ट किया गया है। परिवार के लिए सुखद धन कौन सा है ? कौन सा धन अग्राह्य है ? किस धन के घर में आने से श्रीवृद्धि होती है ? किस धन के घर में आने से क्लेश, विपत्ति और अश्रीकता आती है। इसका ही इस मंत्र में स्पष्टीकरण है।

लक्ष्मी दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ, पवित्र और अपवित्र, हितकर और अहितकर। इसको ही स्मृतिग्रन्थों में शुक्ल-धन और कृष्ण-धन कहा गया है। शुभ लक्ष्मी या शुक्ल धन क्या है ? इसको चाणक्य ने स्पष्ट किया है। जो न्यायोचित मार्गों से प्राप्त की जाती है, वह शुभ लक्ष्मी है। स्वपुरुषार्थोपार्जित द्रव्य शुभ है। अपने पुरुषार्थ या प्रयत्न से जो धन प्राप्त किया जाता है, वह शुभ है। सचाई, परिश्रम, न्याय और सद्भाव से अर्जित धन शुभ है। इसके विपरीत अन्याय, असत्य, कपट-व्यवहार आदि से प्राप्त धन अशुभ है। चाणक्य का कथन है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्यायागतोऽर्थः। तद्विपरीतोऽर्थाभासः। चाण० सूत्र १५६

अवमानागतम् ऐश्वर्यम् अवमन्यते साधुः। चा० सू० १६०

अर्थात्—न्याय से प्राप्त धन शुभ है। अन्याय से प्राप्त किया हुआ धन अर्थ नहीं, अपितु अनर्थ है। सज्जन पुरुष निकृष्ट उपायों से प्राप्त धन का तिरस्कार करते हैं।

टिप्पणी—(१) एताः एनाः—इन पूर्वोक्त। एताः—इन, एनाः—पूर्वोक्त ये। एतद् (यह, स्त्रीलिंग)—एता + द्वि० ३। पूर्वोक्त के निर्देश में एत को एन हो जाता है, अतः एनाः। (२) वि आकरम्—अलग-अलग करता हूँ। वि + आ + कृ (करना, तनादि) + लुङ् उ० १। Root Aorist है। वि + आ + कृ से ही व्याकरण बनता है, जिनका अर्थ है—प्रकृति-प्रत्यय का विभाजन। (३) खिले—चरागाह में। (४) गाः—गायों को। गो + द्वि० ३। (५) विष्ठिताः—बैठी हुई। वि + स्थिताः, स्थित—स्था (रुकना) + क्त। आ को इ। (६) रमन्ताम्—रमें, रहें। रम् (रमना, भ्वादि, आ०) + लोट् प्र० ३। (७) पुण्याः लक्ष्मीः—पवित्र लक्ष्मी। सत्य व्यवहार से उपार्जित लक्ष्मी एवं शुभ वृत्तियां। (८) पापीः—अपवित्र। असत्य व्यवहार से अर्जित एवं अशुभ वृत्तियां। पाप + ई + द्वि० ३। (९) अनीनशम्—मैंने नष्ट किया, मैं नष्ट करता हूँ। नश् (नष्ट करना, दिवादि) + णिच् + लुङ् उ० १।

४९. सत्कर्मों को ही सुख-सम्पदा

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिः,
हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव।
सर्वा पवित्रा विततास्यस्मत्,
तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः॥

अथर्व० ६–१२४–३

अन्वय—अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिः हिरण्यं वर्चः तत् उ पूत्रिमम् एव। सर्वा पवित्रा अस्मत् अधि वितता। तत् निर्ऋतिः मा तारीत्, मो अरातिः (तारीत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(अभ्यञ्जनम्) तेल-मर्दन, तेल मालिश, (सुरभि) सुगन्धित वस्तुएं, चन्दन आदि, (सा समृद्धिः) वह सारी समृद्धि, (हिरण्यम्) सुवर्ण, (वर्चः) तेज, शक्ति, (तत् उ) वह सभी, (पूत्रिमम् एव) पवित्र करने वाले ही हैं। (सर्वा पवित्रा) सभी पवित्र वस्तुएं, (अस्मत् अधि) हमारे चारों ओर, (वितता) फैली हुई हैं। (तत्)इसलिए, (निर्ऋतिः) दुर्गति, दुर्भाग्य, विनाश, (मा तारीत्) आक्रमण न करे, न आवे। (मो अरातिः) और न शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण कर सके।

हिन्दी अर्थ—तेल लगाना, सुगन्धित वस्तुएं, समृद्धि, सुवर्ण और तेजस्विता, ये सभी वस्तुएं पवित्र करने वाले ही हैं। सारी पवित्र वस्तुएं हमारे चारों ओर फैली हुई हैं। दुर्भाग्य (दुर्व्यसन) और शत्रु (स्वार्थ भावना) हमारी श्रीवृद्धि में बाधक न हों।

Eng. Tr.—All the following things are purifying, viz. ointment, perfumery, wealth, gold and lustre. All these purifying objects are spread around us. Let not the misfortune and foes obstruct our progress.

अनुशीलन—इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि जो दुर्गुणों और दोषों से मुक्त होते हैं, उन्हें ही संसार की सभी सम्पदाएं प्राप्त होती हैं। संसार में सभी प्रकार के ऐश्वर्य और सुख के साधन उपलब्ध हैं, परन्तु मानवीय दुर्गुण और दुर्व्यसन व्यक्ति को इन सुविधाओं से वंचित कर देते हैं। संसार में धन, ऐश्वर्य, सुवर्ण, यश, तेजस्विता आदि मनुष्य के चारों ओर फैले हुए हैं, परन्तु क्या कारण है कि ये सभी चीजें मनुष्य को नहीं मिलती ?

इसका उत्तर दिया गया है कि निर्ऋति और अराति इनकी प्राप्ति में बाधक हैं। निर्ऋति का अर्थ है—विनाश, दुर्भाग्य या दुष्कर्म। दुर्गुण, दुर्विचार, और दुर्व्यसन मनुष्य को पतन की ओर ले जाते हैं। ये प्राप्त धन को भी नष्ट कर देते हैं, अप्राप्त की प्राप्ति तो दूर रही। इन दुर्व्यसनों के द्वारा दुर्भाग्य की सृष्टि होती है। यह दुर्भाग्य विनाश का कारण होता है। अतएव पाप-भावनाओं को निर्ऋति शब्द के द्वारा कहा गया है। चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि जहाँ संयम और जितेन्द्रियता है, वहीं धन रुकता है, अन्यत्र नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थस्य मूलं राज्यम् । राज्यमूलम् इन्द्रियजयः । चा० सू० ३, ४ ।

अराति का अर्थ है—दान न देना, स्वार्थपरता। केवल अपना ही हित सोचना। ऐसा व्यक्ति समाज के लिए अहितकर है, अतः अराति का अर्थ शत्रु हो गया है। स्वार्थपरता, स्वार्थभावना और दान न देने की भावना मनुष्य की श्री वृद्धि को रोक देती है।

टिप्पणी—(१) अभ्यञ्जनम्—तेल लगाना, तेलमालिश। (२) सुरभि—सुगन्धित पदार्थ, चन्दनादि का लगाना। (३) पूत्रिमम्—पवित्र हैं, पवित्र करने वाले हैं। पू (पवित्र करना) + त्रिम। युक्त अर्थ में यह त्रिम प्रत्यय होता है, जैसे कृ से कृत्रिम। (४) सर्वा पवित्रा—सर्वाणि पवित्राणि का संक्षिप्त रूप है। सारी पवित्र वस्तुएं। (५) वितता—विततानि, फैली हुई हैं। वि + तन् (फैलना, तनादि) + क्त (त) + नपुं० प्र० ३। (६) अधि अस्मत्—हमारे ऊपर, हमारे चारों ओर। (७) मा तारीत्—न चढ़े, न आक्रमण करे। तॄ (पार करना, भ्वादि) + लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है। (८) मो—और न। मा + उ। मा – नहीं, उ—और।

५०. सुसन्तान और ऐश्वर्य हों

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां
प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा
यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा॥

यजु० ८–१७

अन्वय—रातिः धाता सविता, निधिपाः प्रजापतिः, देवः अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः इदं जुषन्ताम्। प्रजया संरराणाः यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा।

शब्दार्थ—(रातिः) दाता, दानशील, (धाता) सृष्टि का धर्ता देव, (सविता) संसार का प्रेरक देव, (निधिपाः) कोश या खजाने का रक्षक, (प्रजापतिः) प्रजा का पालक देव, (देवः अग्निः) अग्नि देवता, (त्वष्टा) सृष्टि का निर्माता देव, (विष्णुः) सर्वव्यापक देव, (इदम्) इस हवि को, (जुषन्ताम्) स्वीकार करें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रजया) प्रजा से, (संरराणाः) प्रसन्न रहते हुए, (यजमानाय) यजमान के लिए, (द्रविणम्) धन, ऐश्वर्य, (दधात) रखें दें। (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देते हैं।

हिन्दी अर्थ—दानशील धाता, सविता, कोषों का रक्षक प्रजापति, अग्नि देव, त्वष्टा और विष्णु ये ६ देवता इस हवि को स्वीकार करें। (यजमान की) प्रजा से प्रसन्न रहते हुए, ये यजमान के लिए ऐश्वर्य प्रदान करें। एतदर्थ हम आहुति देते हैं।

Eng. Tr.—May all the following six Gods enjoy the oblations, viz. the generous Dhata, Savita, Prajapati, the protector of treasures, Agni, Tvasta and Vishnu. May all these gods bless the sacrificer with prosperity. We offer our oblations for this very purpose.

अनुशीलन—इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि सभी देव यज्ञ से प्रसन्न हों और वे परिवार में सन्तान और ऐश्वर्य दें।

इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि यज्ञ से सभी देव प्रसन्न होते हैं। ये देव अपनी शक्ति के अनुसार शुभ फल देते हैं। देवों की प्रसन्नता से श्रीवृद्धि होती है। देवता किस रूप में प्रसन्न होते हैं और किस रूप में सहायक होते हैं, इसको महाभारत में स्पष्ट किया गया है। महाभारत का कथन है कि देवता डंडा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते हैं। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सद्‌बुद्धि दे देते हैं। उस सद्‌बुद्धि के द्वारा वह अपना मार्ग प्रशस्त कर लेता है।

न देवा यष्टिमादाय, रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति, बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥ महा०

यज्ञ के द्वारा देवता प्रसन्न होते हैं। वे मनुष्य को सद्‌बुद्धि देते हैं। उस सद्‌बुद्धि से मनुष्य सत्कर्म करता है, पुरुषार्थ करता है, सन्मार्ग पर प्रवृत्त होता है और उचित साधनों से धन प्राप्त करता है। इस प्रकार उसका जीवन सुखमय होता है।

टिप्पणी—(१) रातिः—दाता, दानशील। रा (देना) + क्तिन् (ति)। (२) जुषन्ताम्—स्वीकार करें। जुष् (प्रसन्न होना, तुदादि) + लोट् प्र० ३। (३)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निधिपाः—कोषों का रक्षक। ऋद्धियां कोष मानी जाती हैं। कोषों के नाम महापद्म, महाशंख आदि माने जाते हैं। (४) संरराणाः—प्रसन्न रहते हुए। सम् + रा (देना, अदादि) + लिट्-कानच् (आन) + प्र० ३। (५) दधात—रखें, दें। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० ३। यहाँ पर प्र० ३ दधतु के स्थान पर म० ३ दधात है।

५१. तेजस्वी और समृद्ध हों

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥

यजु० ३८-२५;२०-२३

अन्वय—एधः असि, एधिषीमहि, समिद् असि, तेजः असि, मयि तेजः धेहि।

शब्दार्थ—(एधः असि) तुम वर्धक हो, तुम समृद्ध हो, (एधिषीमहि) हम बढ़ें, समृद्ध हों। (समिद् असि) तुन प्रकाशशील, प्रदीप्त हो, हम भी प्रज्वलित हों, समिधा हो। (तेजः असि) तुम तेज-रूप हो, (मयि) मुझमें, (तेजः) तेज, (धेहि) रखो।

हिन्दी अर्थ—हे अग्निरूप परमात्मन्! तुम समृद्ध हो, हम भी समृद्ध हों। तुम प्रदीप्त हो, (हम भी प्रदीप्त हों)। तुम तेजोमय हो, मुझे तेज दो।

Eng. Tr.—O Fire-God ! you are prosperous, let us also prosper. You are kindled, make us also enlightened. You are rediant, make us radiant.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हम समृद्ध हों, प्रवुद्ध हों और तेजस्वी हों।

यह यज्ञ से संबद्ध मंत्र है। यज्ञ में समिधा डाली जाती है। अग्नि में पड़कर समिधा भी अग्निरूप हो जाती है। वह अग्नि में पड़कर प्रकाश देती है और तेजोमय हो जाती है। मंत्र का अभिप्राय है कि परमात्मा भी अग्नि के तुल्य तेजोमय है, प्रकाशक है और अंधकार का नाशक है। वह संसार की समृद्धि का आधार है। वह धन का दाता है। वह यज्ञकर्ता और आस्तिक के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलावे, उसे तेजस्वी करे और सभी सुख-समृद्धि से उसे युक्त करे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो परमात्मारूपी अग्नि में अपने आपको समिधा के तुल्य डाल देता है, वह आत्मरूप हो जाता है। वह ईश्वरीय और दिव्य गुणों से युक्त हो जाता है। पारिवारिक सुख-समृद्धि और तेजस्विता का आधार ईश्वरार्पण है, ईश्वरोपासना है। जो उस अग्नि में अपने आपको डाल देता है, वह शुद्ध सोना होकर निकलता है।

टिप्पणी—(१) एधः—वृद्धिशील, समृद्ध, वर्धक। यज्ञ की समिधा को भी एधस् और एध कहते हैं। (२) एधिषीमहि—हम बढ़ें, समृद्ध हों। एध् (बढ़ना, भ्वादि०) + आशीर्लिङ् उ० ३। (३) समिद् असि—तुम प्रकाशशील, प्रदीप्त हो। समिध् का अर्थ समिधा भी है। सम् + इन्ध् (जलना, रुधादि, आ०) + क्विप् (०) = समिध् + प्र० १। (४) तेजः—तेज। तेजस् + प्र० १। (५) मयि— मुझमें। अस्मद् (मैं) + स० १। (६) धेहि—रखो, दो। धा (रखना, जुहोत्यादि) + लोट् म० १।

५२. अशुभ लक्ष्मी से सदा बचें

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा-
　　अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा
　　हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः॥

अथर्व० ७-११५-२

अन्वय—या पतयालूः अजुष्टा लक्ष्मीः मा अभिचस्कन्द, वन्दना वृक्षम् इव। हे सवितः, हिरण्यहस्तः नः वसु रराणः, ताम् अस्मत् इतः अन्यत्र धाः।

शब्दार्थ—(या) जो, (पतयालूः) पतन की ओर ले जाने वाली, (अजुष्टा) असेव्य, निन्द्य, (लक्ष्मीः) लक्ष्मी, (मा) मुझको, मुझपर, (अभिचस्कन्द) चढ़ गई है, मेरे ऊपर सवार है, (वन्दना वृक्षम् इव) जैसे आकाशवेल वृक्ष पर चढ़ जाती है। (हे सवितः) हे समस्त संसार के प्रेरक परमात्मन्, (हिरण्यहस्तः) तुम्हारे हाथ में सुवर्ण या ऐश्वर्य है, (नः) हमें, (वसु) धन, ऐश्वर्य, (रराणः) देते हुए, (ताम्) उस दुष्ट लक्ष्मी को, (अस्मत्) हमसे हटाकर, (इतः अन्यत्र) यहाँ से दूसरे स्थान पर, (धाः) रखो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—जो पतन की ओर ले जाने वाली, निन्दनीय लक्ष्मी मुझ पर चढ़ गई है, जैसे आकाशबेल किसी वृक्षपर। हे संसार के प्रेरक परमात्मन् ! तुम्हारे हाथों में सुवर्ण (ऐश्वर्य) है, तुम हमें ऐश्वर्य प्रदान करते हुए, उस दुष्ट लक्ष्मी को हमसे हटाकर यहाँ से अन्यत्र रखो।

Eng. Tr.—The abhorrent wealth, which leads one astray, has crept up on me, like a creeper. O Creator of the universe! you possess gold in your hands. Keep that abhorrent wealth away and bestow pious wealth on us.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो प्रकार की लक्ष्मी का उल्लेख है। वर्णन किया गया है कि जो लक्ष्मी पतन की ओर ले जाने वाली है, उसका परित्याग करें तथा जो उत्थान की ओर ले जाने वाली है, उसे ग्रहण करें।

इस मंत्र से मिलता हुआ भाव मंत्र ४८ में भी है। उसकी व्याख्या भी देखें। लक्ष्मी के दो भेद किए गए हैं—शुभ और अशुभ। शुभ लक्ष्मी को शुक्ल और अशुभ को कृष्ण कहते हैं। स्मृतियों में इसीलिए धन को शुक्ल (सफेद) और कृष्ण (काला) बताया गया है। अशुभ या कृष्ण लक्ष्मी के विषय में मन्त्र में कहा गया है कि यह मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है। यह श्रेष्ठ जनों के द्वारा सेवित नहीं है। यह आकाश-बेल की तरह है। आकाशबेल जिस प्रकार हरे-भरे वृक्ष का रस चूसकर उसे सुखा देती है, इसी प्रकार अशुभ लक्ष्मी जिस घर में प्रवेश करती है, उस घर का नाश कर देती है। प्रारम्भ में यह सुखद प्रतीत होती है, परन्तु इसका अन्त अत्यन्त दुःखद होता है।

मंत्र में प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्, ऐसी अशुभ लक्ष्मी को हमसे दूर रखो और शुभ लक्ष्मी हमें दो। अपने पुरुषार्थ से और उचित साधनों से कमाई गई लक्ष्मी शुभ, पवित्र और शुक्ल है। इसमें फलवत्ता है, प्रेरकता है और उन्नायकता है। ऐसी लक्ष्मी मनुष्य में अच्छे विचार उत्पन्न करती है, उसे उन्नति की ओर ले जाती है और सदा सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है। यह लक्ष्मी स्थायी है और उन्नति की ओर ले जाती है।

टिप्पणी—(१) पतयालूः—पतित करने वाली, पतन की ओर ले जाने वाली।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत् (गिरना, भ्वादि) + णिच् + आलु + ऊङ् (ऊ)। स्त्रीलिंग में ऊ प्रत्यय। (२) अजुष्टा—असेव्य, निन्द्य, जो सेवन करने योग्य न हो। अ + जुष् + क्त (त) + टाप् (आ)। (३) अभिचस्कन्द—चढ़ गई है, मेरे ऊपर सवार है या हावी है। अभि + स्कन्द् (चढ़ना, भ्वादि, पर०) + लिट् प्र० १। (४) वन्दना—यह बेल है। इसको आकाशबेल कहते हैं। यह जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे सुखा देती है। उसका सारा रस चूस लेती है। (५) अस्मत्—हमसे अलग। अस्मद् (मैं) + पं० ३। (६) धाः—रखो। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् + म० १। अडागम नहीं, Inj. है। (७)हिरण्य-हस्तः—जिसके हाथ में सोना या ऐश्वर्य है। (८) रराणः—देते हुए। रा (देना, अदादि, आ०) + लिट्—कानच् (आन) + प्र० १।

५३. विश्व-विख्यात ऐश्वर्य मिले

यस्य ते विश्वमानुषो, भूरेर्दत्तस्य वेदति।
वसु स्पार्हं तदा भर॥

ऋग्० ८-४५-४२; अथर्व० २०-४३-३;
साम० १०७१

अन्वय—ते यस्य भूरेः दत्तस्य विश्वमानुषः वेदति। तत् स्पार्हं वसु आ भर॥

शब्दार्थ—(ते यस्य) तुम्हारे जिस, (भूरेः) विशाल, (दत्तस्य) दान को, दिए हुए को, (विश्वमानुषः) संसार के सभी मनुष्य, (वेदति) जानते हैं। (तत्) वह, (स्पार्हम्) स्पृहणीय, सर्वथा अभीष्ट, (वसु) धन, ऐश्वर्य, (आ भर) दीजिए।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्! तुम्हारे जिस विशाल दान को सारा संसार जानता है, वह स्पृहणीय ऐश्वर्य हमें दीजिए।

Eng. Tr.—O God! the whole world acknowledges your precious gifts. May you bestow that enviable gift on us.

अनुशीलन—इस मंत्र में कामना की गई है कि परमात्मा हमें सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य दे। उसने ही संसार को सारा ऐश्वर्य दिया है। सारा संसार उसकी इस कृपा को जानता है।

सारा संसार यह जानता है कि परमात्मा ने पंच तत्त्व या पंचभूत मानवमात्र के लिए दिए हैं। सारी धरती, सारे समुद्र, सारी नदियां, सूर्य और चन्द्रमा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा की देन हैं। थोड़ी देर भी वायु न मिले तो मनुष्य का जीवित रहना असंभव है। सूर्य के बिना प्रकाश असंभव है। जल और पृथिवी के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। संसार के सभी व्यक्ति ईश्वर की इस महान् कृपा को जानते हैं।

मंत्र में प्रार्थना है कि संसार का ऐश्वर्य, सर्वश्रेष्ठ धन, हमें प्राप्त हो। क्या यह सारा ऐश्वर्य स्वयं मनुष्य के घर में आ जाएगा ? नहीं। कुछ पुरुषार्थ होगा, तभी यह धन आपकी ओर आकृष्ट होगा। सब कुछ प्रयत्न-सापेक्ष है। जहाँ प्रयत्न है, पुरुषार्थ है, वहाँ श्री है। श्रेष्ठ लक्ष्मी और ऐश्वर्य का मूल है—पुरुषार्थ, अध्यवसाय और सतत उद्योग। अतएव कहा गया है कि—उद्यमे श्रीर्वसति। साहसे श्रीर्वसति।

साहसे लक्ष्मीर्वसति। चाणक्यसूत्र १५०

टिप्पणी—(१) **विश्वमानुषः**—सारा संसार, संसार के सभी मनुष्य। **पाठभेद**—सामवेद में विश्वमानुषक् पाठ है। उसका अर्थ है—विश्वम्—सारा संसार, आनुषक्—सदा, निरन्तर। (२) **भूरेः दत्तस्य**—बड़े या विशाल दान को। भूरि (बहुत) + ष० १। (३) **वेदति**—जानता है। विद् (जानना, अदादि, पर०) + लेट् प्र० १। Sub. है। (४) **स्पार्हम्**—स्पृहणीय, चाहने योग्य, अभीष्ट। स्पृह् (चाहना, चुरादि) + घञ् (अ) + प्र० १। (५) **आ भर**—लावो, इधर लावो। आ + भृ (लाना, भ्वादि) + लोट् म० १। संस्कृत की हृ धातु वेद में भृ धातु है।

५४. सर्वोत्तम ऐश्वर्य हमें मिले

यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे, यत् पर्शाने पराभृतम्।
वसु स्पार्हं तदा भर॥

ऋग्० ८-४५-४१; अथर्व० २०-४२-२;
साम० २०७, १०७२

अन्वय—हे इन्द्र, यद् वीडौ, यत् स्थिरे, यत् पर्शाने पराभृतम्। तत् स्पार्हं वसु आ भर।

शब्दार्थ—(हे इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्, (यत्) जो, (वीडौ) कठिन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानों पर, कठोर भूमि में, कड़े पहाड़ों आदि में, मजबूत खजाने में, (यत् स्थिरे) जो अचल स्थानों में, (यत् पर्शाने) जो गहरे या अथाह स्थानों में, अर्थात् जो अथाह समुद्र आदि में, (पराभृतम्) रखा है, छिपा हुआ है। (तत्) वह, (स्पार्हम्) स्पृहणीय, (वसु) धन, ऐश्वर्य, (आ भर) दीजिए।

हिन्दी अर्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! जो धन (कोष, खजाना) कठोर स्थलों में (अर्थात् पर्वतों आदि में), जो अचल स्थानों में (अर्थात् भूमि के अन्दर), जो गहरे या अथाह स्थानों में (अर्थात् अथाह समुद्र आदि में) रखा हुआ है (अर्थात् छिपाकर रखा हुआ है), वह स्पृहणीय धन हमें दीजिए।

Eng. Tr.—O Lord of wealth ! May you bestow that enviable gift on us, which is treasured in the mountains etc., or lies under the ground, or is hidden in the un-fathomable oceans.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी प्रार्थना की गई है कि संसार का सर्वश्रेष्ठ धन हमें प्राप्त हो। साथ ही यह भी बताया गया है कि यह बहुमूल्य धन किन स्थानों से प्राप्त हो सकता है। इसके तीन स्थान बताए हैं—१. कठोर पर्वतों से, २. भूमि से, ३. समुद्र से।

कठोर पर्वतों में क्या संपदा है ? भूगर्भविज्ञान के अनुसार पर्वतों में अनेक धातु हैं, तेल है, रत्न हैं और स्वयं वनसंपदा है। हिमालय आदि पर्वतों के भौतिक और भूगर्भीय अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है, इनमें बहुमूल्य संपदा भरी हुई है। आवश्यकता है अनुसंधानों के द्वारा उन वस्तुओं का पता लगावें। पर्वतों में अभ्रक जैसी अनेक धातुएं मिलती हैं। कहीं सुवर्ण के अंश मिलते हैं, कहीं लोहे के। बहुमूल्य ओषधियों की तो खान है।

इसी प्रकार भूगर्भ से तेल, खनिज, रत्न आदि मिलते हैं। कहीं पर पेट्रोल है, कहीं लोहा है, कहीं कोयला है और कहीं रत्नों की खान हैं। मंत्र का संकेत है कि इन बहुमूल्य पदार्थों का पता लगाया जाए और प्राप्त किया जाए।

समुद्रों से तेल, रत्न आदि प्राप्त किया जा सकता है। समुद्र के गहरे स्थानों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अनेक प्रकार के मणि-माणिक्य प्राप्त किए जाते हैं। समुद्री व्यापार स्वयं समृद्धि का साधन है। इस प्रकार पर्वत, पृथ्वी और समुद्र अनन्त सम्पत्ति के आगार हैं। इनसे विविध प्रकार की लक्ष्मी प्राप्त की जाए।

टिप्पणी—(१) वीडौ—कठोर स्थानों में। वीडु (दृढ़, कठोर) + स० १। अर्थात् पहाड़ों आदि में छिपा हुआ खजाना। (२) स्थिरे—स्थिर या अचल भूमि में इसका अभिप्राय है—भूमि में गड़ा हुआ धन, भूमि के अन्दर से पाया जाने वाला सुवर्ण आदि धन। (३) पर्शानि—गहरे या अथाह स्थान में रखा हुआ। इसका अभिप्राय है—समुद्र आदि से प्राप्त होने वाला रत्न आदि धन। तलं स्पृशन् (तलहटी में रहने वाला) अर्थ में स्पृश् धातु से शानच् (आन) प्रत्यय करके पर्शान शब्द बना है। (४) पराभृतम्—रखा हुआ है, छिपाया हुआ है। परा + भृ (छिपा कर रखना) + क्त (त) + प्र० १। (५) स्पार्हम्, आ भर—देखो मंत्र ५३ की टिप्पणी।

५५. बाधाएं दूर कर ऐश्वर्य पावें

भिन्धि विश्वा अप द्विषः, परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर॥

ऋग्० ८-४५-४०; अथर्व० २०-४३-१;
साम० १३४, १०७०

अन्वय—विश्वाः द्विषः अप भिन्धि। बाधः मृधः परि जहि। स्पार्हं तद् वसु आ भर।

शब्दार्थ—(विश्वाः) सारे, (द्विषः) द्वेषियों को, शत्रुओं को, (अय भिन्धि) नष्ट कर दो, फाड़ दो। (बाधः) विघ्नों या बाधाओं को, (मृधः) शत्रुओं को, (परि जहि) चारों ओर से नष्ट कर दो। (स्पार्हम्) स्पृहणीय, (तद् वसु) वह ऐश्वर्य, (आ भर) हमें दीजिए।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्! आप हमारे सारे शत्रुओं को नष्ट कीजिए। हमारी सारी बाधाओं और शत्रुओं को चारों ओर से नष्ट कीजिए। आप हमें स्पृहणीय ऐश्वर्य दीजिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng. Tr.—O God ! destroy our enemies and remove all the hindrances and foes. May you bestow that enviable gift upon us.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि लक्ष्मी की प्राप्ति का मार्ग निर्विघ्न नहीं है। इसमें कहीं विघ्न हैं, कहीं रुकावटें हैं और कहीं शत्रु हैं। इनको हटाने पर ही श्रेष्ठ लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है।

लक्ष्मी की प्राप्ति में बाधाएं हैं। ये बाधाएं दो प्रकार की होती हैं—१. आन्तरिक, २. बाह्य। आन्तरिक बाधाएं हैं—मानसिक अनिश्चय की स्थिति, उत्साह का अभाव, सहनशीलता का अभाव और दृढ़ निश्चय का अभाव। लक्ष्मी ऐसी नहीं है कि उसे पेड़ से फल के तुल्य तोड़ लिया जाए। इसके लिए क्रमबद्ध योजना बनानी होती है। साहस, धैर्य और सहनशीलता के साथ आगे बढ़ना होता है। विघ्नों को हटाया जाता है, दुःखों को सहा जाता है और आन्तरिक शक्ति को प्रबुद्ध किया जाता है।

बाह्य बाधाएं हैं—परिस्थिति की प्रतिकूलता, देश-काल का ठीक ज्ञान न होना, लोक-व्यवहार की अनभिज्ञता, जन-संपर्क में मधुर व्यवहार का अभाव, कटुभाषिता और सहृदयता का अभाव। ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए इन विघ्नों को हटाना पड़ेगा।

मनुष्य की समृद्धि को न सहन करने वाले व्यक्तियों की भी कमी नहीं हैं। ये लोग पग-पग पर विघ्न डालते हैं, शत्रुवत् आचरण करते हैं, प्रगति को रोकने का यत्न करते हैं। इनसे सदा सावधान रहना होगा। महाभारत का कथन सत्य है कि संसार में ये ५ प्रकार के व्यक्ति सर्वत्र मिलेंगे—१. उपकृत होने वाले, २. सहायता देने वाले, ३. मित्र, ४. उदासीन, ५. शत्रु। इनमें से शत्रुओं से सावधान रहे, उदासीनों से तटस्थ रहे, मित्रों का सहयोग ले, सहायकों की संख्या बढ़ावे और दूसरों को लाभ पहुँचावे।

पञ्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति, यत्र यत्र गमिष्यसि।
उपकार्योपकर्तारो, मित्रोदासीनशत्रवः॥ महाभारत

टिप्पणी—(१) भिन्धि—काटो, नष्ट करो। भिद् (काटना, रुधादि, पर०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

+ लोट् म० १ । (२) द्विषः—द्वेषियों को, शत्रुओं को । द्विष् (द्वेषी, शत्रु) + द्वि० ३ । (३) बाधः—बाधाओं को, विघ्नों को । बाध् (बाधाएं) + द्वि० ३ । (४) मृधः—शत्रुओं को । मृध् का अर्थ संग्राम, युद्ध भी है । मृध् (शत्रु) + द्वि० ३ । (५) परिजहि—चारों ओर से मार दो, नष्ट कर दो । हन् (मारना, अदादि, पर०) + लोट् म० १ । हन् को ज आदेश । जहि को जही, छान्दस दीर्घ । (६) स्पार्हम्, आ भर—देखो मंत्र ५३ की टिप्पणी ।

५६. प्रेम और स्वालंबन से श्री-वृद्धि

इह रतिरिह रमध्वम्, इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।
उपसृजन् धरुणं मात्रे, धरुणो मातरं धयन् ।
रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥

यजु० ८-५१

अन्वय—इह रतिः, इह रमध्वम् । इह धृतिः, इह स्वधृतिः स्वाहा । मात्रे धरुणम् उपसृजन्, धरुणः मातरं धयन्, अस्मासु रायस्पोषं दीधरत् स्वाहा ।

शब्दार्थ—(इह) यहाँ, इस परिवार में, (रतिः) प्रेम हो । (इह) इस परिवार में, (रमध्वम्) रमो, प्रेम से रहो । (इह) इस परिवार में, (धृतिः) धैर्य, स्थिरता हो । (इह) इस परिवार में, (स्वधृतिः) स्वयं स्थिरता, स्वावलम्बन हो । (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देते हैं । (मात्रे) माता के लिए, (धरुणम्) धारक, परिवार के धारक पुत्र को, (उपसृजन्) जन्म देते हुए, (धरुणः) पुत्र, (मातरं धयन्) माता का दूध पीते हुए रहे । (अस्मासु) हमें, (रायस्पोषम्) धन-समृद्धि, (दीधरत्) दे, प्राप्त करावे ।

हिन्दी अर्थ—इस परिवार में प्रेम हो । यहाँ सब प्रेम से रहें । यहां धैर्य और स्थिरता हो । यहां स्वावलम्बन हो । माता के लिए पुत्र को जन्म दें और पुत्र माता का दूध पीवे । वह पुत्र हमारे परिवार में ऐश्वर्य की समृद्धि करे ।

Eng. Tr.—May there be love in the family. May all live here affectionately. May there be patience, stability

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

and self-reliance. May the mother be blessed with a son and give suckings to him. May the son increase the wealth of the family.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सुखी गृहस्थ जीवन के लिए तीन साधन बताए गए हैं। इनके अपनाने से परिवार में सुख-समृद्धि और धन-धान्य की वृद्धि होती है। ये गुण हैं—१. प्रेम का वातावरण होना, २. धैर्य, ३. स्वावलम्बन।

परिवार में प्रेम और स्नेह का वातावरण होगा तो परिवार के सभी व्यक्ति प्रसन्न रहेंगे। सभी एक दूसरे के कार्य में सहयोग देंगे और परिवार में सामूहिक कर्म-निष्ठा का भाव जागृत होगा। मिलकर और बाँट कर काम करने से बड़े से बड़े काम बहुत सरलता से निबट जाते हैं। प्रेम का वातावरण सुख और शान्ति की सृष्टि करता है, आह्लाद और आनन्द देता है तथा नीरसता में सरसता का मनोहर वातावरण बनाता है।

जीवन में धैर्य के बिना काम नहीं चलता है। इसको ही मन्त्र में धृतिः शब्द से कहा गया है। जीवन संग्राम है। इसमें सुख भी है और दुःख भी। सुख सुखद होता है।

तीसरी शिक्षा दी गई है—**स्वधृतिः या स्वावलम्बन**। वेद में स्वधा शब्द भी स्वावलम्बन के लिए आता है। स्वावलम्बन का अभिप्राय है—अपने काम को अपने आप करना, अपने उत्तरदायित्व को स्वयं निभाना।

टिप्पणी—(१) **रतिः**—प्रेम, पारस्परिक स्नेह। रम् + क्तिन् (ति)। (२) **रमध्वम्**—रमें, प्रेम से रहें। रम् (आनन्द लेना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० ३। (३) **धृतिः**—धैर्य, स्थिरता, सन्तोष। (४) **स्वधृतिः**—स्वयं धारण करना अर्थात् स्वावलम्बन। इस अर्थ में स्वधा शब्द भी है। (५) **उपसृजन्**—बनाते हुए, जन्म देते हुए। उप + सृज् (बनाना, तुदादि, पर०) + शतृ प्र० १। (६) **धरुणम्**—धारक या आश्रय। परिवार या धारक का आश्रय होने से पुत्र को धरुण कहा गया है। (७) **मात्रे**—माता के लिए। पुत्र माता के लिए आनन्द का स्रोत है। (८) **मातरं धयन्**—माता का दूध पीते हुए। धे (दूध पीना, भ्वादि, पर०) + शतृ प्र० १। (९) **रायस्पोषम्**—रायः-धन, पोष-पुष्टि। धन की पुष्टि या समृद्धि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१०) दीधरत्—रखे, करे। धृ (रखना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लुङ् प्र० १।
अडागम नहीं, Inj. है।

५७. पुरुषार्थ से सर्वत्र विजयश्री

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद्, धनंजयो हिरण्यजित्॥

अथर्व० ७–५०–८

अन्वय—मे दक्षिणे हस्ते कृतम्, मे सव्ये जयः आहितः। गोजित् अश्वजित् धनंजयः हिरण्यजित् भूयासम्।

शब्दार्थ—(मे) मेरे, (दक्षिणे) दाहिने, (हस्ते) हाथ में, (कृतम्) पुरुषार्थ है। (मे) मेरे, (सव्ये) बाएं हाथ में, (जयः) विजय, (आहितः) रखा है। (गोजित्) गायों को जीतने वाला, (अश्वजित्) घोड़ों को जीतने वाला, (धनंजयः) धनों को जीतने वाला, (हिरण्यजित्) सुवर्ण को जीतने वाला, (भूयासम्) होऊं।

हिन्दी अर्थ—मेरे दाएं हाथ में पुरुषार्थ है और मेरे बाएं हाथ में विजय है। मैं गाय, अश्व, धन और सुवर्ण को जीतने वाला होऊं। अर्थात् पुरुषार्थ के द्वारा सभी प्रकार की श्री मुझे प्राप्त हो।

Eng. Tr.—The perseverance be in my right hand and victory in the left. May I win the cows, the horses, wealth and gold.

अनुशीलन—पुरुषार्थ जीवन का आधार है, सुख का मूल है। पुरुषार्थ ही एक ओर कर्म है, दूसरी ओर विजय है। जहाँ पुरुषार्थ है, वहां सफलता अवश्यम्भावी है। अतएव मंत्र में निर्देश है कि मेरे एक हाथ में पुरुषार्थ है और दूसरे हाथ में विजय या सफलता। मनुष्य जीवन में क्या बनना चाहता है, इसका उसे सर्वप्रथम निर्णय करना है। लक्ष्य निर्धारित होते ही उसे पुरुषार्थ-रूपी शस्त्र लेकर आगे बढ़ना है। विघ्नरूपी शत्रुओं को नष्ट करना है। विघ्नों और शत्रुओं का नाश होते ही सफलता उसके पैरों में आ पड़ती है, आत्म-समर्पण करती है। यही जीवन ही सफलता का रहस्य है। संसार की ऐसी कोई वस्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है, जो पुरुषार्थ के द्वारा सुलभ न हो। चाहे वह पशु-धन हो, वैभव हो, विद्या हो, शास्त्र हो, धन-धान्य हो, मुक्ता रत्न या सुवर्ण आदि हों, यहाँ तक कि मोक्ष या निर्वाण तक उसके लिए दुर्लभ नहीं है। पुरुषार्थ के मन्त्र को अपने जीवन में उतारने वाला कभी न दुःखित होता है और न कभी अपना साहस ही छोड़ता है। उसके लिए सर्वत्र विजय-श्री है।

टिप्पणी—(१) कृतम्—किया हुआ कर्म, उद्योग, पुरुषार्थ। कृ (करना) + क्त (त)। (२) सव्ये—बाएं हाथ में। (३) आहितः—रखा है। आ + धा + क्त (त)। धा को हि होता है। (४) गोजित्—गायों को जीतने वाला। गो + जि (जीतना) + क्विप् (०)। जि को तुक् (त्) का आगम। (५) धनंजयः—धन को जीतने वाला। धन + जि + खच् (अ)। (६) भूयासम्—भू + आशीर्लिङ् + उ० १।

५८. अपने पुरुषार्थ से विजयी हों

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनानि-
अस्माकेन वृजनेना जयेम॥

ऋग्० १०-४२-१०, १०-४३-१०, १०-४४-१०;
अथर्व० ७-५०-७, २०-१७-१०, २०-८९-१०, २०-९४-१०

अन्वय—हे पुरुहूत, गोभिः दुरेवाम् अमतिं तरेम। यवेन विश्वां क्षुधम् (तरेम)। वयं राजभिः प्रथमा धनानि (लभेमहि)। अस्माकेन वृजनेन जयेम।

शब्दार्थ—(हे पुरुहूत) हे अनेक प्रकार से आहूत इन्द्र या परमात्मन्, (गोभिः) गायों या पशुधन से, (दुरेवाम्) दुर्जय, दुर्लंघ्य, (अमतिम्) दुर्बुद्धि या दारिद्र्य को, (तरेम) पार करें। (यवेन) जौ या अन्न से, (विश्वाम्) सब प्रकार की, (क्षुधम्) भूख को, (तरेम) पार करें। (वयम्) हम, (राजभिः) राजाओं से, (प्रथमा) श्रेष्ठ, (धनानि) धनों को, (लभेमहि) पावें। (अस्माकेन) अपने, (वृजनेन) बल या पुरुषार्थ से, (जयेम) विजयी हों।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—हे अनेक रूप में आमन्त्रित परमात्मन् ! हम गायों (पशु-धन) से दुर्जय दारिद्र्य को पार करें और जौ (अन्नसमृद्धि) से सभी प्रकार की भूख को शान्त करें। हम राजाओं से श्रेष्ठ धन प्राप्त करें और अपने पुरुषार्थ से विजयी हों।

Eng. Tr.—O God ! may we cross the un-surmountable poverty by acquiring the cows. May we win our hunger by possessing food-grains like barley. May we attain wealth from the kings and attain success with our efforts.

अनुशीलन—जीवन की सफलता अपने कर्मों पर निर्भर है। पुरुषार्थ ही सफलता का साधन है। पुरुषार्थ से ही धन-धान्य, विद्या-बुद्धि, नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त होते हैं। संघर्ष का नाम ही जीवन है। कठिनाइयों, विघ्नों और विपत्तियों से लड़ते रहना, उनसे कभी हार न मानना मनुष्यत्व की कसौटी है। जो इस पर खरा उतरता है, उसे धन-धान्य, सुख-समृद्धि सभी प्राप्त होती हैं। अकर्मण्यता के साथ दीनता, हीनता, अभाव, निर्धनता आदि जुड़ी हैं। अतः मन्त्र में कहा गया है कि अन्न-समृद्धि और पशुधन प्राप्त कर अपनी निर्धनता दूर करे। साथ ही यह भी शिक्षा दी गई है कि हम अपनी उन्नति करते हुए राजाओं से संमान प्राप्त करें और निरन्तर प्रयत्न करते हुए जीवन में विजयी हों। पुरुषार्थ साधन है, विजय एवं सफलता साध्य है। जहाँ पुरुषार्थ और पराक्रम हैं, वहाँ सफलता और विजय है, श्रीवृद्धि है, उन्नति और प्रगति है।

टिप्पणी—(१) **गोभिः**—गायों से। पशुधन के लिए है। (२) **तरेम**—पार करें, जीतें। तॄ (पार करना, भ्वादि) + विधिलिङ् उ० ३। (३) **अमतिम्**—दुर्बुद्धि या दारिद्र्य को। (४) **दुरेवाम्**—दुर्जय, दुरतिक्रमणीय। दुरेव—दुर् + इ (जाना) + व। (५) **यवेन**—जौ के। अन्नमात्र के लिए है। (६) **प्रथमा**—प्रथमानि, श्रेष्ठ। (७) **अस्माकेन**—अपने। अस्माक—अस्मद् + अण्, अस्मद् को अस्माक आदेश। (८) **वृजनेन**—बल या पुरुषार्थ से। छान्दस दीर्घ, अ को आ। (९) **जयेम**—जीतें। जि (जीतना, भ्वादि) + विधिलिङ् + उ० ३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५९. पुरुषार्थ और ऐश्वर्य हों

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व,
क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय
ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ।।

यजु० ३८-१४

अन्वय—इषे पिन्वस्व, ऊर्जे पिन्वस्व, ब्रह्मणे पिन्वस्व, क्षत्राय पिन्वस्व, द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । (त्वम्) धर्म, सुधर्म अमेनि असि । अस्मे नृम्णानि धारय, ब्रह्म धारय, क्षत्रं धारय, विशं धारय ।

शब्दार्थ—(इषे) अन्न के लिए, (पिन्वस्व) बढ़ाओ, पुष्ट करो । (ऊर्जे) शक्ति या पराक्रम के लिए, (पिन्वस्व) पुष्ट करो । (ब्रह्मणे) ब्रह्मशक्ति के लिए, (पिन्वस्व) पुष्ट करो । (क्षत्राय) क्षत्र-शक्ति के लिए, (पिन्वस्व) पुष्ट करो । (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्युलोक और पृथिवी के लिए, (पिन्वस्व) पुष्ट करो । (धर्म) तुम संसार के धारक हो, (सुधर्म) तुम अच्छे नियामक हो, (अमेनि असि) तुम अहिंसक, कपटपूर्ण व्यवहार से रहित हो । (अस्मे) हमारे लिए, (नृम्णानि) धन, (धारय) रखो, दो । (ब्रह्म) ब्रह्मशक्ति या ब्राह्मणों को, (धारय) रखो, (क्षत्रम्) क्षत्रशक्ति या क्षत्रियों को, (धारय) रखो, (विशम्) वैश्यवर्ग को, (धारय) रखो ।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन् ! तुम हमें अन्न और शक्ति के लिए पुष्ट करो । ब्रह्म-शक्ति और क्षत्र-शक्ति के लिए पुष्ट करो । द्युलोक और पृथ्वी के लिए पुष्ट करो । तुम संसार के धारक, सुन्दर नियामक और अहिंसक हो । तुम हमारे लिए धन दो । तुम हमारे लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-वर्ग को दो ।

Eng. Tr.—O God ! cause us to thrive for food, energy, knowledge, valour and for the welfare of the heaven and earth. You are supporter and upholder of the universe. You are harmless to all. May you bestow the riches on us, and

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

support the Brahmanas, Kshatriyas and Vaishyas for our welfare.

अनुशीलन—इस मंत्र में इष् (अन्न) और ऊर्ज् (शक्ति) की कामना की गई है। साथ ही उसका उपाय भी बताया गया है कि ब्रह्मशक्ति (ज्ञान) और क्षत्र-शक्ति (बल) को पुष्ट करो। समग्र सफलता तभी मिल सकती है, जब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य मिलकर काम करें।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह मंत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समाज को दो वस्तुएँ चाहिएँ—अन्नसमृद्धि और शक्ति या सामर्थ्य। जिस समाज में धन-धान्य की प्रचुरता है और शारीरिक स्वास्थ्य या क्षमता है, वह समाज निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। इसके लिए मंत्र ने शिक्षा दी है कि समाज में ब्रह्म और क्षत्र शक्तियों को पुष्ट करो। ब्रह्मशक्ति ज्ञान देती है, उपाय बताती है और मार्ग-दर्शन करती है। यह सिद्धान्तपक्ष है, Theory है। क्षत्रशक्ति बताए हुए उपायों का प्रयोग करती है, कार्यान्वित करती है और उनका फल प्रस्तुत करती है। यह क्रिया-त्मक पक्ष है, Practice है। सिद्धान्त और क्रियात्मक दोनों पक्षों को मिलाने से ही समाज, परिवार और राष्ट्र की प्रगति होती है।

मंत्र में अन्त में यह भी शिक्षा दी गई है कि समाज की समृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों मिलकर काम करें। ब्राह्मण ज्ञान देता है, उपाय बताता है और क्षत्रिय उसको मूर्त रूप देता है। वह योजनाओं को कार्यान्वित करता है। वैश्य इस समृद्धि का यथायोग्य विभाजन करता है। वैश्य ही समाज की समृद्धि का नियन्ता है। आय और व्यय, आगम और विनियोग, उपलब्धि और संरक्षण, यह सारा काम केवल वैश्यवर्ग करता है। अतः तीनों वर्णों का समन्वय आवश्यक बताया गया है।

टिप्पणी—(१) **इषे**—अन्न के लिए। इष् (अन्न) + च० १। (२) **ऊर्जे**—बल या शक्ति के लिए। ऊर्ज् (बल) + च० १। (३) **पिन्वस्व**—बढ़ाओ, पुष्ट करो। पिन्व् (बढ़ाना, मोटा करना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० १। (४) **ब्रह्मणे**—ब्रह्मशक्ति के लिए, ज्ञान के लिए। ब्रह्मन् + च० १। (५) **क्षत्राय**—क्षत्रशक्ति के लिए, पुरुषार्थ के लिए। (६) **द्यावा०**—द्युलोक और पृथिवी की उन्नति के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिए। (७) धर्म असि—तुम धर्मरूप या संसार के धारक हो। धर्मन् (धर्ता) + प्र० १। (८) सुधर्म—अच्छे धर्ता या नियामक। सुधर्मन् + प्र० १। (९) अमेनि—अहिंसक। मेनि के अर्थ हैं—घातक अस्त्र, कपट-व्यवहार, छल, यातु-शक्ति, जादू करना। अमेनि—छल, कपट या हिंसा से रहित। अमेनि + प्र० १। विसर्ग का लोप है। (१०) अस्मे—हमारे लिए। अस्मद् + च० ३। अस्मे निपातन है। (११) नृम्णानि—धन। नृ + मनस् से नृम्ण बना है, जिसमें मनुष्यों का मन लगा रहता है, अर्थात् धन। (१२) धारय—रखो, दो। धृ (रखना, भ्वादि) + णिच् + लोट् म० १। (१३) ब्रह्म०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्ग को। तीनों वर्णों का उल्लेख है।

६०. सदा जागरूक को ही विद्या-बुद्धि

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

ऋग्० ५-४४-१४; साम० १८२६

अन्वय—यः जागार, तम् ऋचः कामयन्ते। यः जागार तम् उ सामानि यन्ति। यः जागार, तम् अयं सोमः आह, अहं तव सख्ये न्योकाः अस्मि।

शब्दार्थ—(यः) जो, (जागार) जागता है, (तम्) उसको, (ऋचः) ऋचाएं, ऋग्वेद के मन्त्र, (कामयन्ते) चाहते हैं। (यः) जो, (जागार) जागता है, (तम् उ) उसको ही, (सामानि) सामवेद की ऋचाएं, (यन्ति) प्राप्त होती हैं। (यः) जो, (जागार) जागता है, (तम्) उससे, (अयम्) यह, (सोमः) सोम, (आह) कहता है, (अहम्) मैं, (तव) तेरी, (सख्ये) मित्रता में, (न्योकाः) सुखपूर्वक निवास वाला, प्रसन्नचित्त, (अस्मि) हूं।

हिन्दी अर्थ—जो जागता है, उसको ही ऋग्वेद के मन्त्र चाहते हैं। जो जागता है, उसके पास ही सामवेद की ऋचाएं आती हैं। जो जागता है, उससे सोम कहता है कि मैं तुम्हारी मित्रता में प्रसन्नचित्त रहता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng. Tr.—The hymns of the Rgveda love him, who is ever-vigilant. The hymns of the Sama-veda like him, who is always awakened. Soma confessed him of his being very much at ease in his company.

अनुशीलन—इस मंत्र की व्याख्या के लिए मंत्र ४६ का अनुशीलन भी देखें।

मन्त्र का कथन है कि जो जागता है, उसी को वेद चाहते हैं और परमात्मा भी उसी को चाहता है। ऋग्वेद और सामवेद जागने वाले को क्या लाभ पहुँचाते हैं ? चारों वेदों में स्थान-स्थान पर गूढ अर्थों वाले मंत्र हैं। जो सूक्ष्म बुद्धि वाले और जागरूक व्यक्ति हैं, वे गूढ अर्थों को समझ लेते हैं और तदनुसार कर्म करके वेदों का लाभ उठाते हैं। सामान्य बुद्धि वाले उन रहस्यों से वंचित रहते हैं।

यह कथन तथ्यपूर्ण है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है'। परन्तु इस कथनमात्र से वेदों का महत्त्व नहीं बढ़ सकता है। इसके लिए गहन मनन, चिन्तन, अन्वेषण और वैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक हैं। उदाहरण के रूप में एक तथ्य प्रस्तुत किया जा रहा है। मंत्र का कथन है कि—'जल में अमृत है, जल सभी रोगों की औषध है'।

अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम्। अथर्व० १-४-४

यह एक छोटा सूत्र ही सैकड़ों वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान का विषय है। इसी प्रकार वेदों में अनन्त वैज्ञानिक सूत्र भरे पड़े हैं।

मंत्र के उत्तरार्ध में कहा गया है कि जो जागते हैं, सावधान हैं और प्रबुद्ध हैं, वे ही आत्मतत्त्व को जान पाते हैं। साधन का मार्ग इतना सूक्ष्म और गहन है कि जो असावधानी करेगा, वह अपने लक्ष्य से च्युत होगा। सावधानी से एवं सतत जागरूकता से इस मार्ग पर चलना होता है। जो ऐसा करते हैं, वे ही आत्म-ज्योति का दर्शन कर पाते हैं, वे ही आत्मदर्शी और तत्त्वदर्शी हो सकते हैं।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः,
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥ कठोपनिषद् १-२-२२

टिप्पणी—देखो 'अग्निर्जागार०' (मंत्र ४६) की टिप्पणी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६१. सदा जागरूक रहें

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे
शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव
स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥

अथर्व० २-६-३

अन्वय—हे अग्ने, इमे ब्राह्मणाः त्वां वृणते । हे अग्ने, नः संवरणे शिवः भव । हे अग्ने, सपत्नहा अभिमातिजिद् भव । स्वे गये अप्रयुच्छन् जागृहि ।

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे अग्नि, (इमे) ये, (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण, विद्वान्, (त्वाम्) तुझको, (वृणते) चुनते हैं, छांटते हैं, (हे अग्ने) हे अग्नि, (नः) हमारे, (संवरणे) निवास-स्थान में, चयन में, (शिवः) शुभ, सुखकर, (भव) होओ । (हे अग्ने) हे अग्नि, (सपत्नहा) शत्रुनाशक, (अभिमातिजित्) अभिमानी या कपटी के जीतने वाले, (भव) होओ । (स्वे) अपने, (गये) घर में, (अप्रयुच्छन्) प्रमाद-रहित, सदा सावधान रहते हुए, (जागृहि) जागो ।

हिन्दी अर्थ—हे गार्हपत्य अग्नि ! ये ब्राह्मण तुम्हें स्वीकार करते हैं । हे अग्नि ! तुम हमारे निवास-स्थानों में सुखद होओ । हे अग्नि ! तुम शत्रुनाशक और कपटी लोगों के नाशक होओ । अपने घर में प्रमाद-रहित रहते हुए सदा जागरूक रहो ।

Eng. Tr.—O Fire-God ! these Brahmanas chose you. O Fire-god ! guard our houses. O Fire-God ! you are destroyer of the enemies and treacherous-ones. Be ever-vigilant in your abode.

अनुशीलन—इस मंत्र में गार्हपत्य अग्नि की घर में उपयोगिता बताई गई है । प्रार्थना की गई है कि यह अग्नि घर की सुरक्षा करे और शत्रुओं को नष्ट करे । दूसरी शिक्षा दी गई है कि अपने घर में सदा सावधान और जागरूक रहो ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गार्हपत्य अग्नि घर और परिवार की रक्षा करती है। वह शत्रुओं को नष्ट करती हैं, कपटी लोगों या अभिमानियों को घर से भगाती है। जिस परिवार में यज्ञ होता है, वहाँ सद्भावना और सात्त्विकता के कारण सुरक्षा रहती है। पुण्य रक्षक तत्व है और पाप विनाशक तत्त्व। पुण्य स्थान को पवित्र बनाता है और पाप उसे दूषित करता है। यज्ञ से पवित्रता आती है, दोष दूर होते हैं, पाप और स्वार्थभावना के दूषित कण नष्ट होते हैं। यज्ञ में दान, परोपकार और स्वार्थत्याग है, अतः कपटी मनुष्य वहाँ नहीं रुक सकते हैं।

मंत्र में दूसरी शिक्षा दी गई है कि जिस प्रकार अग्नि अपने स्थान में सदा जागरूक रहती है, उसी प्रकार प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर में सदा जागरूक और सावधान रहना चाहिए। प्रमाद या असावधानी ही चोरी आदि का कारण है। इसलिए सदा सतर्क रहने की शिक्षा दी गई है।

टिप्पणी—(१) वृणते—चुनते हैं, स्वीकार करते हैं। वृ (चुनना, क्र्यादि, आ०)+लट् प्र० ३। (२) ब्राह्मणाः—ब्राह्मण, वेदज्ञ या विद्वान्। (३) संवरणे—घर में, निवास में। ढके या घिरे स्थान को संवरण कहते हैं, जैसे—घर, यज्ञशाला, गोशाला आदि। संवरण का अर्थ—चुनना या छांटना भी है। (४) भव—होओ। भव को भवा, छान्दस दीर्घ। भू (होना, भ्वादि)+लोट् म० १। (५) सपत्नहा—सपत्न-शत्रु, हन्-मारने वाला। सपत्नहन्+प्र० १। (६) अभिमाति०—अभिमाति-अभिमानी या कपटी को, जित्-जीतने वाला। (७) गये—घर में। गय का अर्थ घर है। (८) जागृहि—जागो, जागते रहो। जागृ (जागना, अदादि, पर०)+लोट् म० १। (९) अप्रयुच्छन्—प्रमाद न करते हुए, सावधान रहते हुए। अ+प्र+युच्छ् (प्रमाद करना, भ्वादि, पर०)+शतृ प्र० १।

६२. सभी कामनाएं पूर्ण हों

समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः।
समु विश्वमिदं जगत्।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं
विभून् कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा॥ यजु० २०–२३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—पृथिवी सम् आववर्ति, उषाः सम् (आववर्ति), उ सूर्यः सम् (आववर्ति), उ इदं विश्वं जगत् सम् (आवर्वित)। (अहम्) वैश्वानरज्योतिः भूयासम्, विभून् कामान् वि अश्नवै, भूः स्वाहा ॥

शब्दार्थ—(पृथिवी) पृथिवी, (सम् आववर्ति) चक्कर काटती है, घूमती है, परिक्रमा करती है, (उषाः) उषा, (सम् आववर्ति) परिक्रमा करती है, (उ सूर्यः) और सूर्य भी, (सम् आववर्ति) घूमता है, चक्कर काटता है। (उ इदं विश्वं जगत्) और यह सारा संसार, (सम् आववर्ति) घूमता है, चक्कर काटता है। (अहम्) मैं, (वैश्वानरज्योतिः) ब्रह्म के तुल्य ज्योति वाला, (भूयासम्) होऊँ। (विभून्) बड़े, महान्, (कामान्) अभिलाषाओं को, (वि अश्नवै) पाऊँ। (भूः स्वाहा) सत् रूप परमात्मा के लिए यह आहुति है।

हिन्दी अर्थ—यह पृथिवी परिक्रमा करती है, उषा परिक्रमा करती है, सूर्य परिक्रमा करता है और यह सारा संसार परिक्रमा करता है। मैं ब्रह्म के तुल्य ज्योति वाला होऊँ। मैं अपनी महान् अभिलाषाओं को प्राप्त करूं। सद्रूप परमात्मा के लिए यह आहुति है।

Eng. Tr.—The earth, the dawn, the sun and the whole universe rotate. May I attain the brilliance of the Supreme Being. May my desires be fulfilled. I offer the oblation to the omnipresent God.

अनुशीलन—इस मंत्र में तीन बातों का उल्लेख है। वे हैं—१. पृथ्वी, सूर्य और सारा संसार चक्कर काटते हैं, घूमते हैं। २. ब्रह्म के तुल्य ज्योति या तेज प्राप्त हो। ३. सभी अभीष्टों को प्राप्त करें।

भौतिक विज्ञान की दृष्टि से यह मंत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस मंत्र में स्पष्ट-रूप से उल्लेख किया गया है कि पृथ्वी घूमती है, सूर्य घूमता है और सारा संसार घूमता है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि संसार के प्रत्येक अणु एक-दूसरे अणु का चक्कर काटते हैं। इस परिक्रमा से ही सृष्टि में गति और विकास है। संसार की प्रत्येक वस्तु में गति है, अतः इसे जगत्, संसार या संसृति कहते हैं। सौर-मंडल के सभी ग्रह अपने स्थान पर परिक्रमा करते हुए सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी कीली पर घूमता है। यह सारा सौर-मंडल अपने जनक सूर्य की परिक्रमा करता है। इस प्रकार सारा संसार एक दूसरे से बंधा हुआ है।

दूसरी बात कही गई है कि ब्रह्म के तुल्य ज्योति वाले हों। मनुष्य जितना परमात्मा के समीप पहुँचता जाता है, उतनी ही उसमें ज्योति आती जाती है। समिधा अग्नि में पड़कर अग्निरूप हो जाती है, इसी प्रकार मनुष्य ईश्वर के सांनिध्य से तेजोमय हो जाता है।

तीसरी बात कही गई है कि सभी अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करें। मनोरथों की पूर्ति का साधन है—सतत परिश्रम, निरन्तर जागरूकता। मंत्र में बताया गया है कि संसार की सभी चीजें परिवर्तनशील हैं, चक्कर काटती हैं। लक्ष्मी भी परिवर्तनशील है। जहाँ प्रगति, परिश्रम और सक्रियता है, वहाँ लक्ष्मी पहुंच जाती है। जहाँ अकर्मण्यता है, उसे लक्ष्मी छोड़ देती है।

टिप्पणी—(१) समाववर्ति—घूमती है, चक्कर काटती है, परिक्रमा करती है। आ + वृत् धातु का अर्थ है—घूमना, गोल चक्कर काटना। सम् + आ + वृत् + लट् प्र० १। वृत् (होना, घूमना) भ्वादि के स्थान पर जुहोत्यादि मानकर द्वित्व होने से वर्वति रूप बना है। **(२) पृथिवी०**—इस मन्त्र में महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन है कि पृथिवी, सूर्य और संसार के सारे पदार्थ अणु, परमाणु आदि परिक्रमा करते हैं। **(३) वैश्वानर०**—सूर्य के तुल्य तेज वाला। 'वैश्वानरः परं ब्रह्म' परमात्मा को वैश्वानर कहते हैं, अतः ब्रह्म के तुल्य ज्योति वाला या ब्रह्मरूप। **(४) भूयासम्**—मैं होऊँ। भू (होना, भ्वादि) + आशीर्लिङ् उ० १। **(५) विभून्०**—महान् कामनाओं को, सभी अभीष्टों को। विभु—महान्, काम—कामनाएं। **(६) वि अश्नवै**—प्राप्त करूँ। अश् (पाना, स्वादि, आ०) + लोट् उ० १। **(७) भूः**—सद्रूप परमात्मा को भूः कहते हैं। ऐसे परमात्मा के लिए आहुति देते हैं।

६३. हमारी कामनाएं पूर्ण हों

इड एह्यदित एहि काम्या एत।
मयि वः कामधरणं भूयात्॥

यजु० ३-२७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—हे इडे, एहि। हे अदिते, एहि। हे काम्याः, एत। वः कामधरणं मयि भूयात्।

शब्दार्थ—(हे इडे) हे पृथ्वी या हे श्रद्धा देवता, (एहि) आवो, मेरे पास आवो। (हे अदिते) हे अनिर्वचनीय ब्रह्मशक्ति, (एहि) आवो। (हे काम्याः) हे कामनायोग्य या अभीष्ट पदार्थो, (एत) आवो। (वः) तुम्हारा, (कामधरणम्) अभीष्ट पदार्थों का रखना, (मयि) मुझमें, (भूयात्) होवे, अर्थात् तुम सारे अभीष्ट पदार्थ मुझे दो।

हिन्दी अर्थ—हे पृथिवी! तुम मुझे प्राप्त हो। हे अनिर्वचनीय ब्रह्म! तुम मुझे प्राप्त हो। हे अभीष्ट पदार्थो! तुम मुझे प्राप्त हो। तुम्हारा अभीष्ट पदार्थों का रखना मुझमें हो, अर्थात् सारे अभीष्ट पदार्थ मुझे दो।

Eng. Tr.—O Earth! be with me. O Supreme Being! be with me. O Desired objects! be with me. May all of you bless me with the choicest objects.

अनुशीलन—इस मंत्र में इडा और अदिति देवियों की प्रार्थना की गई है कि वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।

इडा श्रद्धा है और अदिति ब्रह्म है। अवर्णनीय और अनिर्वचनीय होने के कारण ब्रह्म को अदिति कहते हैं। दिति का अर्थ है—खंडनीय, विच्छेद्य। अदिति का अर्थ है—अखंडनीय, अविच्छेद्य। श्रद्धा और ब्रह्म अर्थात् आस्तिकता मिलकर सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। श्रद्धा का अर्थ है—श्रत् (हृदय) + धा (लगाना)। हृदय को लगाना या मनोयोग श्रद्धा है। किसी एक लक्ष्य की ओर मन को लगा देना श्रद्धा है। इसे ही निष्ठा, आस्था और तल्लीनता कहते हैं।

जहां श्रद्धा और आस्तिकता हैं, वहां संसार की सभी वस्तुएं प्राप्य हैं। श्रद्धा से प्रवृत्ति होती है और आस्तिकता से उसमें शक्ति आती है। आस्तिकता श्रद्धारूपी वृक्ष को सजीव रखने में खाद या रस का काम करती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में अतएव श्रद्धा को काम की माता कहा गया है। श्रद्धा सफलता देती है, कामनाएं पूर्ण करती है और अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कराती है।

श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वर्धयामसि। तैत्ति० ब्रा० २-८-८-८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(१) इडे—हे पृथिवी या हे श्रद्धा। 'इयं पृथिवी वा इडा' कौषीतकि ब्रा० ९–२। 'श्रद्धेडा' शतपथ ब्रा० ११-२-७-२०। इडा के अन्य अर्थ हैं—गाय, पशु, अन्न, मनु की पुत्री, वाणी। (२) एहि—आवो। आ + इ (आना, अदादि. पर०) + लोट् म० १। (३) अदिते—हे अखंडनीय या अनिर्वचनीय ब्रह्म। दिति–खंडनीय, अदिति–अखंडनीय। देवों की माता को अदिति कहते हैं। यह सारा संसार अदिति की संतान माना गया है। अदिति के अन्य अर्थ हैं—पृथिवी, गाय, वाणी। सारे संसार का संहर्ता होने से ब्रह्म को अदिति कहा गया है। 'सर्वं वा अत्तीति तद् अदितेः अदितित्वम्' शतपथ ब्रा० १०-६-५-५। (४) काम्याः—हे कमनीय या अभीष्ट पदार्थो। (५) एत—तुम आवो। आ + इ (आना, अदादि) + लोट् म० ३। (६) कामधरणम्—अभीष्ट पदार्थों का रखना। श्रद्धा काम की माता है, अतः वही अभीष्ट पदार्थ देती है। 'श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वर्धयामसि' तैत्ति० ब्रा० २-८-८-८। (७) भूयात्—होवे। भू (होना, भ्वादि) + आशीर्लिङ् प्र० १।

६४. शुभ कामनाएं सदा वास करें

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा,
याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिः त्वमस्माँ अभिसंविशस्व,
अन्यत्र पापीरप वेशया धियः॥

अथर्व ९-२-२५

अन्वय—हे काम, याः ते शिवाः भद्राः तन्वः, याभिः यद् वृणीषे, (तत्) सत्यं भवति। ताभिः त्वम् अस्मान् अभिसंविशस्व। पापीः धियः अन्यत्र अप वेशय।

शब्दार्थ—(हे काम) हे कामदेव, हे संकल्पदेव, (याः) जो, (ते) तेरे, (शिवाः) पवित्र, शुभ, (भद्राः) कल्याणकारी, हितकारी, (तन्वः) शरीर हैं। (याभिः) जिनसे, (यद्) जिस किसी को, (वृणीषे) चुनते हो, (तद्) वह, (सत्यं भवति) सत्य होता है, शुभ होता है। (ताभिः) उन शरीरों से, (त्वम्) तू,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अस्मान्) हममें, (अभिसंविशस्व) प्रवेश करो। (पापीः) पापी, अशुभ, निन्द्य, (धियः) बुद्धियों को, विचारों को, (अन्यत्र) अन्य स्थान पर, (अप वेशय) प्रविष्ट कराओ, रखो।

हिन्दी अर्थ—हे कामदेव, तुम्हारे जो शुभ और कल्याणकारी शरीर (स्वरूप) हैं, उनसे जिसको स्वीकार करते हो, वहाँ शुभ होता है। उन शुभ शरीरों से हमारे अन्दर प्रवेश कीजिए। अशुभ बुद्धियों या विचारों को हमसे दूर रखिए।

Eng. Tr.—O God of love ! he becomes virtuous, who-so-ever you win by your pious and auspicicious form. May you dwell in us with those auspicious forms and remove all the evil thoughts from us.

अनुशीलन—इस मंत्र का मनोविज्ञान से सम्बन्ध है। इस मंत्र में काम के दो रूपों का वर्णन है। उसमें शुभ रूप को कल्याणकारी बताया है और अशुभ को विनाशक।

संसार का उत्पादक काम को बताया गया है। काम क्या है? यह शुभ और अशुभ कैसे है? काम मन का सार भाग है। यही कामना, इच्छाशक्ति (will-power) और आकांक्षा है। संसार के सारे उत्पादन और विनाश काम की सीमा में हैं। काम का कहीं अन्त नहीं है। यह समुद्र की तरह चारों ओर फैला हुआ है और असीम है। अथर्ववेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण में यही बात कही गई है।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। अथर्व० १९-५२-१

समुद्र इव हि कामः। नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य।

तैत्ति० ब्रा० २-२-५-६

मन में उत्पन्न होने वाले विचार काम या कामना हैं। इस काम के द्वारा ही संसार में सारे काम होते हैं। इस काम के द्वारा ही परमात्मा ने सृष्टि बनाई। मनुष्यों की बड़ी से लेकर छोटी इच्छाओं तक का आधार काम है। अतएव काम को संसार की सबसे बड़ी शक्ति माना गया है। अथर्ववेद का कथन है कि काम सबसे महान् है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु कोई उसके समान नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न वै वातश्चन काममाप्नोति, नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्, तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥
अथर्व० ९-२-२४

काम के दो रूप हैं—शुभ और अशुभ, पवित्र और निन्दित। काम या कामना जब अच्छे मार्ग पर चलती हैं तो वह शुभ और पवित्र होती है। यह उन्नति की ओर ले जाती है, सब इच्छाएं पूरी करती हैं और सब सुख देती है। जब यह बुरे मार्ग पर चलती है, तब यह सब कुछ नष्ट कर देती है।

टिप्पणी—(१) शिवाः—शुभ, पवित्र। (२) तन्वः—शरीर या स्वरूप। तनू (शरीर) + प्र० ३। (३) काम—हे कामदेव। संकल्प या विचारों के देवता को काम कहा गया है। (४) सत्यं०—सत्य होता है। उचित या शुभ ही होता है। काम के शुभ स्वरूप से सत्य-व्यवहार ही होता है। (५) यद्—जिसको, जिस किसी को। यद् वस्तु, अर्थ हैं। (६) वृणीषे—चुनते हो। वृ (चुनना, क्र्यादि, आ०) + लट् म० १। (७) अभिसंविशस्व—प्रवेश करो। अभि + सम् + विश् (प्रवेश करना, तुदादि, आ०) + लोट् म० १। (८) पापीः—पापी, निकृष्ट, नीच। पापी + द्वि० ३। (९) अप वेशय—रखो, प्रविष्ट कराओ। अप + विश् (प्रवेश करना, तुदादि) + णिच् + लोट् म० १। वेशय को वेशया, छान्दस दीर्घ। (१०) धियः—बुद्धियों को, विचारों को। धी + द्वि० ३।

६५. मन और विचार एक हों

समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति ॥
ऋग्० १०-१९१-४

अन्वय—वः आकूतिः समानी, वः हृदयानि समाना (समानानि), वः मनः समानम् अस्तु। यथा वः सुसह असति।

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारा, (आकूतिः) संकल्प, अध्यवसाय, (समानी) समान हो। (वः) तुम्हारे, (हृदयानि) हृदय, (समाना) समान हों। (वः) तुम्हारा, (मनः) मन, (समानम् अस्तु) समान हो। यथा जिस प्रकार, (वः) तुम्हारा, (सुसह) संगठन, समन्वय, (असति) होवे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—तुम्हारे संकल्प समान हों। तुम्हारे हृदय समान हों। तुम्हारे मन समान हों, जिससे तुम्हारा संगठन हो।

Eng. Tr.—Let you proceed with similar intentions. Let your hearts and minds be similar to each other, so that you may be organised uniformly.

अनुशीलन—इस मन्त्र में संगठन के तीन मूल तत्त्वों का निर्देश किया गया है। वे हैं—१. विचार-साम्य, २. हृदय-साम्य, ३. मनःसाम्य। किसी भी संगठन के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है कि संगठित होने वाले समूह में विचारों की एकता हो। यदि विचारों में एकता नहीं है, विचार-भेद है, मत-भेद है, तो वह संगठन सुदृढ़ नहीं हो सकता है। जहाँ विचारों की एकता होगी, वहाँ लक्ष्य एक होगा, साध्य एक होगा। वह एक लक्ष्य सबको संगठित रखेगा। दूसरी आवश्यकता है—हृदय की एकता। लक्ष्य भले ही एक हो, पर यदि हम उसमें हार्दिक सहयोग नहीं दे रहे हैं, हृदय से साथ नहीं हैं, हार्दिक एकता नहीं है, तो लक्ष्य एक होने पर भी सफलता नहीं मिलेगी। अतः एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए हृदय की एकता भी अनिवार्य है। तीसरी आवश्यकता है—मन की एकता। यदि लक्ष्य एक है और हृदय से सहानुभूति भी है, पर यदि क्रियाशीलता नहीं है, प्रेरणा नहीं है और प्रवुद्धता नहीं है तो वह संगठन दृढ़ नहीं होगा। कठोपनिषद् के अनुसार 'मनः प्रग्रहमेव च' मन शरीर में लगाम का काम करता है। लगाम जिस ढंग से नियन्त्रित की जाएगी, उसी प्रकार घोड़े चलेंगे। यदि मनरूपी लगाम को ठीक नियन्त्रित रखेंगे, नियमित रूप से उस कार्य को गति देंगे और पूर्ण मनोयोग देंगे, तभी संगठन सुव्यवस्थित और सुदृढ़ होगा। ये तीन तत्त्व हैं, जिनके अपनाने से कोई भी संगठन सुदृढ़ हो सकता है।

टिप्पणी—(१) **आकूतिः**—संकल्प, विचार, उद्देश्य। (२) **समाना**—समान हों। समानानि का संक्षिप्त रूप है। (३) **सुसह**—सुन्दर संगठन, सह-अस्तित्व; सुखद-एकता। सु—अच्छा, सह—एकता, साथ। (४) **असति**—होवे। अस् (होना, अदादि) + लेट् प्र० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६६. मिलकर चलें, मिलकर बोलें

सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे, संजानाना उपासते ॥

ऋग्० १०-१९१-२

अन्वय—(हे जनाः) सं गच्छध्वम्, सं वदध्वम्, वः मनांसि सं जानताम् । यथा पूर्वे देवाः संजानानाः भागम् उपासते, (तथैव यूयं कुरुत) ।

शब्दार्थ—(हे जनाः) हे मनुष्यो, (सं गच्छध्वम्) मिलकर चलो । (सं वदध्वम्) मिलकर बोलो । (वः) तुम्हारे, (मनांसि) मन, (सं जानताम्) एक प्रकार के विचार करें । (यथा) जैसे, (पूर्वे) प्राचीन, (देवाः) देवों या विद्वानों ने, (संजानानाः) एकमत होकर, (भागम्) अपने अपने भाग को, (उपासते) स्वीकार किया, इसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना भाग स्वीकार करो ।

हिन्दी अर्थ—(हे मनुष्यो !) मिलकर चलो । मिलकर बोलो । तुम्हारे मन एक प्रकार के विचार करें । जिस प्रकार प्राचीन विद्वान् एकमत होकर अपना-अपना भाग ग्रहण करते थे, (उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना भाग ग्रहण करो) ।

Eng. Tr. – O Men ! you should walk together, talk together and think alike. As your predecessors shared their assign ments, so you must share your due.

अनुशीलन—मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसका सम्बन्ध समाज से है । वह समाज का एक अंग है । व्यक्ति व्यष्टि है और समाज समष्टि । संगठन से समष्टि सुदृढ़ होती है । संगठन निर्बल को भी बलवान्, शक्तिहीन को शक्तिशाली बना देता है । अतः कहा गया है कि—'संघे शक्तिः कलौ युगे' कलियुग में संगठन में ही शक्ति है । नीति का श्लोक है कि—

संहतिः श्रेयसी पुंसां सुगुणैरल्पकैरपि ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैः बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ।

सद्गुणयुक्त थोड़े व्यक्ति भी हों तो उनका संगठित होना कल्याणकारी है । तिनके मिलकर रस्सा बनते हैं और उनसे मत्त हाथी भी बांधे जा सकते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संगठन की महिमा अपार है। समाज में प्रतिष्ठित रूप से जीवित रहने के लिए संगठन अनिवार्य है। अतएव मन्त्र में कहा गया है कि प्राचीन ऋषि-मुनि एवं आर्यजन एकत्व के महत्त्व को समझकर सुसंगठित थे, उसी प्रकार हम भी सुसंगठित हों। इसके लिए आवश्यक है कि सभी व्यक्ति साथ उठें, बैठें। मिलकर विचार-विनिमय करें और सामूहिक निर्णय का पालन करें। जो साथ चलेंगे, मिलकर बोलेंगे और जिनमें संज्ञान (एकत्वबुद्धि) होगा, वे सदा उन्नति करेंगे।

टिप्पणी—(१) **सं गच्छध्वम्**—सम्–मिलकर, गच्छध्वम्—चलो। सम् + गम् (जाना, भ्वादि) + लोट् म० ३। सम् के कारण आत्मनेपद। (२) **सं वदध्वम्**—सम्–मिलकर, वदध्वम्–बोलो। सम् + वद् (बोलना, भ्वादि) + लोट् म० ३। आत्मनेपद में प्रयोग है। (३) **सं जानताम्**—मिलकर जानें, एकमत होकर किसी विषय पर विचार करें। सम् + ज्ञा (जानना, क्र्यादि) + लोट् प्र० ३। आत्मनेपद है। (४) **संजानानाः**—एकमत होकर। सम् + ज्ञा + शानच् (आन) + प्रथमा ३। (५) **उपासते**—स्वीकार करते हैं। उप + आस् (बैठना, अदादि) + लट् प्र० ३।

६७. अन्न और धन से समृद्ध हों

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च,
ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च,
प्रजा च पशवश्च ॥

अथर्व० १२–५–१०

अन्वय—पयः च, रसः च, अन्नं च, अन्नाद्यं च, ऋतं च, सत्यं च, इष्टं च, पूर्तं च, प्रजा च, पशवः च ॥

शब्दार्थ—(पयः च) दूध, (रसः च) रस, (अन्नं च) अन्न, (अन्नाद्यं च) अनाज, खाद्य पदार्थ, (ऋतं च) ऋत, शाश्वत नियम, (सत्यं च) सत्य, (इष्टं च) यज्ञ आदि अभीष्ट कार्य, (पूर्तं च) धर्मार्थ किए गए कार्य, (प्रजा च) प्रजा, संतान, (पशवः च) पशु, ये सब प्राप्त हों।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—दूध, रस, अन्न, खाद्य पदार्थ, ऋत, सत्य, इष्ट, पूर्त (धर्मार्थ कूप तालाब आदि बनवाना), सन्तान और पशुधन हमें प्राप्त हों।

Eng. Tr.—Let us have milk, juice, food, grains, natural laws, truth, sacrifices, charitable acts, progeny and cattle-wealth.

अनुशीलन—इस मंत्र में सुखी परिवार के लिए आवश्यक तत्त्वों की प्रार्थना की गई है। परिवार में दूध-रस, अन्न-अनाज, ऋत-सत्य, इष्ट-पूर्त, प्रजा-पशु का होना आवश्यक है।

विचार करने से ज्ञात होता है कि इनमें कुछ तत्व साधन हैं और कुछ साध्य। साधनों का उपयोग करने से साध्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इसमें साधन के रूप में ऋत-सत्य और इष्ट-पूर्त हैं। ईश्वरीय शाश्वत नियमों को ऋत कहते हैं। ऋत सारे संसार में एक रूप है। ऋत में कोई अन्तर नहीं आता है। ऋत का व्यावहारिक पक्ष सत्य है। जीवन में सत्य-व्यवहार, सत्य-निष्ठा और सत्य-प्रियता सुख के सोपान हैं। इष्ट का अभिप्राय यज्ञ है और धमार्थ किए गए दान आदि पूर्त हैं। कूप, तालाब और धर्मशाला आदि का निर्माण पूर्त है। किसी प्रकार का स्मारक या पूजा-गृह आदि का निर्माण भी पूर्त है। ऋत-सत्य और इष्ट-पूर्त परिवार या समाज को सुखी बनाने के साधन हैं।

इन साधनों से जो उपलब्धि होती है, उसका उल्लेख भी मंत्र में किया गया है। सब प्रकार के रस, दुग्ध आदि, सब प्रकार के अनाज या अन्न-समृद्धि, संतान और पशु-धन, ये सब फल हैं। जो सत्य आदि का पालन करता है, उसे संसार की सभी संपत्ति एवं सभी वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

टिप्पणी—(१) **पयः**—दूध, जल। पयस् + प्र० १। (२) **रसः**—रस, रसीले पदार्थ, सरस वस्तुएँ। (३) **अन्नाद्यम्**—अनाज, खाद्य पदार्थ। अन्नाद्य का ही अपभ्रंश अनाज है। (४) **ऋतम्**—शाश्वत प्राकृतिक नियमों को ऋत कहते हैं (५) **सत्यम्**—सत्य, सत्य-व्यवहार। (६) **इष्टम्**—यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य। (७) **पूर्तम्**—धर्मार्थ किए जाने वाले कार्य। जैसे—कूप, तालाब, धर्मशाला आदि का निर्माण। इष्ट और पूर्त को मिलाकर इष्टापूर्त शब्द बनता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६८. धन और बल प्राप्त हों

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥

यजु० ३-३९

अन्वय—अयं गार्हपत्यः अग्निः गृहपतिः, प्रजायाः वसुवित्तमः । हे गृहपते अग्ने, द्युम्नम् अभि आयच्छस्व, सहः अभि (आयच्छस्व) ।

शब्दार्थ—(अयम्) यह, (गार्हपत्यः अग्निः) गार्हपत्य अग्नि, (गृहपतिः) गृह का स्वामी है । (प्रजायाः) प्रजा के लिए, (वसुवित्तमः) धन को प्राप्त कराने वालों में सर्वश्रेष्ठ है । (हे गृहपते अग्ने) हे गृहपति अग्नि, (द्युम्नम्) तेज, यश, धन, (अभि आयच्छस्व) दो । (सहः) शक्ति, बल, (अभि आयच्छस्व) दो ।

हिन्दी अर्थ—यह गार्हपत्य अग्नि गृह का स्वामी है और प्रजा के लिए धन प्राप्त कराने वालों में सर्वश्रेष्ठ है । हे गृहपति अग्नि ! तुम हमें धन (यश, तेज) और बल दो ।

Eng. Tr.—The Domestic fire is lord of the house. He is the foremost among the bestowers of the wealth on the fa ily-members. O Domestic fire ! confer wealth and valour on us.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि पारिवारिक अग्नि या गार्हपत्य अग्नि सभी प्रकार का सुख और शक्ति देती है ।

परिवार की सुख-समृद्धि के लिए धन चाहिए और उसका उपभोग करने के लिए बल चाहिए । बल से श्री आती है और श्री से बल बढ़ता है । परिवार के लिए श्री और बल का साधन यज्ञ है । जिस परिवार में नियमित यज्ञ होता है, वहाँ सुख और श्री निश्चित रूप से रहती है । यज्ञ से आस्तिकता, आत्मिक बल और पवित्रता आती है । जहाँ ये गुण होते हैं, वहाँ देवों का निवास होता है और सुख-शान्ति की धारा बहती है ।

टिप्पणी—(१) गृहपतिः—गृह का स्वामी । (२) गार्हपत्यः—गार्हपत्य अग्नि । परिवार के कार्यों में आने वाली अग्नि को गार्हपत्य अग्नि कहते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३) वसुवित्तमः—वसु–धन को, विद्–प्राप्त कराना, तमः–सर्वश्रेष्ठ। परिवार के लोगों को धन प्राप्त कराने वालों में सर्वश्रेष्ठ। (४) द्युम्नम्—धन, तेज, यश। द्युम्न के अर्थ हैं—तेज, दीप्ति, यश, अन्न, धन। (५)सहः—शक्ति, बल। शत्रु-नाशक तेज को सहस् कहते हैं। सहस् + द्वि० १। (६) अभि आयच्छस्व—दो। आ + यच्छ् (देना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० १।

६९. ओज, बल और शक्ति हो

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥

अथर्व २–१७–१ से ४

अन्वय—ओजः असि, मे ओजः दाः स्वाहा। सहः असि, मे सहः दाः स्वाहा। बलम् असि, मे बलं दाः स्वाहा। आयुः असि, मे आयुः दाः स्वाहा।

शब्दार्थ—(ओजः असि) तुम ओज, शक्ति या सामर्थ्य हो। (मे) मुझे, (ओजः) ओज, शक्ति, (दाः) दो, (स्वाहा) तदर्थ आहुति देते हैं। (सहः असि) तुम शक्तिरूप या सहन शक्ति से युक्त हो, (मे सहः दाः स्वाहा) मुझे शक्ति या सहनशीलता दो। (बलम् असि) तुम बल-स्वरूप हो, (मे बलं दाः स्वाहा) मुझे बल दो। (आयुः असि) तुम आयु या जीवनशक्ति हो, (मे आयुः दाः स्वाहा) मुझे आयु दो।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्! तुम ओज-रूप हो, मुझे ओज (ओजस्विता) दो। तुम शक्ति-रूप हो, मुझे शक्ति दो। तुम बल-स्वरूप हो, मुझे बल दो। तुम आयु (जीवनशक्ति या प्राणशक्ति) हो, मुझे आयु दो।

Eng.Tr.—O God! you are the source of energy, bestow energy on me. You are the source of power, confer power upon me. You are the source of strength, give me strength. You are the source of longevity, give me a long-life.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह सर्वशक्तिमान् है। उसमें ओज, सहस्. बल और आयु सभी कुछ हैं। वह हमें ओज, साहस, बल और दीर्घ आयु दे।

ओज शरीर का सारभाग है। आयुर्वेद में ओज को ब्रह्म का मूर्तरूप माना गया है। यही मानव के शरीर में चेतना देता है और सभी प्रकार की प्रगति करता है। ओज से ही मनोबल, स्फूर्ति और उत्साह का उद्गम होता है। सहस् या साहस ओज का ही फल है। साहस से क्रियाशीलता आती है। नए कार्यों में प्रवृत्ति, अथक परिश्रम ओर दुर्लभ लक्ष्य को प्राप्त कर सकने का सामर्थ्य साहस से आता है। अतएव कहा गया है कि—**साहसे श्रीर्वसति**, अर्थात् साहस में ही लक्ष्मी रहती हैं।

जहाँ ओज और सहस् होंगे, वहाँ शारीरिक बल अवश्य होगा। शारीरिक बल से पुरुषार्थ के सभी कार्य किए जाते हैं। शारीरिक बल का प्रदर्शन भी किया जा सकता है। शारीरिक बल स्व-रक्षा, शत्रु-संहार, पर-सेवा आदि कार्यों में प्रयुक्त होता है। उत्तम स्वास्थ्य होने पर मनुष्य की आयु लंबी होती है और जीवनी शक्ति अधिक समय तक शरीर में रहती है। इस प्रकार ओज से साहस, साहस से बल और बल से आयु की वृद्धि होती है।

टिप्पणी—(१) **ओजः**—ओज, शक्ति, सामर्थ्य। मनोबल, स्फूर्ति और उत्साह का आधार ओज है। यह शरीर का सार माना जाता है। ओजस् + प्र० १। (२) **दाः**—दो। दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् म० १। अडागम नहीं, Inj. है। (३) **सहः**—शक्ति। शत्रुनाशक शक्ति को सहस् कहते हैं। सहः का अर्थ सहनशीलता भी लिया गया है। सहस् + प्र० १। (४) **आयुः**—आयु या जीवनशक्ति। आयुष् + प्र० १।

७०. सभी इन्द्रियां सुपुष्ट हों

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

अथर्व० २-१७-५ से ७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—श्रोत्रम् असि, मे श्रोत्रं दाः स्वाहा। चक्षुः असि, मे चक्षुः दाः स्वाहा। परिपाणम् असि, मे परिपाणं दाः स्वाहा।

शब्दार्थ—(श्रोत्रम् असि) तुम श्रवणशक्ति-रूप हो, (मे) मुझे, (श्रोत्रम्) श्रवणशक्ति, (दाः) दो, (स्वाहा) तदर्थ आहुति देते हैं। (चक्षुः असि) तुम दर्शन शक्ति-रूप हो, (मे चक्षुः दाः स्वाहा) मुझे दर्शन-शक्ति दो। (परिपाणम् असि) तुम आत्म-संरक्षण-स्वरूप हो, (मे परिपाणं दाः स्वाहा) मुझे आत्म-संरक्षण की शक्ति दो।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्! तुम श्रवणशक्ति-रूप हो, मुझे श्रवणशक्ति दो। तुम दर्शनशक्ति-रूप हो, मुझे देखने की शक्ति दो। तुम आत्म-संरक्षक-स्वरूप हो, मुझे आत्म-संरक्षण की शक्ति दो।

Eng. Tr.—O God! you are the source of hearing, bestow the power of hearing on me. You are the source of eye-sight, give me eye-sight. You are the guardian of the soul, confer the power of self-protection upon me.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह सभी इन्द्रियों को शक्ति दे और आत्म-रक्षा का बल दे। इस मंत्र में परमात्मा को श्रोत्र और चक्षु कहा गया है।

केन उपनिषद् में इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक इन्द्रिय में जो देखने-सुनने आदि की शक्ति है, वह शरीर में ब्रह्म की सत्ता के कारण ही है। शक्ति का स्रोत ब्रह्म ही है, उसकी सत्ता से ही जीवन में चेतना आती है। आंख से देखना और कान से सुनना, यह भी ब्रह्म की शक्ति से ही होता है। उसके विना जीवन निर्जीव है। इसमें केवल दो ज्ञानेन्द्रियों का उल्लेख है। यह प्रतीक मात्र है और सभी ज्ञानेन्द्रियों का सूचक है। सभी ज्ञानेन्द्रियों में बल हो। सभी ज्ञानेन्द्रियां पूर्ण रूप से स्वस्थ हों, जिससे जीवन भर उनका सदुपयोग किया जा सके।

मंत्र में तीसरी बात कही गई है कि परमात्मा स्वयं सुरक्षित है। वह हमें आत्म-रक्षा के लिए आत्मिक बल दे। संसार में मनुष्य की रक्षा के लिए कोई भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्ति इतनी समर्थ नहीं है, जितनी आत्मरक्षा की भावना या आत्मिक बल। जिसमें आत्मिक चेतना जागृत हो जाती है, वह संसार का सबसे बली व्यक्ति है। वह सदा सुरक्षित रहता है, निर्भय होता है और बड़ी से बड़ी विपत्तियों से विचलित नहीं होता है।

टीप्पणी—(१) श्रोत्रम्—कान, श्रवणशक्ति। यहाँ श्रवणशक्ति या सुनने की शक्ति अर्थ है। (२) चक्षुः—आंख, देखने की शक्ति। यहाँ दर्शनशक्ति अर्थ है। (३) परिपाणम्—चारों ओर से रक्षा करना। परमात्मा चारों ओर से स्वयं सुरक्षित है, आत्म-संरक्षण की शक्ति दे। परि + पा (रक्षा करना, अदादि) + ल्युट् (अन)।

७१. सुन्दर और दीर्घायु हों

आयुश्च रूपं च, नाम च कीर्तिश्च,
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥

अथर्व० १२-५-९

अन्वय—आयुः च, रूपं च, नाम च, कीर्तिः च, प्राणः च, अपानः च, चक्षुः च, श्रोत्रं च।

शब्दार्थ—(आयुः च) आयु, (रूपं च) रूप, सौन्दर्य, (नाम च) नाम, (कीर्तिः च) कीर्ति, (प्राणः च) प्राणशक्ति, (अपानः च) अपान शक्ति, (चक्षुः च) दर्शनशक्ति, (श्रोत्रं च) श्रवणशक्ति।

हिन्दी अर्थ—आयु, सौन्दर्य, नाम, कीर्ति, प्राण-शक्ति, अपान-शक्ति, दर्शनशक्ति और श्रवणशक्ति हमें प्राप्त हों।

Eng. Tr.—Let us have longevity, beauty, good name, fame, vitality, respiration (vital airs called prana and Apana), good vision and power of hearing.

अनुशीलन—इस मंत्र में जीवन के कतिपय अभीष्ट तत्त्वों का उल्लेख है कि ये हमें जीवन में प्राप्त हों। ये तत्त्व हैं—आयु-रूप, नाम-कीर्ति, प्राण-अपान, चक्षु-श्रोत्र।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इनमें से प्राण-अपान शरीर के धारक तत्त्व हैं। प्राण और अपान शरीर को सजीव बनाए हुए हैं। प्राण पौष्टिक तत्त्वों को अन्दर पहुँचाता है और अपान दूषित तत्त्वों को बाहर फेंकता है। प्राण के द्वारा oxygen आक्सीजन शरीर में अन्दर पहुँचाया जाता है और अपान वायु के द्वारा दूषित वायु बाहर फेंकी जाती है। इस प्रकार शरीर का संरक्षण होता है। प्राण और अपान जीवनी शक्ति हैं। इनसे ही शरीर रुका हुआ है। अतएव प्राण और जीवन पर्याय माना जाता है।

जीवन में नाम और कीर्ति ये स्थिर तत्त्व हैं। सत्कर्मों से यश और कीर्ति मिलती है और दुष्कर्मों से अपयश। इसलिए मंत्र में कहा गया है कि जीवन में यश और कीर्ति प्राप्त हो।

जीवन सुरुचिपूर्ण और स्वस्थ रहे, इसके लिए आवश्यक है कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ नीरोग और स्वस्थ हों। अतएव चक्षु, श्रोत्र आदि की स्वस्थता की कामना की गई है। जब शरीर स्वस्थ होगा तो मनुष्य को दीर्घ आयु और सुन्दरता प्राप्त होगी।

टिप्पणी—(१) **आयुः**—जीवनशक्ति, दीर्घ आयु (२) **रूपम्**—रूप, सौन्दर्य। (३) **नाम**—नाम स्वरूप। नामन् + प्र० १। (४) **कीर्तिः**—कीर्ति, प्रतिष्ठा, ख्याति। (५) **प्राणः**—प्राणशक्ति। (६) **अपानः**—अपान शक्ति, मलादि को को निकालने वाली शक्ति।

७२. दान से परिवार की समृद्धि

इह गावः प्रजायध्वम्, इहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणो-ऽपि पूषा नि षीदति॥

अथर्व० २०-१२७-१२

अन्वय—इह गावः प्रजायध्वम्, इह अश्वाः, इह पुरुषाः (प्रजायध्वम्)। इह उ सहस्रदक्षिणः पूषा अपि नि षीदति।

शब्दार्थ—(इह) यहाँ, (गावः) गायें, (प्रजायध्वम्) बच्चे दें, बढ़ें। (इह अश्वाः) यहाँ घोड़े, (इह पूरुषाः) यहाँ मनुष्य, (प्रजायध्वम्) बढ़ें। (इह उ) और यहाँ, (सहस्रदक्षिणः) हजारों की दक्षिणा देने वाला, (पूषा अपि) पूषा देव भी, (निषीदति) रहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—इस परिवार में गायें, घोड़े और मनुष्य निरन्तर बढ़ें। यहाँ हजारों दक्षिणा में देने वाला देव पूषा भी रहता है।

Eng. Tr.—Let the cows, the horses and the family-members prosper in this house. Here dwells the god pushan, bestower of bounties.

अनुशीलन—इस मंत्र में दान का महत्त्व वर्णित है। जहाँ दान का प्रसार है, वहाँ सुयोग्य सन्तान और पशुधन का निवास होता है।

यहाँ **सहस्रदक्षिणः** का भाव है कि जो सदा यज्ञ आदि में अधिक से अधिक दान देता है और उपकार के कामों में सहस्रों रुपए व्यय करता है। जो इस प्रकार का दानी और उदारमना होता है, उसके परिवार की सभी ओर से श्रीवृद्धि होती है। दान धन का सर्वोत्तम उपयोग है। श्री की पुष्टि दान है। दान से मनुष्य सहस्रों व्यक्तियों की सद्भावना अर्जित करता है। यह सद्भावना उसकी श्रीवृद्धि का मूल है।

मंत्र में इसीलिए कहा गया है कि जहाँ दान और पवित्र कार्य होते हैं, वहाँ पुष्टि का देवता पूषा निवास करता है। इस दान का फल यह होता है कि उस परिवार में योग्य पुरुष होते हैं और पशुधन की वृद्धि होती है।

टिप्पणी—(१) **प्रजायध्वम्**—बच्चे दें। निरन्तर बढ़ें। प्र + जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + लोट् म० ३। जन् को जा आदेश। (२) **सहस्रदक्षिणः**—सहस्रों की दक्षिणा देने वाला, हजारों का दाता। (३) **पूषा**—पूषन् देवता। यह पुष्टिकर्ता और गृह का रक्षक देवता माना जाता है। (४) **नि षीदति**—रहता है, बैठा रहता है। नि + सद् (सीद्, बैठना, भ्वादि) + लट् प्र० १।

७३. दान से समृद्धि

यो अर्यो मर्तभोजनं, परादादाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु, वि भजा भूरि ते वसु,
भक्षीय तव राधसः॥

ऋग्० १-८१-६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—यः अर्यः दाशुषे मर्तभोजनं परादादाति । (सः) इन्द्रः अस्मभ्यं शिक्षतु । ते भूरि वसु वि भज । तव राधसः (अहम्) भक्षीय ।

शब्दार्थ—(यः) जो, (अर्यः) स्वामी, पालक, इन्द्र, (दाशुषे) यजमान को, हवि आदि के दाता को, (मर्तभोजनम्) मानवीय भोजन, (परादादाति) देता है। (स इन्द्रः) वह इन्द्र, (अस्मभ्यम्) हमें, (शिक्षतु) शिक्षा दे, ज्ञान दे। (तें) तेरे, अपने, (भूरि वसु) विशाल धन को, (वि भज) बांटे। (तव) तेरे, (राधसः) धन को, उपहार को, (अहं भक्षीय) मैं पाऊँ, सेवन करूँ।

हिन्दी अर्थ—जो पालक इन्द्र हवि आदि के दाता यजमान को मानवीय भोजन देता है। वह इन्द्र हमें शिक्षा (ज्ञान) दे। वह अपना विशाल ऐश्वर्य हम लोगों में बांटे। मैं तेरे द्वारा प्रदत्त धन को पाउँ।

Eng. Tr.—The bounteous Indra bestows rich food on the sacrificer. He may be pleased to confer knowledge upon us. Let him share his abundant wealth amongst us. May we enjoy his wealth.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि जो दान देता है, परमात्मा भी उसे प्रचुर धन देता है। हमारे ऊपर उस परमात्मा की कृपा हो। हम परमात्मा के आशीर्वाद के पात्र हों और महान् ऐश्वर्य प्राप्त करें।

मंत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि जो यज्ञ आदि के द्वारा देवों को प्रसन्न करता है, उन्हें हवि आदि देता है, उन्हें परमात्मा समृद्धि देता है। जो परमात्मा की ओर झुकता है, उसकी ओर परमात्मा भी झुकता है। संसार का जितना ऐश्वर्य है, वह परमात्मा की कृपा है। सारा संसार उसके दिए हुए का ही भोग करता है। जब परमात्मा मनुष्य की ज्ञान-दृष्टि खोल देता है, तब वह सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होता है। इसको ही मंत्र में कहा गया है कि—'इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु' परमात्मा हमें ज्ञान दे।

इस ज्ञान से ही मनुष्य सत्कर्म करता है। सत्कर्म के फल-स्वरूप परमात्मा की संपत्ति का उपभोग करने का अधिकारी होता है। इसको ही मंत्र में 'भक्षीय तव राधसः' के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—(१) **अर्यः**—स्वामी, पालक। अर्य के अर्थ हैं—स्वामी और वैश्य। 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (अष्टा० ३-१-१०३)। अर्य—ऋ + यत् (य)। (२) **मर्तभोजनम्**—मर्त–मर्त्य, मनुष्यों का, भोजनम्—भोजन। मानवीय भक्ष्य। (३) **परावदाति**—देता है। परा + दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लट् प्र० १। (४) **दाशुषे**—हवि आदि देने वाले को, यजमान को। दाश् (हवि आदि देना, भ्वादि पर०) + क्वसु (वस्) = दाश्वस् + च० १। विद्वस् से विदुषे के तुल्य। (५) **अस्मभ्यम्**—हमें। अस्मद् + च० ३। (६) **शिक्षतु**—शिक्षा दे, ज्ञान दे। शिक्ष् (शिक्षा देना, सीखना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० १। (७) **वि भज**—बांटो, वि + भज् (बांटना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। भज को भजा, छान्दस दीर्घ। (८) **भक्षीय**—मैं सेवन करूं या पाऊं। भज् (सेवा करना, बांटना, भ्वादि, आ०) + विधिलिङ् उ० १। (९) **राधसः**—धन या उपहार। राधस् + प० १।

७४. नित्य धन-संग्रह और दान करो

शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य, चेह स्फातिं समावह॥

अथर्व० ३-२४-५

अन्वय—हे शतहस्त, समाहर। हे सहस्रहस्त, सं किर। कृतस्य कार्यस्य च इह स्फातिं सम् आवह।

शब्दार्थ—(हे शतहस्त) हे सौ हाथों वाले मनुष्य, अर्थात् सैकड़ों हाथ वाले होकर हे मनुष्य, (समाहर) लाओ, धन-संपत्ति का संग्रह करो। (हे सहस्रहस्त) हे हजार हाथ वाले मनुष्य, अर्थात् हजार हाथों वाले होकर हे मनुष्य, (सं किर) फैलाओ, दो, बाँटों। (कृतस्य) किए हुए, (कार्यस्य च) और आगे करने योग्य कार्य की, (इह) इस संसार में, (स्फातिम्) समृद्धि को, (सम् आवह) लाओ, प्राप्त करो।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्य! तुम सौ हाथ वाले होकर धन-संग्रह करो। हे मनुष्य! तुम हजार हाथ वाले होकर (उस धन को) बाँट दो (दान कर दो)। इस प्रकार तुम अपने किए हुए और आगे करने योग्य कार्यों की समृद्धि को संपन्न करो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Eng. Tr.—O Man ! Procure wealth with one-hundred hands and distribute it in charity with one thousand hands. Thus you attain perfection of the work done and to be done.

अनुशीलन—वेदों के अत्यन्त प्रिय सुभाषितों में यह मंत्र है। इस मंत्र का सारांश है—एक हाथ से कमाओ, दूसरे हाथ से दान करो। कमाने के विषय में मंत्र का कथन है कि सौ हाथों से कमाओ। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य दो हाथों वाला होकर भी इतना उद्यमी हो सकता है कि उसकी श्रीवृद्धि सौ हाथों से कमाने के बराबर हो। जो व्यक्ति जितना पुरुषार्थी होगा, उतनी ही उसकी श्रीवृद्धि होगी। इसलिए नीति ग्रन्थों में कहा गया है कि उद्यमी पुरुषों को ही लक्ष्मी मिलती है, अकर्मण्यों को नहीं।

मंत्र में धनसंग्रह के साथ ही आदेश दिया गया है कि सौ हाथ से लाओ सौ हजार हाथ से दान करो। वेदों में सैकड़ों मंत्रों में दान का महत्त्व बताया गया है। वस्तुतः दान धन की सुरक्षा का एक अप्रत्यक्ष साधन है। धन दान से जितना सुरक्षित रहता है, उतना संग्रह से नहीं।

टिप्पणी—(१) शतहस्त—सौ हाथ वाला, अर्थात् उत्साह से अपने को सौ हाथ वाला समझते हुए। मनुष्य के लिए संबोधन है। (२) समाहर—अच्छे प्रकार से लाओ अर्थात् अच्छे ढंग से धन-संग्रह करो। सम् + आ + हृ (लाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (३) सहस्रहस्त—हजार हाथ वाला अर्थात् अपने आपको हजार हाथ वाला मानकर उन्मुक्त ढंग से दान दो। (४) सं किर—अच्छे प्रकार से बखेरो, डालो, दो। सम् + कृ (बखेरना, डालना, तुदादि, पर०) + लोट् म० १। (५) कार्यस्य—करने योग्य कामों के। कार्य—करणीय, करने योग्य। (६) स्फातिम्—समृद्धि को, सफलता को। स्फाय् (बढ़ाना, मोटा होना) + क्तिन् (ति)। (७) सम् आवह—लाओ, प्राप्त करो, संपन्न करो। सम् + आ + वह् (लाना; भ्वादि, पर०) + लोट् म० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७५. कृपण को कहीं सुख नहीं

न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं ददुः,
उताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति,
उतापृणन् मर्डितारं न विन्दते ।।

ऋग्० १०-११७-१

अन्वय—देवाः, वै क्षुधं न ददुः, उ वधम् इद् (ददुः)। उत आशितं मृत्यवः उप गच्छन्ति। उतो पृणतः रयिः न उप दस्यति, उत अपृणन् मर्डितारं न विन्दते।

शब्दार्थ—(देवाः) देवों ने, (वै) निश्चय से, (क्षुधं न ददुः) भूख नहीं दी है, (उ) अपि तु, (वधम् इद् ददुः) मृत्यु ही दी है। (उत आशितम्) खाए-पीए हुए मनुष्य को भी, भोजनादि से तृप्त को भी, (मृत्यवः) मृत्यु, (उप गच्छन्ति) आती हैं। (उतो) अपि तु, (पृणतः) दान देने वाले मनुष्य का, (रयिः) धन, (न) नहीं, (उप दस्यति) क्षीण होता है, नष्ट होता है। (उत) और, (अपृणन्) अदाता, कृपण, (मर्डितारम्) सुख देने वाले को, (न) नहीं, (विन्दते) पाता है।

हिन्दी अर्थ—देवों ने भूख नहीं दी है, अपि तु भूख के रूपमें मृत्यु ही दी है। भोजनादि से तृप्त मनुष्य को भी मृत्यु आती ही है। दान देने वाले की श्री नष्ट नहीं होती है। जो दान नहीं देता है, उसे कोई सुख देने वाला नहीं मिलता है।

Eng. Tr.—The gods have given hunger, to the human being, as a form of death. The death occurs even to a well-fed person. The wealth never decreases by charity. A miser never finds a campassionate.

अनुशीलन—इस मंत्र में दान का महत्त्व वर्णन किया गया है। संसार में जो दान देता है, वह अपने लिए सहायक संग्रह करता है। जो दान नहीं देता है, वह सभी प्रकार के सहायकों से वंचित हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन एक विचित्र गति-विधि है। हम अपने सुख के लिए धन चाहते हैं। सभी निर्धन और धनवान् धन चाहते हैं। धन- संग्रह से पूर्व उनकी कामना रहती है कि वे निर्धनों का उपकार कर सकेंगे, परन्तु धन आते ही वे अपने लक्ष्य से च्युत हो जाते हैं और धन का उपयोग केवल स्व-निष्ठ अर्थात् केवल अपने लिए करते हैं। वे जीवन की वास्तविकता को भूल जाते हैं कि उनका भी अन्त होना है, मृत्यु उनके द्वार पर खड़ी है। जैसे भूखा मरता है, वैसे ही समृद्ध। मृत्यु के लिए अमीर और गरीब दोनों बराबर हैं।

जो जीवन में कुछ उपकार कर लेता है, वह अपने हितचिन्तक तैयार कर लेता है। ये हितचिन्तक जीवन भर उसके सहयोगी, सहायक और कृतज्ञ रहते हैं।

मंत्र का कथन है कि अदाता का कोई सहायक नहीं होता है। दुःख के दिनों में वह अकेला ही रोता है। जो दाता है, उसके सभी साथी हैं, सभी सहयोगी हैं और विपत्ति में उसके काम आते हैं। मंत्र का यह भी कथन है कि जो दान देता है, उसका धन सदा बढ़ता है। इसलिए अपनी समृद्धि के लिए मनुष्य को सदा मुक्तहस्त से दान करना चाहिए।

टिप्पणी—(१) **वै**—निश्चय से। उ—और। (२) **वधम् इद्**—मृत्यु ही। इद्—ही। देवों ने भूख नहीं दी है, अपि तु मनुष्यों के लिए भूख के रूप में मृत्यु दी है। (३) **आशितम् उत**—भोजन से छके या तृप्त व्यक्ति को भी। आशित—आ + अश् (खाना) + क्त (त)। (४) **उप गच्छन्ति**—पास आती है। मृत्यु आती है। उप + गम् (जाना, भ्वादि) + लट् प्र० ३। (५) **उतो**—अपितु, और। उत + उ। उतो अव्यय है। (६) **पृणतः**—देने वाले का। पृ (देना, क्र्यादि, पर०) + शतृ (अत्) + ष० १। (७) **उप दस्यति**—क्षीण होता है, नष्ट होता है। दस् (क्षीण होना, दिवादि, पर०) + लट् प्र० १। (८) **अपृणन्**—न देने वाला, कंजूस। अ + पृ (देना, क्र्यादि) + शतृ प्र० १। (९) **मर्डितारम्**—सुख देने वाले को। मृड् (सुख देना, तुदादि) + तृच् (तृ) + द्वि० १। (१०) **विन्दते**—पाता है। विद् (पाना, तुदादि, आ०) + लट् प्र० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७६. अकेला खाने वाला महापापी

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ॥

ऋग्० १०-११७-६; तैत्ति० ब्रा० २-८-८-३;
निरुक्त ७-३

अन्वय—अप्रचेताः मोघम् अन्नं विन्दते । सत्यं ब्रवीमि, तस्य स वधः इत् । अर्यमणं न पुष्यति, नो सखायं (पुष्यति), केवलादी केवलाघः भवति ।

शब्दार्थ—(अप्रचेताः) मूर्ख व्यक्ति, (मोघम्) व्यर्थ ही, (अन्नम्) धन-धान्य या अन्न-समृद्धि, (विन्दते) पाता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ, (तस्य) उसके लिए, (स वधः इत्) वह अन्न-समृद्धि मृत्यु ही है, (अर्यमणम्) अर्यमा को, घनिष्ट मित्र को, (न) नहीं (पुष्यति) पुष्ट करता है, लाभ पहुँचाता है, (नो) और न, (सखायम्) मित्र को, (पुष्यति) पुष्ट करता है, लाभ पहुंचाता है। (केवलादी) अकेला खाने वाला, (केवलाघः) अकेला पापी, केवल पापरूप, (भवति) होता है।

हिन्दी अर्थ—मूर्ख व्यक्ति को व्यर्थ ही अन्न- समृद्धि प्राप्त होती है। मैं सच कहता हूँ कि उसके लिए वह अन्न समृद्धि मृत्यु ही है। वह न अपने घनिष्ट मित्रों की सहायता करता है और न सामान्य मित्रों की। अकेला खाने वाला अकेला पापी होता है।

Eng. Tr.—A fool acquires wealth in vain. I tell the truth that this sort of wealth is verily death to him. He does not support his friends and intimate ones. He, who eats alone, suffers alone.

अनुशीलन—वेदों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मंत्रों में यह मंत्र एक है। इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि ऐश्वर्य, वैभव या संपत्ति परमात्मा की देन है। इसे बांटकर खाओ। जो संपत्ति का अकेला उपभोग करता है, वह पापी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाज और परिवार के अभ्युदय के लिए यह शिक्षा अत्यन्त उपयोगी है। जो कमाता है, वह अकेला अपनी कमाई का उपभोग न करें, अपितु परिवार वालों और मित्रों बांट कर खावे। नीतिशास्त्रकारों ने तो यहाँ तक कहा है कि मीठे पदार्थ को भी अकेला न खावे। उसे बांटकर ही खावे 'एकः स्वादु न भुञ्जीत'।

जो व्यक्ति स्वार्थभावना से प्रेरित होकर सारी संपत्ति का स्वयं भोग करना चाहता है, वह मूर्ख और पापी है। वह जब विपत्ति में पड़ता है तो उसका कोई साथी नहीं होता। कोई भी व्यक्ति उसके सुख-दुःख में सहयोग के लिए तैयार नहीं होता।

गीता में इसी वात को बहुत सुन्दर शब्दों में कहा गया है कि—ईश्वरीय देन को जो अकेला खाता है और दान नहीं करता है, वह चोर है। इसी प्रकार जो अकेले खाता है, वह पाप को खाता है अर्थात् पापी होता है।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ गीता ३-१२

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ गीता ३-१३

चाणक्य ने दान के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं। उनका सारांश है कि—दान मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म है। सत्य और दान ये दोनों धर्म के मूल हैं। अपने सामर्थ्य या हैसियत के अनुसार मनुष्य को दान देना चाहिए। मूर्ख व्यक्ति बड़ी कठिनाई से कुछ दान करते हैं।

(क) दानं धर्मः। चा. सू. १५५। (ख) धर्ममूले सत्यदाने। चा. सू. २३७।
(ग) दानं निधानमनुगामि। चा. सू. २२४। (घ) दातव्यमपि बालिशः क्लेशेन परिदास्यति। चा. सू. २१२

टिप्पणी—(१) मोघम्—व्यर्थ ही, निरर्थक। (२) विन्दते—पाता है। विद् (पाना, तुदादि, आ०) लट् प्र० १। (३) अप्रचेताः—मूर्ख, अज्ञानी। अ + प्रचेतस् + प्र० १। (४) ब्रवीमि—कहता हूँ। ब्रू (कहना, अदादि, पर०) + लट् उ० १। (५) वधः इत्—मौत ही है। इत्—ही। (६) अर्यमणम्—अर्यमा को, घनिष्ठ मित्र को। अर्यमन् के अर्थ हैं—प्रातःकालीन सूर्य, अर्यमा देव या न्याय का देवता, घनिष्ठ मित्र, साथी। (७) पुष्यति—पुष्ट करता है सहायता देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुष् (पुष्ट करना, दिवादि, पर०) + लट् प्र० १। (८) केवलाघः—केवल–अकेला, अघः–पापी या पापरूप। उसका कोई सहायक नहीं होता है। (९) केवलादी—केवल–अकेला, आदिन्—खाने वाला। केवल + अद् (खाना, अदादि) + णिनि (इन्) + प्र० १।

७७. सभी ऋतुएं सुखद हों

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः
शरद् वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां
निवात इद् वः शरणे स्याम॥

अथर्व० ६-५५-२

अन्वय—ग्रीष्मः हेमन्तः शिशिरः वसन्तः शरद् वर्षाः न स्विते दधात। नः गोषु प्रजायाम् आ भजत। वः निवाते इद् शरणे स्याम।

शब्दार्थ—(ग्रीष्मः हेमन्तः शिशिरः वसन्तः शरद् वर्षाः) ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, शरद् और वर्षा ये ६ ऋतुएं, (नः) हमें, (स्विते) सुख या कल्याण में, (दधात) रखें। (नः) हमें, (गोषु) गायों में, (प्रजायाम्) प्रजा या सन्तान में, (आभजत) सहभागी बनाओ। (वः) तुम्हारे, (निवाते इद्) वायु के प्रकोप आदि से रहित ही, (शरणे) घर में, (स्याम) होवें, रहें।

हिन्दी अर्थ—ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, शरद् और वर्षा ये ६ ऋतुएं हमें सदा सुख में रखें, (हमारे लिए सुखद हों)। गायों और प्रजाओं में हमारा अंश हो। हम तुम्हारे निर्वात (शान्त) गृह में रहें।

Eng. Tr.—Let all the seasons be comfortable to us, viz. the summer, the winter, the cool, the spring, the autumn, the rains. May we get our share in the cows and in the subjects. Let us dwell in your comfortable house.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि हमारे मकान ऐसे हों, जो सभी ऋतुओं में सुखदायी हों। उनमें निर्विघ्न और निश्चिन्त रूप से रहा जा सके। परिवार और पशुओं के साथ आत्मीयता का भाव रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मकान जब भी बनाया जाए, इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उसमें वायु का अव्याहत प्रवेश हो। हवा आर-पार मुक्त भाव से जा सके। सूर्य का प्रकाश कमरों में पहुँचना स्वास्थ्य के लिए अत्युत्तम है। कमरों की ऊंचाई पर्याप्त हो, जिससे कभी भी घुटन न मालूम पड़े। भोजन, शयन, अध्ययन आदि के लिए पृथक् कमरे हों। जाड़ा, गर्मी और बरसात की बाधाएं कष्ट न दे सकें, ऐसी व्यवस्था चाहिए। परिवार में अधिक व्यक्ति हों तो तदनुकूल कमरों की व्यवस्था हो। पशुओं के लिए अलग गोशाला हो।

मंत्र का अभिप्राय है कि मकान सभी ऋतुओं में सुखदायी होना चाहिए। मकान ठीक ढंग से बना होगा तो परिवार के व्यक्ति उसमें सुख अनुभव करेंगे और परिवार का वातावरण सुखद हो सकेगा।

टिप्पणी—(१) ग्रीष्मो०—ग्रीष्म आदि ६ ऋतुएं। दो-दो मास की एक ऋतु होती है। सामान्यतया इनका क्रम और अंग्रेजी मास के हिसाब से मास ये हैं—(क) ग्रीष्म (मई–जून), (ख) वर्षा (जुलाई–अगस्त), (ग) शरद् (सित०–अक्टूबर), (घ) हेमन्त (नव०–दिस०), (ङ) शिशिर (जन०–फर०), (च) वसन्त (मार्च–अप्रैल)। इनके क्रम के लिए देखें—अथर्व० १२-१-३६। **(२) स्विते**—सुख या कल्याण में। सु + इ (जाना) + क्त (त)। यह दुरित का विलोम शब्द है। **(३) दधात**—रखें। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० ३। **(४) आभजत**—भाग दें, अंश दें। आ + भज् (बांटना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० ३। भजता में छान्दस दीर्घ है। **(५) निवाते**—निर्वात, आंधी आदि के विघ्न से रहित। इद्–ही। **(६) शरणे**—घर में। शरण का अर्थ घर है। **(७) स्याम**—होवें। अस् (होना, अदादि) + विधिलिङ् उ० ३।

७८. सभी वर्ष सुखद हों

इदावत्सराय परिवत्सराय
संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

अथर्व० ६-५५-३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—इदावत्सराय, परिवत्सराय, संवत्सराय, बृहत् नमः कृणुत। तेषां यज्ञियानां सुमतौ वयं स्याम। भद्रे सौमनसे अपि (स्याम)।

शब्दार्थ—(इदावत्सराय) तृतीय वर्ष के लिए, (परिवत्सराय) द्वितीय वर्ष के लिए, (संवत्सराय) प्रथम वर्ष के लिए, (बृहत्) बहुत, (नमः) नमस्कार, (कृणुत) करो। (तेषाम्) उन, (यज्ञियानाम्) यज्ञ के योग्य, पवित्र या पूज्य वर्षों के, (सुमतौ) सद्बुद्धि में, अनुग्रह में, (वयं स्याम) हम रहें। (भद्रे) शुभ, (सौमनसे अपि स्याम) सौमनस्य में भी रहें, अर्थात् उनके प्रेमपात्र या कृपापात्र रहें।

हिन्दी अर्थ—सुख के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्षों को बहुत प्रणाम करें। हम उन पूजनीयों की कृपादृष्टि में रहें और उनके शुभ सौमनस्य के पात्र हों।

Eng. Tr.—We pay much homage to the first, second and third years for our welfare. Let us be under the guidance of the holy years and enjoy their noble friendship.

अनुशीलन—इस मंत्र में काल-देवता को नमस्कार किया गया है। एक, दो, तीन ही नहीं, अपितु अनेक वर्ष सुखदायी हों। काल की कृपा बनी रहे, जिससे हमारा सौभाग्य अक्षत रहे।

काल क्या है? काल परमेश्वर का प्रतिनिधि है। यह संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। जिस प्रकार ऋत शाश्वत तत्त्व है, उसी प्रकार काल भी शाश्वत है। काल-चक्र संसार का संचालक है। दिन, मास, वर्ष ये काल के प्रतिनिधि हैं। जो काल को जानता है और काल को पकड़ने की क्षमता रखता है, उसके सारे काम सिद्ध हो जाते हैं। जो काल को नहीं पकड़ सकता और समय चूक जाता है, वह जीवनभर पछताता है।

चाणक्य ने इस विषय को बहुत सुन्दर ढंग से कहा है। जो व्यक्ति देश और काल को ठीक जानकर कार्य करता है, वह अपने कार्य में सफल होता है। जो काल को ठीक ढंग से समझता है, उसे कालवित् कहते हैं। कालवित् अपने काम को सरलता से सिद्ध कर लेता है, जो टालमटोल या विलम्ब करते हैं, उनका प्रयास निष्फल हो जाता है। इसलिए क्रियमाण कार्य में कभी भी विलम्ब न करे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क) देशे काले च कृतं फलवत् । चा० सू० ११०

(ख) देशकालवित् कार्यं साधयति । चा० सू० १०७

(ग) कालातिक्रमात् काल एव फलं पिबति । चा० सू० १०८

(घ) क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात् सर्वकृत्येषु । चा० सू० १०९

टिप्पणी—(१) इदावत्सराय०—पांच-पांच वर्षों के पंचक या वर्ग बनाए गए हैं। इनमें प्रथम, द्वितीय आदि वर्षों को ये नाम दिए गए हैं—१. संवत्सर, २. परिवत्सर, ३. इदावत्सर, ४. अनुवत्सर, ५. इद्वत्सर। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१-४-१०-१) में इनका वर्णन है। इनके क्रमशः देवता हैं—अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, वायु आदि। (२) कृणुत—करो। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लोट् म० ३। कृणुता में छान्दस दीर्घ है। (३) सुमतौ—सद्बुद्धि में, अनुग्रह में। (४) यज्ञियानाम्—यज्ञिय का अर्थ है—यज्ञ के योग्य, पवित्र, पूज्य। (५) सौमनसे—सौमनस्य में, मित्रता में, कृपादृष्टि में। (६) स्याम—होवें। अस् (होना, अदादि) + विधिलिङ् उ० ३।

७९. जीवन संयमी हो

न वा उ ते तनूं तन्वा सं पपृच्यां
पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे
भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥

अथर्व० १८-१-१४; ऋग्० १०-१०-१२

अन्वय—ते तन्वा तनूं न वै उ सं पपृच्याम्। पापम् आहुः यः स्वसारं निगच्छात्। एतत् मे मनसः हृदः असंयत्, यत् भ्राता स्वसुः शयने शयीय।

शब्दार्थ—(ते) तेरे, (तन्वा) शरीर से, (तनूम्) अपने शरीर को, (न वै उ) वस्तुतः नहीं, (सं पपृच्याम्) छूऊँगा, मिलाऊँगा। (पापम्) इसको पाप, (आहुः) कहते हैं, (यः) जो व्यक्ति, (स्वसारम्) बहिन के पास, (निगच्छात्) दुर्भावना से जावे। (एतत्) यह, (मे) मेरे, (मनसः) मन के, (हृदः) हृदय के, (असंयत्)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिकूल हैं, (यत्) कि, (भ्राता) भाई होकर, (स्वसुः) बहिन के, (शयने) बिस्तर पर, (शयीय) सोऊँ।

हिन्दी अर्थ—मैं तेरे शरीर से अपने शरीर को सर्वथा नहीं मिलाऊँगा। विद्वानों ने इसको पाप कहा है कि कोई अपनी बहिन के पास दुर्भाव से जावे। यह बात मेरे विचार और हृदय के प्रतिकूल है कि मैं भाई होकर बहिन के बिस्तर पर सोऊँ।

Eng. Tr.—I dare not touch your body. The wise-men have described him a sinner, that approaches his sister with ill-intentions. It is against my thought that I, being a brother, should sleep with the sister on her bed.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि मनुष्य का जीवन संयमी होना चाहिए। वह अपने मन को सदा वश में रखे। अपना हो या पराया, किसी की ओर कुदृष्टि से न देखे और न अपने मन में कोई बुरा भाव आने दे।

मंत्र का यह भी कथन है कि संसार में सबसे पवित्र संबन्धों में भाई-बहिन का संबन्ध है। यह संबन्ध जीनव भर पवित्रता के साथ निभाया जाता है। न भाई बहिन की ओर कुदृष्टि से देख सकता है और न बहिन भाई की ओर। इसलिए परिवार में प्रत्येक भाई और बहिन का कर्तव्य है कि वह एक-दूसरे को पवित्र दृष्टि से ही देखें और दोनों एक-दूसरे के जीवन को सुखी बनाने में सहायक हों।

टिप्पणी—(१) **न वै उ**—न–नहीं, वै–अवश्य, निश्चय से, उ–और। अवश्य नहीं, सर्वथा नहीं। (२)**तनूम्**—अपने शरीर को। तनू + द्वि० १। (३) **तन्वा**—शरीर से। तनू + तृ० १। (४) **सं पपृच्यास्**—मिलाऊँ, छूऊँ। सम् + पृच् (मिलाना, जुहोत्यादि, पर०) + विधिलिङ् उ० १। (५) **आहुः**—कहा है, कहते हैं। ब्रू (कहना, अदादि) + लट् प्र० ३। ब्रू को आह् आदेश है। (६) **निगच्छात्**—दुर्भाव से पास जावे। नि + गम् (गच्छ्, जाना, भ्वादि) + लेट् प्र० १। (७) **असंयत्**—प्रतिकूल, अननुकूल। अ + सम् + इ (जाना) + शतृ प्र० १। (८) **स्वसुः**—बहिन के। स्वसृ (बहिन) + ष० १। (९) **शयीय**—सोऊँ। शी (सोना, अदादि, आ०) + विधिलिङ् उ० १।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

८०. हमारे हृदय पवित्र हों

विश्वदानीं सुमनसः स्याम
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां
देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥

ऋग्० ६-५२-५

अन्वय—विश्वदानीं सुमनसः स्याम, नु उच्चरन्तं सूर्यं पश्येम । वसूनां वसुपतिः, देवान् ओहानः, अवसा आगमिष्ठः, तथा करत् ।

शब्दार्थ—(विश्वदानीम्) सदा, (सुमनसः) सुन्दर मन वाले, पवित्र हृदय या प्रसन्न चित्त, (स्याम) होवें । (नु) निश्चय से, (उच्चरन्तम्) उदय होते हुए, (सूर्यम्) सूर्य को, (पश्येम) देखें । (वसूनाम्) धनों का, (वसुपतिः) धनपति अग्नि, (देवान्) देवों को, (ओहानः) यहां लाता हुआ, लाने वाला, (अवसा) रक्षा या संरक्षण के साथ, (आगमिष्ठः) प्रेमपूर्वक आने वाला, (तथा) वैसा, (करत्) करे ।

हिन्दी अर्थ—हम सदा पवित्र हृदय (प्रसन्नचित्त) हों । सदा उदय होते हुए सूर्य को देखें । धन का महास्वामी, देवों को लाने वाला और प्रेमपूर्वक आने वाला अग्नि, ऐसा ही करे ।

Eng. Tr.—Let us be ever-cheerful. May we see the rising sun for-ever. May the fire-god, the lord of the wealth, fetcher of the gods and a joyous visitor to us, do so.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से दो प्रार्थनाएं की गई हैं—१. प्रसन्न-चित्त हों, २. दीर्घायु हों ।

मंत्र का कथन है कि हम सदा प्रसन्नचित्त रहें । सुमनस् शब्द के अर्थ हैं—सुन्दर मन वाले, प्रसन्नचित्त, पवित्र हृदय वाले और उदार चित्त । मन की सर्वोत्तम स्थिति है हार्दिक प्रसन्नता । मन प्रसन्न है तो सभी इन्द्रियों में शक्ति, स्फूर्ति और ऊर्जा है । मन की अप्रसन्नता निराशा की सूचक है । मन की प्रसन्नता के लिए आवश्यक है कि हृदय शुद्ध हो, मन पवित्र विचारों से युक्त हो और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसमें सद्भावना का निवास हो। मंत्र में विश्वदानीम् शब्द से बल दिया गया है कि हर समय प्रसन्नचित्त रहें।

गीता में निम्नलिखित दो श्लोकों में इस विषय को बहुत स्पष्ट किया गया है। मनुष्य प्रसन्नचित्त कब रहता है ? इसका उत्तर दिया है कि जब मनुष्य का मन राग-द्वेष से रहित होता है और इन्द्रियों पर संयम होता है, तब मनुष्य प्रसन्नचित्त होता है। इससे क्या लाभ हैं ? प्रसन्नचित्त होने के लाभ हैं—सारे दुःखों का नाश और बुद्धि की स्थिरता। प्रसन्नचित्त व्यक्ति के सारे क्लेश नष्ट हो जाते हैं और मन पवित्र होने से उसकी बुद्धि भी शान्त और स्थिर रहती है।

> रागद्वेषवियुक्तैस्तु, विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
> आत्मवश्यैर्विधेयात्मा, प्रसादमधिगच्छति ।। गीता २-६४
> प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते।
> प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।। गीता २-६५

मंत्र में दूसरी प्रार्थना की गई है कि हम दीर्घायु हों, हमारी सभी इन्द्रियां हृष्ट-पुष्ट हों, जिससे हम जीवन भर सूर्योदय देख सकें। स्वस्थ व्यक्ति के लिए ही संसार में सारे सुख हैं। सुन्दर स्वास्थ्य और प्रसन्नचित्तता ही जीवन को सुखमय बनाते हैं।

टिप्पणी—(१) **विश्वदानीम्**—सदा। विश्व + दानीम्। अव्यय है। (२) **सुमनसः**—सुन्दर या पवित्र मन वाले, प्रसन्नचित्त। सुमनस् + प्र० ३। (३) **स्याम**—होवें। अस् (होना, अदादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३। (४) **पश्येम**—देखें। दृश् (पश्य्, देखना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३। (५) **उच्चरन्तम्**—उदय होते हुए, निकलते हुए। उत् + चर् (जाना, भ्वादि, पर०) + शतृ + द्वि० १। (६) **करत्**—करे। कृ (करना, अदादि, पर०) + लेट् प्र० १। (७) **ओहानः**—लाने वाला। आ + वह् (लाना, भ्वादि) + लिट्—कानच् (आन) + प्र० १। आ + ऊहानः = ओहानः। (८) **अवसा**—रक्षा के साथ, अनुग्रह के साथ। अवस् + तृ० १। (९) **आगमिष्ठः**—प्रेमपूर्वक आने वाला, आने वालों में श्रेष्ठ। आगम (आना) + इष्ठन् (इष्ठ)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

८१. शुभ कर्मों से दीर्घ आयु

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

यजु० २५-२१; ऋग्० १-८९-८;
साम० १८७४; तैत्ति० आर० १-१-१

अन्वय—यजत्राः देवाः ,कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम, अक्षभिः भद्रं पश्येम, स्थिरैः अङ्गैः तुष्टुवांसः, तनूभिः देवहितं यत् आयुः (तत्) व्यशेमहि ।

शब्दार्थ—(यजत्राः) हे पूजनीय, (देवाः) देवो, हम, (कर्णेभिः) दोनों कानों से, (भद्रम्) शुभ, मंगलमय, (शृणुयाम) सुनें । (अक्षभिः) आँखों से, (भद्रम्) शुभ वस्तु, (पश्येम) देखें । (स्थिरैः) दृढ, पुष्ट, (अङ्गैः) अंगों से, (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए, स्तुतिकर्ता, (तनूभिः) अपने शरीरों से, (देवहितम्) देवों द्वारा निर्धारित या देवों के लिए हितकर, (यत् आयुः) जो आयु है, उसे, (व्यशेमहि) पावें ।

हिन्दी अर्थ—हे पूजनीय देवों ! हम दोनों कानों से शुभ वचन सुनें, दोनों आँखों से शुभ वस्तु देखें, हृष्ट-पुष्ट अंगों से स्तुति करते हुए, शरीर के द्वारा देवों के लिए हितकर दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

Eng. Tr.—O holy Gods!! may we ever hear with our ears auspicious words. May we ever see with our eyes pleasing things. May we attain, simultaneously, good health and prosperous long life.

अनुशीलन—प्रत्येक मनुष्य की कामना है कि उसका जीवन पूर्ण सुखी हो, वह पूर्णतया निरोग हो और शतायु हो । परन्तु इस इच्छा की पूर्ति के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य है । ये नियम सरल और कठोर दोनों हैं । यदि आपके विचार सुलझे हुए हैं, मन वश में है, इन्द्रियों पर अधिकार है और सात्त्विक भाव जागृत हैं, तो अपको ये नियम सरल लगेंगे । यदि आपकी चित्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृत्तियाँ विशृंखल हैं तो ये नियम कठोर लगेंगे। परन्तु इस कठोर अनुशासन का पालन किए बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस मंत्र में इन्हीं नियमों का उल्लेख है—(१) कान से अच्छी बातें सुनें। जब अच्छी बातें सुनेंगे, मन प्रसन्न रहेगा, राग-द्वेष का हृदय में स्थान नहीं होगा और जीवन में पवित्रता रहेगी। (२) आँख से अच्छी चीजें देखें। जब हमारी दृष्टि में कुवासना, दूषित मनोवृत्ति नहीं होगी तो हमें सब मित्र, सहयोगी और प्रिय दिखाई देंगे। इससे घृणा, कटुता, मात्सर्य और मनोमालिन्य का अवसर नहीं मिलेगा। इन दोनों नियमों के पालन से संयम की पुष्टि होगी, शरीर स्वस्थ रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा। जब शरीर स्वस्थ होगा और मन प्रसन्न रहेगा तो दीर्घ आयु स्वयं प्राप्त होगी।

टिप्पणी—(१)**कर्णेभिः**—कानों से। कर्ण + तृ० ३, द्विवचन के अर्थ में बहुवचन है। (२) **शृणुयाम**—सुनें। श्रु + विधिलिङ् उ० ३। (३) **पश्येम**—देखें। दृश् + विधिलिङ् उ० ३। (४) **अक्षभिः**—आँखों से। अक्षिभिः के स्थान पर अक्षभिः है। द्विवचन के स्थान पर बहुवचन है। (५) **यजत्राः**—यजनीय, पूजनीय। (६) **तुष्टुवांसः**—जिन्होंने स्तुति की है। स्तुतिकर्ता। स्तु + लिट्-क्वसु (वस्) = तुष्टुवस् + प्रथमा बहु०। (७) **व्यशेमहि**—पावें। वि + अश् (पाना) + विधिलिङ् उ० ३। (८) **देवहितम्**—देवों के लिए हितकर या देवों के द्वारा निर्धारित। हित—धा + क्त (त)

८२. तप से ज्ञान और आयु की वृद्धि

अग्ने तपस्तप्यामहे, उप तप्यामहे तपः।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयम्, आयुष्मन्तः सुमेधसः॥

अथर्व० ७-६१-२

अन्वय—हे अग्ने, तपः तप्यामहे, तपः उप तप्यामहे। वयं श्रुतानि शृण्वन्तः, आयुष्मन्तः सुमेधसः (भूयास्म)।

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे अग्नि, हे परमात्मन्, (तपः तप्यामहे) हम मानसिक एकाग्रतारूपी तप करते हैं। (तपः उप तप्यामहे) हम शरीरशुद्धि आदि तप करते हैं। (वयम्) हम, (श्रुतानि) विधिपूर्वक पढ़े गए वेद शास्त्रादि को, (शृण्वन्तः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनते हुए, (आयुष्मन्तः) दीर्घायु, (सुमेघसः) श्रेष्ठ मेधावी, बुद्धिमान्, (भूयास्म) होवें।

हिन्दी अर्थ— हे अग्निरूपःपरमात्मन् ! हम मानसिक तप करते हैं। हम शारीरिक तप करते हैं। हम वेदादि को सुनते (पढ़ते) हुए दीर्घायु और मेधावी हों।

Eng. Tr.—O Fire-god ! we perform mental and physical penance. May we obtain long life and be intelligent by learning the Vedas.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो प्रकार के तपों का उल्लेख है—तप और उपतप। इनके अभ्यास से बुद्धि शुद्ध होती है और व्यक्ति ज्ञानी एवं दीर्घायु होता है।

तप और उपतप को संक्षेप में मानस तप और शारीरिक तप कह सकते हैं। मन को शुद्ध और निर्मल करना मानस तप है तथा शरीर को आसन और प्राणा-याम के द्वारा शुद्ध करना शारीरिक तप है। गीता में मानस तप का लक्षण किया गया है कि मन की प्रसन्नता, सौम्यता, जितेन्द्रियता, मनोनिग्रह, भावशुद्धि मानस तप है। शारीरिक शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप हैं।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ।। गीता १७-१६
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। गीता १७-१४

योगदर्शन के शब्दों में मुख्य तप यम हैं और गौण तप नियम हैं। यम पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्यपालन, अपरिग्रह (विषयों से विरक्ति)। नियम भी पांच हैं—शौच (स्वच्छता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर-चिन्तन)।।

अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। योग० २-३०
शौचसन्तोष-तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। योग० २-३२

टिप्पणी—(१) तपः—मानसिक और शारीरिक तप। चित्त की एकाग्रता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानस तप है और शरीर की शुद्धि शारीरिक तप है। मंत्र में दोनों का उल्लेख है। (२) तप्यामहे—तप करते हैं। तप् (तपाना, भ्वादि) + कर्मकर्ता में यक् (य) + लट् उ० ३। यह मानसिक तप के लिए है। (३) उप तप्यामहे—यह शारीरिक तप के लिए है। (४) श्रुतानि—विधिपूर्वक पढ़े गए वेद आदि को श्रुत कहते हैं। वेद मौखिक एवं श्रवण-परंपरा से पढ़े जाते थे, अतः इन्हें श्रुत या श्रुति कहते हैं। (५) शृण्वन्तः—सुनते हुए। श्रु (शृ, सुनना, स्वादि) + शतृ + प्र० ३। (६) आयुष्मन्तः—दीर्घ आयु वाले। आयुष् + मत् + प्र० ३। (७) सुमेधसः—सुन्दर बुद्धि वाले, मेधावी, सुन्दर धारणाशक्ति वाले। सु + मेधस् (मेधा) + प्र० ३। मेधा को मेधस् हो जाता है।

८३. सद्गृहस्थ हों, दीर्घायु हों

अग्ने गृहपते सुगृहपति—
स्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासम्,
सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः।
अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु,
शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥

यजु० २-२७

अन्वय—हे गृहपते अग्ने, त्वया गृहपतिना अहं सुगृहपतिः भूयासम्, हे अग्ने, त्वं मया गृहपतिना सुगृहपतिः भूयाः। नौ गार्हपत्यानि अस्थूरि सन्तु। शतं हिमाः सूर्यस्य आवृतम् अनु आवर्ते।

शब्दार्थ—(हे गृहपते अग्ने) हे गृहपति अग्नि, (त्वया) तुझ, (गृहपतिना) गृहपति से, (अहम्) मैं, (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ गृहपति, (भूयासम्) होऊं। (हे अग्ने) हे अग्नि, (त्वम्) तू, (मया) मुझ, (गृहपतिना) गृहपति से, (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ गृहपति, (भूयाः) होओ। (नौ) हम दोनों का, (गार्हपत्यानि) गृहपतित्व, (अस्थूरि) अनेकाङ्गी, समन्वित, परस्पर संबद्ध, (सन्तु) हो। (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक, (सूर्यस्य) सूर्य के, (आवृतम् अनु) आवर्तन या परिवर्तन के अनुकूल, (आवर्ते) नियमित रूप से घूमूं या कार्य करूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—हे गृहपति अग्नि ! तुझ गृहपति की सहायता से मैं सुयोग्य गृहपति होऊं । हे अग्नि ! तू भी मुझ गृहपति से सुयोग्य गृहपति हो । हम दोनों का गृहस्वामित्व परस्पर संबद्ध हो । मैं १०० वर्ष तक सूर्य की परिक्रमा के तुल्य नियमित क्रम वाला होऊं ।

Eng. Tr. O—Fire-God, Lord of the houses ! may I be lord of the house by your grace. O Fire-God ! may you feel better by my presence. Let the house-ownership of both of us be reciprocal. May I regulate my life like the sun for a hundred year.

अनुशीलन—इस मंत्र में दम्पती को बहुत महत्वपूर्ण शिक्षा दी गई है कि—वे दोनों सदा मिलकर कार्य करें, परस्पर सौहार्दयुक्त रहें ।

पारिवारिक जीवन के लिए—'अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु' स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य शिक्षा है । स्थूरि का अर्थ है—एकांगी, एकव्यक्तिनिष्ठ । अस्थूरि का अर्थ है—समन्वित, संवद्ध, सम्मिलित । पति-पत्नी गृहस्थरूपी रथ के दो पहिए हैं । जवतक दोनों चक्र ठीक चलेंगे, तवतक रथ सुरक्षित है । यदि उनमें से एक चक्र कर्तव्यच्युत है या निष्क्रिय है तो रथ का चलना संभव नहीं होगा । पति-पत्नी दोनों मिलकर गृहस्थरूपी रथ को चलाएंगे तो वह ठीक ढङ्ग से चलेगा, अन्यथा वह विशृंखल होकर नष्ट हो जाएगा । सामंजस्य, सहानुभूति, समवेदना और समन्वय समुन्नति की दिशा है । जिस परिवार में ये गुण रहते हैं, वहाँ सफलता और श्रीवृद्धि अवश्यंभावी है ।

मंत्र में दूसरा भाव व्यक्त किया गया है कि यज्ञ हमारी उन्नति करे और हम यज्ञ को प्रतिष्ठा करें । इसको ही गीता में कहा गया है कि मनुष्य यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करें और देव सुख-समृद्धि देकर मनुष्यों को प्रसन्न रखें । इस प्रकार देव और मानव दोनों की श्रीवृद्धि होती रहे ।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ गीता ३-११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंत्र में इस प्रकार के सुखी जीवन और सौ वर्ष की आयु की कामना की गई है।

टिप्पणी—(१) गृहपते अग्ने—यह गार्हपत्य अग्नि के लिए है। पारिवारिक अग्नि को गार्हपत्य अग्नि कहते हैं। (२) सुगृहपतिः—योग्य या उत्कृष्ट गृहपति। (३) भूयासम्—होऊं। भू (होना, भ्वादि) + आशीर्लिङ् उ० १। (४) भूयाः—हो। भू (होना, भ्वादि) + आशीर्लिङ् म० १। (५) अस्थूरि—अ–नहीं, स्थूरि–एकांगी। समन्वय-युक्त, परस्पर आदान-प्रदान से संबद्ध। (६) नौ—हम दोनों का। अस्मद् (मैं) + ष० २। आवयोः के अर्थ में नौ है। (७) गार्हपत्यानि—गृहस्वामित्व, गार्हस्थ्य-धर्म। गृहपति + ण्य (य)। (८) हिमाः—वर्ष। (वर्ष) + प्र० ३। (९) आवृतम् अनु—सूर्य की परिक्रमा के अनुरूप। आ + वृत् + क्विप् (०) + द्वि० १। आवृत् का अर्थ है—चक्कर काटना, घूमना, परिक्रमा करना। (१०) आवर्ते—घूमता रहूं, गतिशील रहूं। आ + वृत् (होना, भ्वादि, आ०) + लट् उ० १।

८४. सदा निर्भय रहें

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च, न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥३॥
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च, न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥४॥

अथर्व २-१५-३,४

अन्वय—यथा सूर्यः च, चन्द्रः च, न बिभीतः, न रिष्यतः। एव मे प्राण, मा बिभेः।

यथा ब्रह्म च, क्षत्रं च, न विभीतः, न रिष्यतः, एव मे प्राण, मा बिभेः।

शब्दार्थ—(यथा सूर्यः च, चन्द्रः च) जैसे सूर्य और चन्द्रमा, (न बिभीतः) नहीं डरते हैं, (न रिष्यतः) न नष्ट होते हैं। (एव) इसी प्रकार, (मे प्राण) हे मेरे प्राण, (मा) मत, (विभेः) डर॥ (यथा ब्रह्म च, क्षत्रं च) जैसे ब्रह्मशक्ति और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षत्रशक्ति, (न बिभीतः) न डरते हैं, (न रिष्यतः) न नष्ट होते हैं। (एव मे प्राण) इसी प्रकार हे मेरे प्राण, (मा बिभेः) मत डर ।

हिन्दी अर्थ—(क) जैसे सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न नष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तुम भी मत डरो। (ख) जैसे ब्रह्मशक्ति और क्षत्रशक्ति न डरती हैं, न नष्ट होती हैं, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तुम भी मत डरो।

Eng. Tr.—(A) Just as the sun and the moon neither fear, nor suffer, similarly O my Soul ! don't be frightened.

(B) As the forces called Brahman (Intelligence) and Kshatra (Protection) neither fear, nor suffer, similarly O my Soul ! don't be frightened.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि हम जीवन में निर्भय रहना सीखें। कभी भी और किसी परिस्थिति में भी भयभीत न हों। इसके लिए उदाहरण दिया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा कभी किसी से नहीं डरते हैं, अतः वे नष्ट नहीं होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मशक्ति और क्षत्रशक्ति कभी नहीं डरती हैं, अतः वे भी नष्ट नहीं होती हैं।

भय क्या है ? मनोबल का क्षय ही भय है। जब मन में निर्बलता आती है, तभी मनुष्य भयभीत होता है। मनोबल कब और क्यों गिरता है ? मनोबल के गिरने का कारण है—पाप या दुर्विचार। जब मनुष्य के हृदय में पाप के विचार होंगे, तभी वह भयभीत होगा। निष्पाप, निश्छल और निर्दोष व्यक्ति के पास भय नहीं फटकता। अतएव सूर्य और चन्द्रमा का उदाहरण देकर मंत्र में बताया गया है कि सूर्य और चन्द्र सदा निर्दोष हैं, अतः उन्हें भय नहीं है। निर्दोषता निर्भयता की कुञ्जी है। जीवन में निर्भय होने के लिए पापों एवं दुर्गुणों को छोड़ना होगा। तभी संसार मित्रवत् दिखाई देगा। इसी भाव को अथर्ववेद में कहा गया है कि मित्र और शत्रु, परिचित और अपरिचित सभी से दिन-रात निर्भय रहें। सारी दिशाएं, सारा संसार हमारे लिए मित्रवत् हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभयं मित्रादभयममित्राद्, अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः, सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।

अथर्व० १९-१५-६

टिप्पणी—(१) बिभीतः—डरते हैं। भी (डरना, जुहोत्यादि, पर०) + लट् प्र० २। (२) रिष्यतः—नष्ट होते हैं, क्षतिग्रस्त होते हैं। रिष् (क्षतिग्रस्त होना, दिवादि, पर०) + लट् प्र० २। (३) एव—एवम्, वैसे ही। एव का अर्थ एवम् है। एव को एवा, छान्दस दीर्घ। (४) मा बिभेः—मत डर। भी (डरना, जुहोत्यादि, पर०) + लङ् म० १। अडागम नहीं, Inj. है।

८५. बुराइयों को छोड़ें

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व,
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथाम्, ऊर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ।।

यजु० ६-३५

अन्वय—मा भेः, मा संविक्थाः, उर्जं धत्स्व। हे धिषणे, वीड्वी सती वीडयेथाम्, ऊर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतः, न सोमः।

शब्दार्थ—(मा) मत, (भेः) भयभीत हो। (मा) मत, (संविक्थाः) कांपो, डरो। (ऊर्जम्) शक्ति, साहस या पुरुषार्थ को, (धत्स्व) धारण करो। (हे धिषणे) हे द्यावापृथिवी, (वीड्वी सती) तुम दोनों दृढ़ रहते हुए, (वीडयेथाम्) हमें दृढ़ करो। (ऊर्जम्) शक्ति, (दधाथाम्) रखो, दो। (पाप्मा) पाप, दुर्गुण, पापबुद्धि, (हतः) नष्ट हो, (न सोमः) सोम्यगुण या सद्बुद्धि नष्ट न हो।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्य ! तुम न डरो और न कांपो। अपने अन्दर शक्ति (साहस) धारण करो। हे द्युलोक और पृथिवी ! तुम दोनों दृढ़ हो, तुम हमें दृढ़ता प्रदान करो। हमें शक्ति दो। हमारे पाप नष्ट हों, सद्गुण नहीं।

Eng. Tr.—O Man ! neither fear, nor tremble. Be bold. Heaven and earth ! both of you are strong, so make me

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

strong and bestow power on us. Let our sins be washed away not the virtues.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो उत्तम शिक्षाएं दी गई हैं—१. कभी डरें नहीं, साहसी हों। २. पापों को नष्ट करें, शुभ विचारों को नहीं।

मनुष्य में भय और कंपन क्यों हैं? मनुष्य पाप करता है, दूसरों का अहित सोचता है, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों में फंसता है, अपनी सात्त्विकता को नष्ट करता है, अतः उसका हृदय निर्बल हो गया है। उसमें मनोबल न्यून हो गया है, अतः वह कांपता है। इसके लिए शिक्षा दी गई है कि अपने हृदय में साहस रखो, शक्ति और उत्साह रखो तथा विपत्ति के प्रतीकार के लिए संनद्ध हो जाओ। जब मनुष्य में साहस आ जाता है तो भय दूर हो जाता है। इसलिए नीति-वचन है कि भय से तभी तक डरना चाहिए, जबतक वह दूर है। जब भय समीप आ जाए तो अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य करे और उसका प्रतीकार करे। साहस से वह भय दूर हो जाएगा।

तावद् भयस्य भेतव्यं, यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य, नरः कुर्याद् यथोचितम्॥ हितोपदेश मित्र० ५६

मंत्र की दूसरी शिक्षा है कि पाप नष्ट हों, सद्गुण नहीं। पाप का भय से सीधा संबन्ध है और पुण्य का निर्भयता से। मनुष्य जब अपने पापों को नष्ट कर देगा, तभी निर्भय हो जाएगा। जीवन में पाप और दुर्गुण क्षीण हों तथा सद्गुणों का विकास हो, यही निर्भयता का सरल सोपान है।

टिप्पणी—(१) मा भेः—मत डरो। भी (डरना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् म० १। अडागम नहीं, Root Aorist Inj. है। (२) मा संविक्थाः—मत कांपो, मत साहस छोड़ो। सम् + विज् (कांपना, तुदादि, आ०) + लुङ् म० १। अडागम नहीं, Root Aorist Inj. है। (३) ऊर्जम्—शक्ति, बल, साहस। (४) धत्स्व—रखो, धारण करो। धा (रखना, जुहोत्यादि, आ०) + लोट् म० १। (५) धिषणे—संसार को धारण करने के कारण द्युलोक और पृथिवी को धिषणा कहते हैं। सं० २। (६) वीड्वी सती—वीड्वी–दृढ, सती–होते हुए। स्वयं दृढ़ रहते हुए। वीडु का अर्थ दृढ़ है। स्त्रीलिङ्ग द्विवचन है। वीड्व्यौ सत्यौ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(७) वीडयेथाम्—हमें दृढ़ करो। वीडु + नामधातु णिच् + लोट् म० २। (८) दधाथाम्—रखो, दो। धा (रखना, जुहोत्यादि, आ०) + लोट् म० २। (९) पाप्मा—पाप, दोष, दुर्गुण, दुर्बुद्धि। पाप्मन् + प्र० १। (१०) हतः—नष्ट हो। हन् (नष्ट होना) + क्त। (११) सोमः—सोम्य गुण, सद्‌गुण सद्बुद्धि, सद्‌भावना।

८६. देशभक्त और यशस्वी हों

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च,
त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥

अथर्व० १२-५-८

अन्वय—ब्रह्म च, क्षत्रं च, राष्ट्रं च, विशः च, त्विषिः च, यशः च, वर्चः च, द्रविणं च (सन्तु)।

शब्दार्थ—(ब्रह्म च) ब्रह्मशक्ति, ज्ञान, (क्षत्रं च) क्षत्रशक्ति, शौर्य, (राष्ट्रं च) राष्ट्र या राष्ट्रीय उन्नति, (विशः च) प्रजा या वैश्यवर्ग, (त्विषिः च) तेजस्विता, दीप्ति, (यशः च) यश, कीर्ति, (वर्चः च) वर्चस्विता, (द्रविणं च) धन, ऐश्वर्य, (सन्तु) हमें प्राप्त हों।

हिन्दी अर्थ—हमें ब्रह्मशक्ति (ज्ञान), क्षत्रशक्ति (शौर्य), राष्ट्रीय उन्नति, प्रजा (वैश्यवर्ग), कान्ति, यश, तेज और धन प्राप्त हों।

Eng. Tr.—Let us have intelligence, valour, national progress, the peasants, brilliance, fame, vigour and wealth.

अनुशीलन—इस मंत्र में परिवार और समाज की उन्नति के लिए ८ वस्तुएं मांगी गई हैं ये हैं—ब्रह्मशक्ति, क्षत्रशक्ति, राष्ट्र, विश्, त्विषि, यश, वर्चस् और द्रविण।

इनमें कुछ साधन हैं और कुछ साध्य। राष्ट्र और प्रजा की उन्नति साध्य हैं। जहाँ विश् अर्थात् प्रजावर्ग सन्तुष्ट है, वहाँ राष्ट्र भी प्रसन्न है। राष्ट्र के साथ प्रजा का अभिन्न संबन्ध है। प्रजा अंग है और राष्ट्र अंगी। प्रजा की समृद्धि से राष्ट्र की समृद्धि है। प्रजा और राष्ट्र की उन्नति के साधन हैं—ब्रह्मशक्ति और क्षत्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्ति । जहाँ ज्ञान और शौर्य प्रबल होंगे, वहाँ सभी प्रकार की उन्नति होगी। इसलिए मंत्र के प्रारम्भ में ब्रह्म और क्षत्र को रखा गया है। ब्रह्म और क्षत्र उन्नत होकर राष्ट्र और प्रजा को उन्नत करें।

जब ब्रह्म और क्षत्र शक्ति उन्नत होगी तो प्रजा में धन की समृद्धि होगी। धन-धान्य और सभी प्रकार की समृद्धि का आधार ब्रह्म और क्षत्र शक्ति का समन्वय है। जब प्रजा में समृद्धि होगी, तब राष्ट्र का भी यश होगा। प्रजा के सभी व्यक्ति यशस्वी होंगे। यशस्विता का फल होगा कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति में वर्चस् और त्विषि होंगे। त्विषि दीप्ति या कान्ति है। इससे स्फूर्ति आती है। ओजस् और वर्चस् को इस कान्ति का कारण बताया है।

त्विषिं दधान ओजसा। ऋग्० ९-३९-३
ब्रह्मवर्चसमेवास्मिन् त्विषिं दधाति। तैत्ति० ब्रा० १-७-८

टिप्पणी—(१) **ब्रह्म**—ब्रह्मशक्ति, ज्ञान, विद्या, आस्तिकता। ब्रह्मन् + प्र० १। (२) **क्षत्रम्**—क्षत्रशक्ति, शौर्य, वीरता। (३) **राष्ट्रम्**—राष्ट्र या राष्ट्रीय विकास। (४) **विशः**—प्रजा, वैश्य। विश् के दोनों अर्थ हैं—प्रजा और वैश्य। विश् + प्र० ३। (५) **त्विषिः**—कान्ति, प्रकाश, तेजस्विता।

८७. इच्छाशक्ति संसार में सर्वश्रेष्ठ

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा
आपुः पितरो न मर्त्याः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्
तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥

अथर्व० ९-२-१९

अन्वय—कामः प्रथमः जज्ञे। देवाः एनं न आपुः, पितरः मर्त्याः न (आपुः)। ततः त्वं ज्यायान् असि। विश्वहा महान् (असि)। हे काम, तस्मै ते इत् नमः कृणोमि।

शब्दार्थ—(कामः) संकल्प, कामना, इच्छाशक्ति, (प्रथमः) सर्वप्रथम, (जज्ञे) उत्पन्न हुआ। (देवाः) देवगण, (एनम्) इसको, (न) नहीं, (आपुः) पा सके।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पितरः) पितृगण, विद्वान्, पूर्वज, (मर्त्याः) मनुष्य, (न आपुः) नहीं पा सके। (ततः) अतएव, (त्वम्) तू, (ज्यायान् असि) बढ़कर है, सबसे उत्कृष्ट है। (विश्वहा) सदा, (महान्) महान् है। (हे काम) हे संकल्प या इच्छाशक्ति, (तस्मै) उस, (ते इत्) तुझे ही, (नमः) नमस्कार, (कृणोमि) करता हूं।

हिन्दी अर्थ—काम! (कामना, संकल्प, इच्छाशक्ति) सबसे पहले उत्पन्न हुआ। देवता, पितृगण और मनुष्य कोई भी इसको नहीं पा सके। अतएव यह काम-देव सबसे श्रेष्ठ हैं और सदा महान् है। ऐसे इस कामदेव को ही मैं नमस्कार करता हूँ।

Eng. Tr.—Kama(will-power, desire, love) was born first of all. The deities, the manes and the men could not catch him. Therefore Kama is superior to all and is always supreme. I pay my homage to kama alone.

अनुशीलन—इस मंत्र की व्याख्या के लिए मंत्र ६४ का अनुशीलन भी देखें। इस मंत्र का कथन है कि संसार में काम सबसे बड़ी शक्ति है। यह सबसे पहले उत्पन्न हुआ है और कोई भी देवता या मनुष्य इसके सामर्थ्य को नहीं पा सके हैं।

काम के दो रूप हैं—आध्यात्मिक और शारीरिक। आध्यात्मिक काम संकल्प है, विचारशक्ति है और Will-power है। यही सृष्टि में सबसे पहले उत्पन्न हुआ और इसके द्वारा ही सृष्टि का विकास हुआ। काम का दूसरा रूप शारीरिक है। यह काम-भावना के रूप में प्रकट होगा। पति-पत्नी का संयोग कराने वाला काम है। दोनों में परस्पर आकर्षण कराने वाला और स्नेह का आधार काम है। इसके द्वारा ही संतानोत्पत्ति होती है और वंश-परंपरा चलती है।

संसार की कोई शक्ति इसकी शक्ति से तुलना नहीं कर सकती। काम-शक्ति ही कामदेव है, यही शिश्नदेव है, यही cupid और God of love है। इसके लिए ही गीता में कहा गया है कि यह रजो गुण से उत्पन्न होता है। यही पापों में लगता है और वैरी है।

काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥गीता ३-३७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काम की दो प्रकार की प्रवृत्ति है—शुभ और अशुभ । शुभ काम शिव-संकल्प देता है, उच्च विचार देता है, दृढ़ निश्चय देता है और स्फूर्ति देता है । अशुभ काम भोग, वासना, विषयों में आसक्ति और पाप-प्रवृत्ति देता है । इससे मनुष्य की समस्त शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और वह पतित हो जाता है । मंत्र में काम के के शिवरूप की प्रार्थना की गई है, जिससे मनोबल और इच्छाशक्ति उन्नत हो सके ।

टिप्पणी—(१) **कामः**—काम के अर्थ हैं—कामना, संकल्प, इच्छाशक्ति, कामदेव । (२) **जज्ञे**—उत्पन्न हुआ । जन् (उत्पन्न होना, दिवादि, आ०) + लिट् प्र० १ । (३) **आपुः**—पा सके । आप् (पाना, स्वादि, पर०) + लिट् प्र० ३ । (४) **पितरः**—पितृगण, विद्वान् पूर्वज । (५) **ज्यायान्**—प्रशस्यतर, अधिक उत्कृष्ट । प्रशस्य + ईयस् + प्र० १ । प्रशस्य को ज्य आदेश । (६) **विश्वहा**—सदा, सभी दिन । विश्वानि अहानि का संक्षिप्त रूप है । (७) **ते इत्**—तुझे ही, तुम अकेले को ही । इत्—ही । (८) **कृणोमि**—करता हूँ । कृ (करना, स्वादि, पर०) + लट् उ० १ ।

८८. पुरुषार्थी एवं प्रेमी हों

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो
रमध्वं मा बिभीत मत् ॥

अथर्व० ७-६०-१

अन्वय—ऊर्जं बिभ्रत्, वसुवनिः सुमेधाः, अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा(पश्यन्), सुमनाः वन्दमानः गृहान् आ एमि, रमध्वम्, मत् मा बिभीत ।

शब्दार्थ—(ऊर्जम्) बल, शक्ति को, (बिभ्रत्) धारण करते हुए, (वसुवनिः) धन का दान करता हुआ, (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिवाला, (अघोरेण) निर्दोष, शान्त, (मित्रियेण) प्रेमपूर्ण, मैत्री के भाव से युक्त, (चक्षुषा पश्यन्) दृष्टि से देखता हुआ, (सुमनाः) प्रसन्नचित्त, (वन्दमानः) सबको नमस्कार करता हुआ, (गृहान्) अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिवार वालों के पास, (आ एमि) आता हूं, प्रवास से आता हूं। (रमध्वम्) तुम सब आनन्दित रहो। (मत्) मुझसे, (मा) मत, (विभीत) डरो, संकोच करो।

हिन्दी अर्थ—(प्रवास से निवृत्त पुरुष का कथन) मैं पुरुषार्थी, धन का दाता, बुद्धिमान्, निर्दोष एवं स्नेहपूर्ण दृष्टि से सबको देखता हुआ, प्रसन्न चित्त और सबको नमस्कार करता हुआ, परिवार वालों के पास (प्रवास से लौटकर) आया हूँ। तुम सभी आनन्द से रहो। कोई मुझसे भयभीत न हो।

Eng. Tr.—(One returning from abroad says :—) I have returned from abroad, becoming laborious, generous, intelligent, perceiving all with innocent and affectionate eyes, cheerful and saluting all the family-members. May all of you be hale and hearty. None of you should be afraid of me.

अनुशीलन—यह प्रवास से निवृत्त व्यक्ति का अपने परिवार वालों से कथन है। इस मंत्र में प्रवास के लाभों का वर्णन है। विदेशयात्रा या प्रवास से ये लाभ होते हैं—१. पुरुषार्थ की वृद्धि, २. धन की वृद्धि, ३. ज्ञानवृद्धि, ४. परिवार के प्रति सहज स्नेह-भावना का उदय।

धनागम या समृद्धि के लिए बाहर जाना अत्यन्त शुभ है। परिवार का एक सीमित क्षेत्र है। व्यापार और वाणिज्य से ही श्री-वृद्धि होती है। इसके लिए कोई उपयुक्त स्थान ढूंढ़ना पड़ता है। विदेश-यात्रा या प्रवास इसके लिए उत्तम साधन है। मनुष्य के बाहर जाने से ज्ञान बढ़ता है, अनुभव बढ़ता है, व्यवहार-ज्ञान बढ़ता है और संघर्ष की शक्ति बढ़ती है। मंत्र में इसीलिए बताया गया है कि प्रवास से लौटने वाला व्यक्ति अधिक धनवान्, गुणवान् और व्यवहार-कुशल हो जाता है। उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है और उसकी दृष्टि अधिक व्यापक और व्यावहारिक हो जाती है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि बाहर रहने के कारण उसे पारिवारिक सुख नहीं मिल पाता। वह अपने संबन्धियों और इष्ट-मित्रों से मिलने के लिए व्याकुल रहता है। अतएव मंत्र में कहा गया है कि परिवार के लोगों से मिलकर उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि यदि ऐश्वर्य और श्रीवृद्धि की कामना है तो उसे घर छोड़ना चाहिए और किसी अच्छे स्थान पर अपने सामर्थ्य की परीक्षा करनी चाहिए।

टिप्पणी—(१) **ऊर्जं बिभ्रत्**—शक्तिशाली, पुरुषार्थी। बिभ्रत्—धारण करता हुआ। भृ (धारण करना, जुहो० पर०) + शतृ प्र० १। (२) **वसुवनिः**—वसु—धन, वनिः—देने वाला। (३) **सुमेधाः**—बुद्धिमान्, श्रेष्ठ बुद्धि वाला। सुमेधस् + प्र० १। (४) **अघोरेण**—निर्दोष, कटुता से रहित, सरल। (५) **मित्रियेण**—मित्रों के योग्य, प्रेमपूर्ण। मित्र + घ (इय)। (६) **गृहान्**—परिवार वालों के पास। गृह का अर्थ घर या परिवार के व्यक्ति हैं। (७) **आ एमि**—आता हूँ। आ + इ (आना, अदादि, पर०) + लट् उ० १। (८) **सुमनाः**—प्रसन्नचित्त, सुन्दर मन वाला। सुमनस् + प्र० १। (९) **वन्दमानः**—नमस्कार करता हुआ। वन्द् (नमस्कार करना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन)। (१०) **रमध्वम्**—प्रसन्न रहो, खुश रहो। रम् (प्रसन्न रहना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० ३। (११) **मा बिभीत**—मत डरो। भी (डरना, जुहो०, पर०) + लोट् म० ३। (१२) **मत्**—मुझसे। अस्मद् + पं० १

८९. यश, तेज और ऐश्वर्य हों

मयि वर्चो अथो यशो, अथो यज्ञस्य यत् पयः।
तन्मयि प्रजापति-र्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥

अथर्व० ६-६९-३

अन्वय—मयि वर्चः, अथो यशः, अथो यज्ञस्य यत् पयः, प्रजापतिः तत् मयि दृंहतु, दिवि द्याम् इव।

शब्दार्थ—(मयि) मुझमें, (वर्चः) तेजस्विता, (अथो) और, (यशः) यश, कीर्ति, (अथो) और, (यज्ञस्य) यज्ञ का, (यत्) जो, (पयः) रस या सार है, (प्रजापतिः) संसार का पालक परमात्मा, (तत्) वह, (मयि) मुझमें, (दृंहतु) दृढ करे, पुष्ट करे, (दिवि) आकाश में, (द्याम् इव) जैसे प्रकाश को दृढ करता है।

हिन्दी अर्थ—संसार का पालक परमात्मा, तेजस्विता, यश और यज्ञ का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो सारभाग है, वह मुझमें दृढरूप से रखे, जैसे वह द्युलोक में प्रकाश को स्थिर-रूप से रखता है।

Eng. Tr.—Let the Protector of the universe, confer upon me the brilliance, fame and essence of the sacrifices as he firmly puts light in the heaven.

अनुशीलन—इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि परमात्मा तेज, यश और समृद्धि दे।

मंत्र का कथन है कि जिस प्रकार परमात्मा ने आकाश में प्रकाश दिया है, उसी प्रकार मुझे तेज, यश और ऐश्वर्य दे। जीवन में इन तीनों की आवश्यकता है। पुरुषार्थ का फल ऐश्वर्य है, सात्त्विकता का फल वर्चस् या तेज है और सत्कर्मों का फल यश है।

प्रारम्भिक जीवन में मनुष्य में उत्साह होता है। उसकी कुछ महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं। उनकी पूर्ति के लिए वह कठोर परिश्रम करता है। इससे उसे ऐश्वर्य और वैभव प्राप्त होता है। ऐश्वर्य भोग और योग दोनों का साधक है। ऐश्वर्य का भौतिक उपयोग भोग है। यदि उसी ऐश्वर्य का अनासक्ति की भावना से उपयोग किया जाए तो वह योग का भी मार्ग है।

जीवन की सात्त्विकता और पवित्रता वर्चस् या तेज देती है। यह तेजस्विता उसके मुख-मंडल पर कान्ति, प्रभा या चमक के रूप में प्रकट होती है। इससे उसकी पवित्रता ज्ञात होती है। यदि सात्त्विकता के साथ वह निरन्तर सत्कर्मों में लगा रहता है, तो उसे यश मिलता है। यश स्थायी, अक्षय और जीवन का सर्वस्व है। जो अपने कर्मों से संसार में यश छोड़ जाता है, वह मरने के वाद भी स्मरण किया जाता है। अतएव कहा गया है कि जो अपना यश छोड़ जाता है, वह मरने पर भी जीवित है।

'कीर्तिर्यस्य स जीवति'।

यशःशरीरं न विनश्यति। चाणक्यसूत्र २९८

टिप्पणी—(१) वर्चः—वर्चस्विता, तेजस्विता। वर्चस् (तेज) + द्वि० १। (२) अथो—और। अथ + उ = अथो। अव्यय है। (३) पयः—दूध, रस। यहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सारभाग अर्थ है। (४) दिवि—द्युलोक में, आकाश में। दिव् + स० १। (५) द्याम् इव—प्रकाश के तुल्य। द्यो (प्रकाश) + द्वि० १। द्यो को द्या। (६) दृंहतु—दृढ़ करे, स्थिर करे, दृढ़तापूर्वक रखे। दृंह् (दृढ करना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० १।

९०. मधुर ओजस्वी वचन बोलें

अश्विना सारघेण मा, मधुनाङ्क्तं शुभस्पती।
यथा भर्गस्वतीं वाचम्, आवदानि जनाँ अनु ॥

अथर्व० ६-६९-२; ९-१-१९

अन्वय—हे शुभस्पती अश्विना, मा सारघेण मधुना अङ्क्तम्। यथा जनान् अनु भर्गस्वतीं वाचम् आवदानि।

शब्दार्थ—(हे शुभस्पती अश्विना) हे तेज या प्रकाश के स्वामी अश्विनी देवो, (मा) मुझको, (सारघेण) मधु-मक्खी के द्वारा बनाए हुए, (मधुना) शहद से, (अङ्क्तम्) युक्त करो। (यथा) जिससे, (जनान् अनु) लोगों से, (भर्गस्वतीम्) तेजोमय एवं मधुर, (वाचम्) वचन, (आवदानि) बोलूं।

हिन्दी अर्थ—हे प्रकाश के स्वामी अश्विनी देवो! मुझे मधुमक्खी द्वारा बनाए मधु से युक्त करो। जिससे मैं लोगों से तेजस्वी एवं मधुर वचन बोलूं।

Eng. Tr.—O Ashvins, lords of splendour! anoint my tongue with the honey of the bees, so that I may utter sweet and forceful words to others.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि मधुर एवं तेजस्वी वचन बोलें। वाणी में माधुर्य के लिए मधु का सेवन करें।

मधुर-वचन या मधुर भाषण जीवन की अत्युत्तम शिक्षा है। मधुर भाषण जीवन को पवित्र बनाता है, सात्त्विकता की वृद्धि करता है और स्नेह का वातावरण उत्पन्न करता है। मधुर भाषण से शत्रु को भी वश में किया जा सकता है। अतएव अथर्ववेद में कहा है कि हम जो कुछ भी बोलें, मधुर बोलें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि । अथर्व० १२-१-५८

मधुर वचन के लिए भी नियम बताया गया है कि सत्य और प्रिय वचन ही बोलना चाहिए । मधुर वचन के साथ सचाई का भी संमिश्रण होता है। केवल चाटुकारिता और दूसरे को ठगना मधुरभाषण नहीं है। अतएव संस्कृत में सत्य और प्रिय वचन के लिए सूनृत शब्द है । सूनृत का अर्थ है—सत्य और प्रिय वचन ।

'प्रियं च सत्यं च वचो हि सूनृतम् ।'

मंत्र में सत्य का भाव प्रकट करने के लिए भर्गस् शब्द दिया गया है। भर्गस् तेजस्विता है । सत्य वचन में तेज और ओज रहता है । वाणी के माधुर्य के लिए आलंकारिक रूप में कहा गया है कि मधु खावें और मीठा बोलें । मधु या शहद से मानसिक प्रसन्नता और सात्त्विकता का विकास होता है ।

टिप्पणी—(१)अश्विना—अश्विनौ के स्थान पर है । हे दोनों अश्विनीकुमार। (२) सारघेण—मधुमक्खी द्वारा बनाए । सरघा—(मधुभक्षिका) + अण् (अ) = सारघ + तृ० १ । (३) मा— माम्, मुझको । माम् के स्थान पर मा है। (४) अङ्क्तम्—मिश्रित करो, युक्त करो । अञ्ज् (मलना, पोतना, रुधादि, पर०) + लोट् म० २ । (५) शुभस्पती—शुभस्—तेज, दीप्ति, प्रकाश के, पती—स्वामी । सं० २ । (६) भर्गस्वतीम्—भर्गस्—तेज, दीप्ति, वतीम्—युक्त । तेजोयुक्त । प्रिय या मधुर तेजस्विता भर्गस् है । भर्गस् + मत् + ई + द्वि० १ । (७) आवदानि—बोलूं, कहूँ । आ + वद् (बोलना, भ्वादि, पर०) + लोट् उ० १ । (८) जनाम् अनु— मनुष्यों के प्रति, लोगों से ।

९१. तपस्वी और वेदभक्त हों

यदग्ने तपसा तप, उपतप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्म, आयुष्मन्तः सुमेधसः ॥
अथर्व० ७-६१-१

अन्वय—हे अग्ने, तपसा यत् तपः, (तत्) तपः उपतप्यामहे । श्रुतस्य प्रियाः आयुष्मन्तः सुमेधसः भूयास्म ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे अग्निरूप परमात्मन्, (तपसा) मनोनिग्रह आदि के द्वारा, (यत् तपः) जो तप किया जाता है, (तत् तपः) वह तप, (उपतप्यामहे) हम करते हैं। (श्रुतस्य) वेद के, ज्ञान के, (प्रियाः) प्रिय, प्रेमी, (आयुष्मन्तः) दीर्घायु, (सुमेधसः) मेधावी, (भूयास्म) होवें।

हिन्दी अर्थ—हे अग्निरूप परमात्मन् ! मनोनिग्रह आदि के द्वारा जो तप किया जाता है, वह तप हम करते हैं। उस तप से हम वेद के प्रेमी, दीर्घायु और मेधावी हों।

Eng. Tr.—O Fire-God ! we perform the penance by controlling our sense-organs. May we attain longevity, intelligence and love to the Vedas by this penance.

अनुशीलन—इस मंत्र की व्याख्या के लिए मंत्र ८२ का अनुशीलन भी देखें।

इस मंत्र में तप और उप-तप का उल्लेख है। इसको संक्षेप में यम और नियम का पालन कह सकते हैं। यम को योगदर्शन में सार्वभौम महाव्रत कहा है। ये विश्वहित के साधक व्रत हैं। संसार के प्रत्येक भद्र पुरुष के लिए इनका पालन आवश्यक बताया गया है। इनके पालन से विश्वशान्ति और विश्व-बन्धुत्व का भाव जागृत होता है। ये यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (संयम) और अपरिग्रह (लोभ एवं विषयों से निवृत्ति)। ये सर्वभौम या विश्वहित के साधक व्रत हैं।

सार्वभौमा महाव्रतम् ।। योगदर्शन २-३१

शौच (स्वच्छता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरचिन्तन, ये पाँच नियम हैं। ये व्यक्ति के उन्नति के साधक हैं। इनका अभ्यास करने से व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास होता है। मनु आदि ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज की उन्नति को विशेष महत्त्व दिया है, अतः मनु का कथन है कि नियमों की अपेक्षा यमों का पालन करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनसे समाज और विश्व का हित होता है। इनसे विश्व में शान्ति और व्यवस्था बनी रहती है।

यमान् सेवेत सततं, न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो, नियमान् केवलान् भजन् ।। मनु० ४-२०४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंत्र में यमों और नियमों के सेवन का फल बताया गया है कि इससे ज्ञान की वृद्धि होती है , वेदों के प्रति रुचि बढ़ती है और वेदों का गंभीर अर्थ स्पष्ट होने लगता है ।

टिप्पणी—(१) विशेष—मंत्र ८२ की टिप्पणी देखें । (२) भूयास्म—होवें । भू (होना, भ्वादि, पर०) + आशीर्लिङ् उ० ३ ।

९२. सदा सत्यवादी और प्रसन्न रहें

सूनृतावन्तः सुभगा, इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त, गृहा मास्मद् बिभीतन ॥

अथर्व० ७-६०-६

अन्वय—हे गृहाः, सूनृतावन्तः सुभगाः इरावन्तः हसामुदाः अतृष्याः अक्षुध्याः स्त । अस्मद् मा बिभीतन ।

शब्दार्थ—(हे गृहाः), हे परिवार के लोगों, (सूनृतावन्तः) सत्य एवं प्रिय बोलने वाले, सत्यवादी, उदार, (सुभगाः) सौभाग्यशाली, (इरावन्तः) अन्न से समृद्ध, (हसामुदाः) आमोद-प्रमोद से युक्त, हंसते-खेलते हुए, (अतृष्याः, अक्षुध्याः) भूख और प्यास के भय से रहित, (स्त) रहो । (अस्मत्) हमसे, (मा) मत, (बिभीतन) डरो ।

हिन्दी अर्थ—हे परिवार के लोगो ! तुम सत्यवादी, सौभाग्यशाली, अन्न-समृद्धि से युक्त, सर्वथा प्रसन्नचित्त, भूख और प्यास के कष्ट से रहित रहो । तुम हमसे किसी प्रकार भयभीत न हो (संकोच न करो) ।

Eng. Tr.—O Family-members ! Be truthful, prosperous, cheerful and possessor of food-wealth. May you be free from the agony of hunger and thirst. Be not afraid of me.

अनुशीलन—इस मंत्र में सुखी परिवार के गुणों का वर्णन किया गया है । जिस परिवार में ये गुण पाए जाते हैं, उसे सुखी और संपन्न परिवार समझना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। ये गुण हैं—१. सत्यवादिता, २. सौभाग्यशीलता, ३. अन्न-समृद्धि, ४. प्रसन्नचित्तता, ५. अन्न-जल की प्रचुरता।

मंत्र में सूनृत शब्द का प्रयोग किया गया है। सूनृत का अर्थ है—सत्य और प्रिय वचन। प्रिय वचन भी यदि सत्य है तो वह सूनृत है।

प्रियं च सत्यं च वचो हि सूनृतम्।

सत्यवादिता, सत्य व्यवहार और सत्यनिष्ठा परिवार की समृद्धि की आधार-शिला हैं। जहां सत्य है, वहां सुरक्षा है। परिवार की श्रीवृद्धि के लिए सत्य को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है।

जहां सत्य है, वहां श्री और सौभाग्य रहेगा। सत्य से सौभाग्य की वृद्धि होती है। परिवार में शान्ति, व्यवस्था, नीरोगता और किसी प्रकार की न्यूनता का अभाव, परिवार के सौभाग्य के सूचक हैं। परिवार की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्न की आवश्यकता हैं—जहां अन्न और जल है, वहां न कोई भूखा रहेगा और न कोई प्यासा।

परिवार की समृद्धि का सूचक एक और गुण है। वह है—प्रसन्नचित्तता। परिवार के सभी व्यक्ति यदि हंसते-खेलते और आनन्दित हैं तो वह परिवार वस्तुतः खुशहाल माना जाएगा।

टिप्पणी—(१) सूनृतावन्तः—सत्य और प्रिय बोलने वाले। सत्य और प्रिय वचन को सूनृत कहते हैं। सूनृत का अर्थ उदार भी है। सूनृत + मत् + प्र० ३। म् को व्। (२) सुभगाः—सु–सुन्दर, भगाः–ऐश्वर्य वाले। (३) इरा-वन्तः—अन्नयुक्त। इरा का अर्थ अन्न है। इरा + मत् + प्र० ३। म् को व्। (४) हसामुदाः—हसा–हंसने वाले, मुदाः–प्रसन्नचित्त। हंसी से प्रसन्नचित्त। (५) अतृष्याः—प्यास के कष्ट से रहित। अ–नहीं, तृष्याः–प्यास के योग्य। तृष्–प्यास। (६) अक्षुध्याः—भूख के कष्ट से रहित। अ–नहीं, क्षुध्याः–भूख के योग्य। क्षुध्–भूख। (७) स्त—होओ, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (८) गृहाः—परिवार वाले, घर के लोग। (९) मा बिभीतन—मत डरो। भी (डरना, जुहो०, पर०) + लोट् म० ३। त को तन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९३. श्री-वृद्धि के लिए विदेश जावें

इहैव स्त मानु गात, विश्वा रूपाणि पुष्यत।
ऐष्यामि भद्रेणा सह, भूयांसो भवता मया॥

अथर्व० ७-६०-७

अन्वय—(हे गृहाः) इह एव स्त, मा अनु गात। विश्वा रूपाणि पुष्यत। भद्रेण सह आ एष्यामि। मया भूयांसः भवत।

शब्दार्थ—(हे गृहाः) हे परिवार वालो, (इह एव) यहाँ ही, (स्त) रहो। (मा) मत, (अनु गात) मेरे पीछे चलो, मेरे साथ चलो। (विश्वा) सभी, (रूपाणि) प्राणियों को, (पुष्यत) पुष्ट करो। (भद्रेण सह) मैं कल्याण के साथ, सकुशल, (आ एष्यामि) आऊंगा, लौटकर आऊँगा। (मया) मुझसे, (भूयांसः) बहुत, अधिक समृद्ध, (भवत) होना।

हिन्दी अर्थ—(विदेश जाते हुए व्यक्ति का कथन) हे परिवार वालो! तुम यहीं रहो। मेरे साथ मत चलो। तुम यहाँ सभी प्राणियों की देखभाल करना (उन्हें पुष्ट करना)। मैं सकुशल लौटकर आऊँगा। तुम मेरे आने से अधिक समृद्ध होना।

Eng. Tr.—O Family-members! stay here. Don't follow me. Take care of the entire family. I will return safely. You will prosper on my return from abroad.

अनुशीलन—यह मंत्र धन आदि के लिए विदेश या परदेश जाते हुए व्यक्ति का कथन है। विदेशयात्रा के लिए उद्यत व्यक्ति का कथन है कि तुम लोग प्रेम के वशीभूत होकर मेरे साथ जाने के लिए तैयार न हो। तुम सभी यहाँ घर संभालो। परिवार के व्यक्तियों और पशुओं आदि की देखभाल करना। मैं धन कमाकर शीघ्र लौटूंगा और फिर तुम्हारी संख्यावृद्धि हो जाएगी एवं परिवार धन-समृद्धि से युक्त हो जाएगा।

परिवार की आर्थिक स्थिति को संभालने के लिए बाहर जाना आवश्यक है। बाहर जाने से मनुष्य की बुद्धि खुलती है। उसे लोक-व्यवहार ज्ञात होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धन-अर्जन के विविध उपायों का ज्ञान होता है। लोक-व्यवहार में निपुण होकर वह धन-संग्रह करता है। अपने कठिन परिश्रम से वह अनेक शिल्प, उद्योग आदि में दक्षता प्राप्त करता है।

आज भी यह स्थिति देखने में आती है। अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हजारों व्यक्ति बड़े शहरों में जाते हैं और अपने परिवारों को धन भेजते हैं। कुछ वर्षों बाद वे समृद्ध होकर अपने घरों को लौटते हैं।

टिप्पणी—(१) स्त—होओ, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० ३। (२) मा अनु गात—मेरे पीछे या मेरे साथ मत चलो। अनु + इ (जाना, अदादि, पर०) + लुङ् म० ३। इ को गा आदेश। अडागम नहीं, Root Aorist Inj. है। (३) विश्वा—सब। विश्वानि का संक्षिप्त रूप है। (४) रूपाणि—रूपवाली वस्तुओं, विविधरूप वाले जीवों को। यहाँ परिवार के सभी प्राणियों से अभिप्राय है। (५) पुष्यत—पुष्ट करो, देखभाल करो, सुरक्षित रखना। पुष् (पुष्ट करना, दिवादि, पर०) + लोट् म० ३। (६) आ एष्यामि—मैं विदेश से लौटकर आऊँगा। आ + इ (आना, अदादि, पर०) + लृट् उ० १। (७) भद्रेण०—सकुशल या धनसमृद्धि के साथ। भद्रेणा छान्दस दीर्घ। (८) भूयांसः—बहुत अधिक। संख्या में अधिक और धनसमृद्धि में अधिक। बहु + ईयस् + प्र० ३। बहु को भू आदेश। (९) भवत—होना। भू + लोट् + म० ३। भवता छान्दस दीर्घ।

९४. सभी आसुरी वृत्तियों को हटावें

निःशालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥

अथर्व० २-१४-१

अन्वय—निःशालां धृष्णुं धिषणम् एकवाद्यां जिघत्स्वं चण्डस्य सर्वाः नप्त्यः, सदान्वाः नाशयामः।

शब्दार्थ—(निःशालाम्) घर से बहिष्कृत, (धृष्णुम्) धर्षक, भयभीत करने वाली, (धिषणम्) पकड़ने वाली, अपने वश में करने वाली, (एकवाद्याम्) एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार का स्वर करने वाली, (जिघत्स्वम्) खाने की इच्छुक, खा जाने वाली, (चण्डस्य) क्रोध की, (सर्वाः नप्त्यः) सारी संतानों को, (सदान्वाः) और सारी दानवीय वृत्तियों को, (नाशयामः) नष्ट करते हैं।

हिन्दी अर्थ—घर से बहिष्कृत, भयावह, पकड़ने वाली, एक प्रकार की ध्वनि करने वाली, खा जाने की इच्छुक, दुर्भावनाओं को हम नष्ट करते हैं। क्रोध की सभी सन्तानों को और सभी दानवीय वृत्तियों को हम नष्ट करते हैं।

Eng. Tr.—We destroy all sorts of ill-thoughts, which are home-less, frightening, capturing, making similar sounds and seeking to devour us. We crush all the progeny of anger and the devilish emotions.

अनुशीलन—इस मंत्र में क्रोध और आसुरी भावनाओं को नष्ट करने का उपदेश दिया गया है। परिवार को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है कि परिवार से क्रोध को हटाया जाए तथा परिवार के व्यक्तियों में जो दुर्गुणों की ओर प्रवृत्ति है, उसे भी दूर किया जाए।

इस मंत्र में आसुरी वृत्तियों और क्रोध के दुष्परिणामों का वर्णन है। आसुरी वृत्तियों के विषय में कहा गया है कि ये मनुष्य को बीमारी की तरह पकड़ती हैं। उसे खा जाती हैं। उसका खून चूस लेती हैं। ये सभी आसुरी वृत्तियाँ भयावह हैं। सभी एक सी आवाज करती हैं। सभी मनुष्य को लुभाकर अपनी ओर आकृष्ट करती हैं और उसका पतन कर देती हैं। अतएव गीता में भी कहा गया है कि दैवी वृत्तियाँ शुभ हैं। ये मनुष्य का उद्धार करती हैं। आसुरी वृत्तियाँ अशुभ हैं। उसका नाश कर देती हैं और बन्धन में डालती हैं।

दैवी संपद् विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता। गीता १६-५

इसी प्रकार क्रोध के लिए कहा गया है कि यह बड़ा पाप है। यह मनुष्य के शरीर को और परिवार को खा जाता है। गीता के अनुसार यह मनुष्य का शत्रु है और पतन की ओर ले जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काम एष क्रोध एष, रजोगुण-समुद्‌भवः ।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।। गीता ३-३७

टिप्पणी—(१) निःशालाम्—शाला या घर से रहित । घर से बहिष्कृत या जिनका कोई घर नहीं है । दुर्गुणों का कोई घर नहीं है । (२) धृष्णुम्—दवाने वाली, धर्षक, भयभीत करने वाली । धृष् + नु । (३) धिषणम्—पकड़ने वाली, चिपटने वाली । दोष आकर चिपटते हैं । (४) एकवाद्याम्—एक सी स्वर वाली । दुर्गुणों का एक ही स्वर है कि निर्बल को सताओ । (५) जिघत्स्वम्—खा जाने की इच्छुक । बुराइयाँ निर्वल को खा जाती हैं । अद् (घस्, खाना, अदादि) + सन् (स) + उ = जिघत्सु + द्वि० १ । अद् को घस् आदेश । (६) चण्डस्य क्रोध की । (७) नप्त्यः—नाती, पुत्र, संतान । नप्ती (नाती) + प्र० ३ । (८) नाशयामः—नष्ट करते हैं । नश् (नष्ट होना, दिवादि, पर०) + णिच् (अय) + लट् उ० ३ । (९) सदान्वाः—स-सहित, दान्वाः-दुष्ट विचार, दुर्वृत्ति । दुष्ट विचारों या वृत्तियों को । दानु (दानव) से दान्वा शब्द है ।

९५. वस्त्र-परिधान श्रीवृद्धि के लिए

यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामः,
तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानम्,
अनुजायन्तां बहवः सुजातम् ॥

अथर्व० २-१३-५

अन्वय—यस्य ते प्रथमवास्यं वासः हरामः, तं त्वा विश्वे देवाः अवन्तु । सुवृधा वर्धमानं सुजातं तं त्वा बहवः भ्रातरः अनु जायन्ताम् ।

शब्दार्थ—(यस्य ते) जिस तेरे लिए, तुझ बालक के लिए, (प्रथमवास्यम्) पहली बार पहनने योग्य, (वासः) वस्त्र, (हरामः) लाते हैं । (तं त्वा) उस तुझको, (विश्वेदेवाः) सारे देवता, (अवन्तु) रक्षा करें । (सुवृधा) अच्छी वृद्धि से, (वर्धमानम्) बढ़ते हुए, (सुजातम्) सुन्दर उत्पन्न, सद्‌गुणों से युक्त पुत्र को, (तं त्वा) उस तुझको, (बहवः भ्रातरः) बहुत से भाई, (अनु जायन्ताम्) बाद में उत्पन्न हों ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी अर्थ—तुझ बालक के लिए पहली वार पहनने योग्य वस्त्र हम लाते हैं। तेरी सभी देवता रक्षा करें। सुन्दर वृद्धि से बढ़ते हुए तुझ सुयोग्य सन्तान के बाद बहुत से और छोटे भाई उत्पन्न हों।

Eng. Tr.—O newly-born son! we bring befitting garments for you to put on. May all the deities protect you. May you progress well and prove a worlthy son. Let other issues follow you.

अनुशीलन—इस मंत्र में वस्त्र पहनने के लाभ का वर्णन है। बच्चे को प्रथम बार वस्त्र पहनाते समय यह कामना की जाती है कि सभी देव तेरी रक्षा करें। तू सदा ऐश्वर्य से बढ़ और परिवार में सुयोग्य संतान बढ़ें।

वस्त्र पहनना सभ्यता के विकास का सूचक है। सभी जीवों में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जो वस्त्र पहनता है। वस्त्र एवं वेष-भूषा किसी भी व्यक्ति की संस्कृति और सभ्यता के परिचायक हैं। अधिकांश स्थानों पर वेष-भूषा के द्वारा ही उसकी योग्यता का निर्धारण होता है। यद्यपि यह धारणा सर्वथा ग्राह्य नहीं है, तथापि व्यवहार में यह अत्यन्त प्रचलित है। संस्कृत का एक रोचक सुभाषित है कि वस्त्र से व्यक्ति की योग्यता का पता चलता है। समुद्र ने विष्णु को रेशमी वस्त्र पहने देखकर अपनी पुत्री लक्ष्मी दे दी और शिव को नग्न देखकर विष पीने के लिए दे दिया।

वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः, वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां, दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः॥

नव वस्त्र-परिधान के द्वारा शिक्षा दी गई है कि सदा साफ-सुथरे वस्त्र पहनें। अपनी वेष-भूषा उत्तम रखें।

टिप्पणी—(१) **वासः**—वस्त्र। वासस् + द्वि० १। (२) **प्रथम-वास्यम्**—प्रथम—पहली बार, वास्यम्—पहनने योग्य। वस् (ढकना, पहनना, अदादि) + ण्यत् (य)। (३) **हरामः**—हम लाते हैं। हृ (लाना, भ्वादि, पर०) + लट् उ० ३। (४) **अवन्तु**—रक्षा करें। अव् (रक्षा करना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० ३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(५) त्वा—त्वाम्, तुझको। (६) सुवृधा—सु-सुन्दर, वृधा-वृद्धि से। सुवृध् + तृ० १। (७) वर्धमानम्—बढ़ते हुए को। वृध् (बढ़ना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन) + द्वि० १। (८) अनु जायन्ताम्—बाद में उत्पन्न हों। जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + लोट् प्र० ३। (९) सुजातम्—सौभाग्यशाली उत्पन्न बालक को।

९६. कल्याण के लिए वस्त्र पहनें

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये,
अभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची,
रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥

अथर्व० २-१३-३

अन्वय—इदं वासः स्वस्तये परि अधिथाः। उ गृष्टीनाम् अभिशस्तिपाः अभूः। पुरूचीः शतं शरदः च जीव। रायः पोषं च उपसंव्ययस्व।

शब्दार्थ—(इदम्) यह, (वासः) वस्त्र, (स्वस्तये) कल्याण के लिए, (परि अधिथाः) पहनो, धारण करो। (उ) और, (गृष्टीनाम्) गायों का, (अभिशस्तिपाः) विनाश से बचाने वाला, (अभूः) होना। (पुरूचीः) बहुत, पूरे, (शतं शरदः च) सौ वर्ष तक, (जीव) जीवित रहो। (रायः पोषं च) धन और उसकी पुष्टि या सुरक्षा को, (उपसंव्ययस्व) धारण करो।

हिन्दी अर्थ—यह वस्त्र कल्याण के लिए पहनो। तुम गायों को कष्ट से बचाना। पूरे सौ वर्ष जीवित रहना और रायस्पोष को प्राप्त करना।

Eng. Tr.—O newly-born son ! put on this garment for your welfare. Protect the cows against injuries. May you live for a hundred year and acquire and preserve wealth.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी वस्त्र पहनने का लाभ बताया गया है। नव वस्त्र-परिधान कल्याण और श्रीवृद्धि के लिए है।

वस्त्र शरीर की सुन्दरता, सुरक्षा और अलंकरण का साधन है। वस्त्र सभ्यता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और संस्कृति का भी प्रतीक हैं। वस्त्रों के द्वारा देश की तत्कालीन सभ्यता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मंत्र का कथन है कि कल्याण के लिए वस्त्र पहनो।

यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि वस्त्र साधन हैं, साध्य नहीं। वस्त्र साफ-सुथरे हों, यह आवश्यक है। परन्तु अपनी पूरी आय सुन्दर वस्त्रों में ही व्यय कर देना, मूर्खता है। वस्त्रों की चमक इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उनका स्वच्छ रखना। वस्त्रों में भी अपने हाथ के कते या स्वदेश में बने वस्त्रों को ही सदा प्रमुखता देनी चाहिए। इससे स्वदेश की अर्थव्यवस्था उन्नत होती है और व्यक्ति में देशभक्ति की भावना जागृत होती है।

टिप्पणी—(१) परि अधिथाः—पहनो, धारण करो। परि + धा (धारण करना, आ०) + लुङ् म० १। (२) अभूः—हुआ, होना। भू (होना, भ्वादि) + लुङ् म० १। (३) गृष्टीनाम्—गायों को। एक बच्चे वाली गाय को गृष्टि कहते हैं। गृष्टि + ष० ३। (४) अभिशस्तिपाः—अभिशस्ति–हिंसा, हानि, पाः–रक्षक। हानि से बचाने वाला। (५) पुरूचीः—बहुत, पूरे। पुरु + अञ्च् + ङीप् (ई) + द्वि० ३। (६) रायः पोषम्—धन की प्राप्ति और धन की सुरक्षा, धन-समृद्धि। (७) उपसंव्ययस्व—धारण करो। उप + सम् + व्ये (धारण करना, ढकना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० १।

९७. माता पुत्र के लिए वस्त्र बुने

> वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि
> वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।
> उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना
> दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ॥
>
> ऋग्० ५-४७-६

अन्वय—अस्मै धियः अपांसि च वि तन्वते। मातरः पुत्राय वस्त्रा वयन्ति। वृषणः उपप्रक्षे मोदमानाः वध्वः दिवस्पथा अच्छ यन्ति।

शब्दार्थ—(अस्मै) इसके लिए, पुत्र के लिए, (धियः) बुद्धि को, (अपांसि च) और अपने कर्मों को, (वितन्वते) फैलाती हैं। (मातरः) माताएं, (पुत्राय) पुत्र के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिए, (वस्त्रा) वस्त्र, (वयन्ति) बुनती हैं। (वृषणः) बलवान् पति के, (उपप्रक्षे) संपर्क में, (मोदमानाः) प्रसन्न होती हुई, (वध्वः) वधुएँ, स्त्रियाँ, (दिवस्पथा) द्युलोक के मार्ग से, प्रकाशयुक्त मार्ग से, (अच्छ) ठीक, (यन्ति) जाती हैं।

हिन्दी अर्थ—(स्त्रियाँ) पुत्र के लिए अपनी बुद्धि और अपने कर्मों को लगाती हैं। माताएँ पुत्र के लिए वस्त्र बुनती हैं। बलशाली पति के संपर्क में प्रसन्नचित्त स्त्रियाँ प्रकाशयुक्त मार्ग से जाती हैं।

Eng. Tr.—The mothers employ their head and heart for the sons. They make garments for their sons. The mothers, cheerful in the company of their powerful husbands, follow the shining-path.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ये हैं—१. स्त्रियाँ पुत्र आदि के लिए वस्त्र बनावें, २. योग्य पति के निरीक्षण में स्त्री सदा प्रसन्न रहती हैं।

स्वावलम्बन वेद की प्रमुख शिक्षा है। स्त्रियाँ सूत कातें, वस्त्र बनावें, बुनाई का काम करें, यह उनके लिए अत्यावश्यक है। इससे समय का सदुपयोग होता है और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधरती है। 'खाली दिमाग शैतान का घर'। जो स्त्रियाँ खाली रहती हैं, वे अपने लिए या परिवार के लिए समस्या तैयार करती रहती हैं। अतः हस्त-कौशल या कारीगरी के काम में व्यस्त रहना मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्युत्तम है। इससे एक ओर कोई शिल्प सीखा जाता है, दूसरी ओर परिवार की आवश्यकता पूरी की जाती है। मंत्र में इसीलिए बुद्धि और कर्म दोनों का समन्वय शिल्प में बताया गया है। माता के हाथ का बुना वस्त्र पुत्र को कितना प्रिय होगा, यह अनुभव का विषय है। इससे पुत्र पर ममत्व का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

मंत्र में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि योग्य पति पत्नी को सन्मार्ग पर ले चलता है। वह अपने गुणों का प्रभाव पत्नी पर डालता है। इससे पत्नी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी सदा सुखी और प्रसन्न रहती है। योग्य पति के साथ स्त्री भी सुशिक्षित और विदुषी हो जाती है।

टिप्पणी—(१) **वितन्वते**—फैलाती हैं, लगाती हैं। वि + तन् (फैलाना, तनादि, आ०) + लट् प्र० ३। (२) **अस्मै**—इसके लिए, अर्थात् पुत्र के लिए। (३) **अपांसि**—कर्मों को। अपस् (कर्म, नपुं०) + द्वि० ३। (४) **वस्त्रा**—वस्त्राणि का संक्षिप्त रूप है। (५) **वयन्ति**—बुनती हैं। वे (बुनना, भ्वादि, पर०) + लट् प्र० ३। (६) **उपप्रक्षे**—संपर्क होने पर, मिलने पर। उप + पृच् से उपप्रक्ष + स० १। (७) **वृषणः**—बलवान् पति के। वृषन् (बलवान्, वर्षक) + ष० १। (८) **मोदमानाः**—प्रसन्न होती हुई। मुद् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० ३। (९) **दिवस्पथा**—प्रकाश के मार्ग से। दिवः + पथिन् + तृ० १। (१०) **यन्ति**—जाती हैं। इ (जाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० ३। (११) **अच्छ**—ठीक ढंग से। अव्यय है।

९८. अनृणी का ही भविष्य उज्ज्वल

अनृणा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्,
तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः,
सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम॥

अथर्व० ६-११७-३

अन्वय—अस्मिन् लोके अनृणाः, परस्मिन् (लोके) अनृणाः, तृतीये (लोके) अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः सर्वान् पथः अनृणाः आ क्षियेम।

शब्दार्थ—(अस्मिन् लोके) इस लोक में, (अनृणाः) ऋणरहित हों। (परस्मिन् लोके) परलोक में, (अनृणाः) ऋणरहित हों। (तृतीये लोके) तृतीय लोक, द्युलोक में भी, (अनृणाः स्याम) ऋणरहित हों। (ये) जो, (देवयानाः) देवयान, (पितृयाणाः च लोकाः) और पितृयाण के लोक हैं, (सर्वान्) सभी, (पथः) मार्गों पर, (अनृणाः) ऋणरहित होकर, (आ क्षियेम) निवास करें, रहें।

हिन्दी अर्थ—इस लोक में, परलोक में और तृतीय लोक (द्युलोक)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में भी हम ऋणरहित हों। जो देवयान और पितृयाण लोक हैं, उन सभी मार्गों पर हम ऋणरहित होकर रहें।

Eng. Tr.—Let us be free from debt in this world, in the other world and the world following next. May we tread the paths of the gods and the fore-fathers and approach them by being free from debt.

अनुशीलन—इस मंत्र में सुखी परिवार के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी गई है। परिवार सुखी तभी रह सकता है, जब कि वह ऋणी, न हो। ऋण सारे सुख और शान्ति को नष्ट कर देता है। जीवन में कभी भी ऋणी न होना, यह बड़े सौभाग्य की बात है।

जिस प्रकार चिन्ता सारे सुखों को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार ऋण भी परिवार की शान्ति को नष्ट कर देता है। सर्वोत्तम यह है कि कभी भी ऋण न लिया जाए। यदि आर्थिक विवशतावश कभी ऋण लिया भी जाए तो उसे शीघ्रातिशीघ्र उतारा जाए। जब तक मनुष्य ऋणी रहता है, तब तक उसे मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अतएव महाभारत में युधिष्ठिर ने यक्ष को उत्तर दिया है कि जो अनृणी और अप्रवासी है, वह सदा प्रसन्न रहता है।

अनृणी चाप्रवासी च, स वारिचर मोदते ॥ महाभारत

चाणक्य ने भी कहा है कि ऋण, शत्रु और व्याधि, इनको पूर्णतया नष्ट कर दे।

ऋण-शत्रु-व्याधिष्वशेषः कर्तव्यः। चा० सूत्र ४३५

टिप्पणी—(१) **अनृणाः**—ऋणरहित, उऋण। (२) **तृतीये लोके**—तीसरे लोक में; द्युलोक में। (३) **देवयानाः**—देवमार्ग, जिनपर देवता ही चलते हैं। (४) **पितृयाणाः**—पितृमार्ग, जिनपर विद्वज्जन या पूज्य व्यक्ति ही चलते हैं। (५) **पथः**—मार्गों को, मार्गों पर। पथिन् (मार्ग) + द्वि० ३। (६) **आ क्षियेम**—रहें, निवास करें। क्षि (रहना, तुदादि, पर०) + विधि० + उ० ३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९९. दुश्चरित्र व्यक्तियों की अधम गति

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः
पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या
इदं पदमजनता गभीरम् ॥

ऋग्० ४-५-५

अन्वय—अभ्रातरः योषणः न व्यन्तः, पतिरिपः जनयः न दुरेवाः, पापासः सन्तः अनृताः असत्याः, इदं गभीरं पदम् अजनत ।

शब्दार्थ—(अभ्रातरः) भाइयों या संबन्धियों से रहित, (योषणः न) स्त्रियों के तुल्य, (व्यन्तः) कुमार्ग पर जाते हुए, (पतिरिपः) पति से द्वेष करने वाली, (जनयः न) स्त्रियों के तुल्य, (दुरेवाः) कुमार्गगामी, (पापासः) पापी, (सन्तः) होते हुए, (अनृताः) मानसिक सत्य से रहित, (असत्याः) वाचिक सत्य से रहित, (इदम्) इस, (गभीरम्) गंभीर, अथाह, (पदम्) स्थान को, नरक को, (अजनत) उत्पन्न करते हैं ।

हिन्दी अर्थ—संबन्धियों से रहित स्त्रियों के तुल्य कुमार्गगामी, पति-द्वेषिणी पत्नियों के तुल्य दुराचारी, पापी, मानसिक और वाचिक सत्य से रहित व्यक्ति ही इस गंभीर नरक को उत्पन्न करते हैं ।

Eng. Tr.—The evil-doers make this world hell. They go astray, like the women having no relatives. They commit crimes, like those infidel wives who deceive their husbands. They do not observe truthfulness mentally or orally.

अनुशीलन—इस मंत्र में एक सुन्दर शिक्षा दी गई है कि सच्चरित्र व्यक्ति इस संसार को स्वर्ग बनाते हैं और पापी तथा असत्यवादी लोग इसको नरक बनाते हैं ।

संसार को, समाज को और परिवार को सुखी बनाना या न बनाना, यह हमारे कर्मों पर निर्भर है । यदि सद्गुणों की वृद्धि की जाएगी तो सुख की सृष्टि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगी। यदि असत्य, पाप और अनाचार की वृद्धि होगी तो दुःख, क्लेश, अशान्ति और अत्याचार बढ़ेगा। मंत्र का कथन है कि जो लोग पापों में फंसे रहते हैं, या मन वचन कर्म से असत्य व्यवहार में ही लगे रहते हैं, वे इस संसार को नरक बनाते हैं। जिसे अपना जीवन दुःखमय बनाना हो, वह पाप की ओर झुके। जिसे जीवन में सुख और शान्ति चाहिए, वह सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त हो। अतएव कहा गया है कि—धर्म से उन्नति होती है और अधर्म से अवनति।

धर्मेण गमनमूर्ध्वं, गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण।

चाणक्य ने भी सुन्दर बात कही है कि जहां अधर्म प्रबल हो जाता है, वहां महान् धर्मसंकट और अत्याचार होने लगते हैं।

धर्माद् विपरीतं पापं यत्र प्रसज्यते,
तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते॥ चा० सूत्र २४०

मंत्र की यह भी शिक्षा है कि सुखी जीवन के लिए स्त्रियों पर विशेष ध्यान रखा जाए। जो स्त्रियां अधिक स्वतंत्र हो जाती हैं या जिन पर उचित निरीक्षण नहीं रहता वे दुराचारिणी हो जाती हैं या पति से द्वेष करने लगती हैं। अतः स्त्रियों पर उचित नियंत्रण आवश्यक है।

टिप्पणी—(१) **अभ्रातरः**—भाइयों से रहित, अर्थात् संबन्धियों से रहित। (२) **योषणः न**—स्त्रियों के तुल्य, योषन् (स्त्री) + प्र० ३। न—तुल्य, सदृश। (३) **व्यन्तः**—इधर उधर घूमते हुए, दुराचारी। वी (जाना, अदादि) + शतृ + प्र० ३। (४) **पतिरिपः**—पति से द्वेष करने वाली, पति को धोखा देने वाली। पति + रिप् + प्र० ३। (५) **जनयः न**—जैसे पत्नियां। जनि (पत्नी) + प्र० ३। (६) **दुरेवाः**—कुमार्गगामी। दुर् (दुष्ट) + एव (गति, मार्ग) + प्र० ३। (७) **पापासः**—पापी लोग। पाप (पापी) + प्र० ३। (८) **सन्तः**—होते हुए। अस् (होना) + शतृ + प्र० ३। (९) **अनृताः असत्याः**—मानसिक असत्य अनृत है, वाचिक असत्य असत्य है। (१०) **अजनत**—पैदा किया, जन्म दिया। जन् (पैदा करना, स्वादि, पर०) + प्र० ३। अजनता में छान्दस दीर्घ। (११) **गभीरं पदम्**—अथाह, दुःखद स्थान को। अर्थात् नरकरूपी स्थान को ऐसे पापी व्यक्ति जन्म देते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१००. वरदा वेदमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० १९-७१-१

अन्वय—(हे देवाः,) मया द्विजानां पावमानी वरदा वेदमाता स्तुता । प्र चोदयन्ताम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजत ।

शब्दार्थ—(हे देवाः) हे देवो, (मया) मैंने, (द्विजानाम्) द्विजों को, ब्राह्मणादि को, (पावमानी) पवित्र करने वाली, (वरदा) वर देने वाली, अभीष्ट-साधक, (वेदमाता) वेदमाता की, (स्तुता) स्तुति की । (प्र चोदयन्ताम्) आप सब हमें सत्कर्म में प्रेरित करें । (आयुः प्राणं प्रजाम्) आयु, जीवन, सुसन्तान, (पशुं कीर्ति द्रविणम्) पशुधन, यश, धन, (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज, (मह्यम्) मुझे, (दत्त्वा) देकर, (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक को, (व्रजत) आप सब जाइए ।

हिन्दी अर्थ—हे देवो ! मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली, वरदा (अभीष्ट-साधक) वेदमाता की स्तुति की है । आप सब मुझे प्रेरणा दें । दीर्घ आयु, जीवन-शक्ति, सुसन्तान, पशुधन, यश, वैभव और ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक को जाइए ।

Eng. Tr.—O Gods ! I have worshipped the boongiver mother-like Knowledge (Vedamata), who makes pure and pious all consecrated beings. Inspire me. Give me long and energetic life, good family, animals, fame, riches and divine glory, before departing to the heaven.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशीलन—वेदों की महिमा अपार है। वेद ज्ञान के स्रोत हैं। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद मानव-मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति है और सतत विकास है। इस मन्त्र में वेद को माता कहा गया है। जिस प्रकार माता सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार वेद सारे संसार की रक्षा के साधन हैं। माता अपने दूध से बालक को पुष्ट करती है, इसी प्रकार वेद ज्ञानरूपी दूध पिला-कर संसार में सुख की वृद्धि करते हैं। वेदमाता की सेवा से ही आर्यों का वंश अक्षय रहा है। वेदमाता वरदा है।

वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व-बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व-धर्म का संस्थापक है।

टिप्पणी—(१) **स्तुता**—स्तुति की। स्तु (स्तुति करना, अदादि) + क्त (त) + टाप् (आ)। (२) **वरदा**—वर देंने वाली, अभीष्ट को पूरा करने वाली। (३) **वेदमाता**—वेद माता के तुल्य रक्षक हैं, पूज्य हैं। (४) **प्र चोदयन्ताम्**—प्रेरित करें, प्रेरणा दें। प्र + चुद् (प्रेरणा देना, म्वादि) + णिच् + लोट् प्र० ३। प्र० पु० बहुवचन है, अतः देवाः का अध्याहार है। प्रचोदयन्ती पाठ मानने पर अर्थ होगा—प्रेरणा देने वाली वेदमाता। (५) **व्रजत**—जाओ। हे देवो, ब्रह्मलोक को जाओ। तुम वेदपारायणकर्ता का उद्धार करने वाले हो, उसे आयु आदि देकर अपने स्थान ब्रह्मलोक को जाओ। व्रज् (जाना, म्वादि) + लोट् म० ३।

॥ इति शम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

सुभाषित-संग्रह (सुखी परिवार)

सूचना—कोष्ठ में मन्त्र-संख्या दी गई है। शब्दार्थ, विवरण आदि के लिए संबद्ध मन्त्र देखिए।

१. अक्षुध्या अतृष्या स्त। (४३), (९२)
[कोई भी भूखा प्यासा न रहे।]

२. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते। (४६)
[जागरूक विद्वान् को ही वेद भी चाहते हैं।]

३. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते,
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। (२५)

[ऊँच-नीच के भेद-भाव से रहित और भ्रातृभाव-युक्त समाज ही सौभाग्यशाली होता है।]

४. अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। (३९)
[परिवार में धन-धान्य की समृद्धि हो।]

५. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। (६)
[पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो और माता का हितैषी हो।]

६. अनृणा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्
तृतीये लोके अनृणाः स्याम। (९८)
[सदा अनृणी रहें।]

७. अश्मा भवतु ते तनूः। (३०)
[शरीर पत्थर की तरह दृढ हो।]

८. अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु। (१०), (८३)
[परिवार में समन्वय हो।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९. अस्माकेन वृजनेना जयेम । (५८)
[अपने पुरुषार्थ से विजयी हों ।]

१०. इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु । (७३)
[परमात्मा हमें ज्ञान दें ।]

११. इरावन्तो हसामुदाः । (९२)
[धन-धान्य से संपन्न हों और सदा प्रसन्नचित्त रहें ।]

१२. इह रतिरिह रमध्वम् । (५६)
[परिवार में सभी प्रेम से रहें ।]

१३. ईशा वास्यमिदं सर्वम् । (३)
[परमात्मा सारे संसार में व्याप्त है ।]

१४. उच्च तिष्ठ महते सौभगाय । (४४)
[महान् सौभाग्य के लिए उठो और बढ़ो ।]

१५. उतापृणन् मर्डितारं न विन्दते । (७५)
[कंजूस का कोई सहायक नहीं होता ।]

१६. उपोहश्च समूहश्च, क्षत्तारौ ते प्रजापते । (१३)
[योग और क्षेम परमात्मा के अग्रदूत हैं ।]

१७. एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य,
साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः । (४७)
[मनुष्य को जन्म के साथ सौ विभूतियां मिली हैं ।]

१८. ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च । (१४)
[ओज, तेज, साहस और बल मिले ।]

१९. ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा । (६९)
[परमात्मन्, तुम ओजस्वी हो, हमें ओज दो ।]

२०. कामो जज्ञे प्रथमः । (८७)
[संसार में सबसे पहले इच्छाशक्ति उत्पन्न हुई ।]

२१. कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणाम् अश्नाति,
यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति । (३५)
[जो अतिथि से पहले भोजन करता है, वह अपने घर की कीर्ति और यश को खा जाता है ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२२. कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः । (४)
[संसार में सौ वर्ष कर्म करता हुआ ही जीवित रहना चाहे ।]

२३. कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः । (५७)
[मेरे दाएं हाथ में पुरुषार्थ हो और वाएं में विजय ।]

२४. केवलाघो भवति केवलादी । (७६)
[अकेला खाने वाला अकेला पापी होता है ।]

२५. क्रीडी च शाकी चोज्जेषी । (१८)
[सदा प्रसन्नचित्त, शक्ति शाली और विजयी हों ।]

२६. गृहा मा बिभीत—मा वेपध्वम् । (१७)
[हे गृहस्थो, न डरो, न कांपो ।]

२७. जाया पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शन्तिवाम् । (६)
[पत्नी पति से मधुर और सुखद वचन बोले ।]

२८. ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधात् । (२३)
[माता पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे ।]

२९. ज्योगेव दृशेम सूर्यम् । (२०)
[हम चिरकाल तक सूर्य को देखें ।]

३०. तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः । (४९)
[दुर्भाग्य और शत्रु हमारी श्रीवृद्धि में बाधक न हों ।]

३१. तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि । (१०)
[हम उग्र तेज से तजस्वी हों ।]

३२. तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । (५१)
[हे ईश, तुम तेजोमय हो, मुझे तेज दो ।]

३३. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः । (३)
[परमात्मा के द्वारा दिए हुए को त्याग-भाव से भोगो ।]

३४. ते सूनवः स्वपसः सुदंससः । (२६)
[पुत्र कर्मठ और शक्तिशाली हों ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५. दुरितानि परा सुव। (२)

[हे परमात्मन्, हमारे दुर्गुणों को दूर करो।]

३६. धियो यो नः प्रचोदयात्। (१)

[परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे।]

३७. परि बाधो जही मृधः। (५५)

[बाधाओं और शत्रुओं को नष्ट करें।]

३८. पाप्मा हतो न सोमः। (८५)

[पाप नष्ट हों, सद्गुण नहीं।]

३९. पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। (७९)

[बहिन को कुदृष्टि से न देखें।]

४०. पाहि क्षेम उत योगे वरं नः। (१२)

[परमात्मा योग-क्षेम में हमारी रक्षा करे।]

४१. पिता माता मधुवचाः सुहस्ता। (२१)

[माता-पिता मधुरभाषी और दानी हों।]

४२. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते। (२२)

[संतानों को यथायोग्य धन बांटकर दें।]

४३. प्रियाः श्रुतस्य भूयास्म। (९१)

[हम वेद के प्रेमी हों।]

४४. बलमसि बलं मे दाः स्वाहा। (६९)

[परमात्मन्, तुम बलरूप हो, मुझे बल दो।]

४५. ब्रह्म धारय, क्षत्रं धारय, विशं धारय। (५९)

[ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को पुष्ट करो।]

४६. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। (८१)

[हम कान से शुभ वचन सुनें।]

४७. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। (८१)

[हम आँखों से शुभ वस्तु देखें।]

४८. भर्गो देवस्य धीमहि। (१)

[हम परमात्मा के दिव्य तेज को धारण करते हैं।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४९. भिन्धि विश्वा अप द्विषः । (५५)

[अपने सभी शत्रुओं को नष्ट करें ।]

५०. मयि वर्चो अथो यशः । (८९)

[परमात्मा हमें तेज और यश दे ।]

५१. मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु । (११)

[संबन्धियों का विश्वास मुझे प्राप्त हो ।]

५२. मह्दे षु णः सुविताय प्र भूतम् । (४५)

[द्यावापृथिवी हमारे अभ्युदय के लिए हों ।]

५३. मा गृधः कस्यस्विद् धनम् । (३)

[किसी के धन को लोभ से न चाहो ।]

५४. मा भेर्मा संविक्थाः, ऊर्जं धत्स्व । (८५)

[न डरो, न कांपो, सदा हिम्मत रखो ।]

५५. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत्, मा स्वसारमुत स्वसा । (२४)

[भाई भाई से और बहिन बहिन से द्वेष न करें ।]

५६. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः,
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य । (७६)

[मूर्ख व्यक्ति व्यर्थ ही धन-धान्य प्राप्त करता है । वह उसके लिए मृत्यु ही है ।]

५७. यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा । (५०)

[देवगण यजमान को ऐश्वर्य दें ।]

५८. यथा भर्गस्वतीं वाचम्, आवदानि जनाँ अनु । (९०)

[मैं लोगों से तेजस्वी एवं मधुर वचन बोलूँ ।]

५९. यद् भद्रं तन्न आसुव । (२)

[हे परमात्मन्, कल्याणकारी गुण हमें दीजिए ।]

६०. यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । (१२)

[हे देवो, तुम सदा हमें सुख दो और हमारी रक्षा करो ।]

६१. येषु सौमनसो बहुः । (८)

[परिवार के लोगों में हार्दिक एकता हो ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६२. यो जागार तमृचः कामयन्ते । (६०)
[जो जागता है, उसे ही ऋचाएं पसन्द करती हैं ।]

६३. यो जागार तमु सामानि यन्ति । (६०)
[जो जागरूक है, उसे ही साम-संगीत चाहता है ।]

६४. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः, या पापीस्ता अनीनशम् । (४८)
[शुभ लक्ष्मी आवे, अशुभ लक्ष्मी नष्ट हो ।]

६५. रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व । (९६)
[योग और क्षेम को धारण करें ।]

६६. रेवती रमध्वमस्मिन् योनौ । (१६)
[समृद्धियां हमारे परिवार में आवें ।]

६७. वसु स्पार्हं तदा भर । (५३, ५४)
[देवता हमें उत्तम धन दें ।]

६८. वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति । (९७)
[माताएं पुत्र के लिए वस्त्र बुनती हैं ।]

६९. वाचं वदत भद्रया । (२४)
[दूसरे से शिष्ट वचन बोलो ।]

७०. विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त । (३२)
[देव वियोजक हैं, मुझे पापों से पृथक् करें ।]

७१. विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु । (२०)
[समस्त ऐश्वर्य और ज्ञान हमें प्राप्त हो ।]

७२. विश्वदानीं सुमनसः स्याम । (८०)
[सदा प्रसन्नचित्त रहें ।]

७३. व्यशेमहि देवहितं यदायुः । (८१)
[देवों के लिए हितकर दीर्घ आयु प्राप्त करें ।]

७४. शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे । (१९)
[परमात्मा मनुष्यों और पशुओं के लिए सुखदायी हो ।]

७५. शतं च जीव शरदः पुरूचीः । (९६)
[पूरे सौ वर्ष जीवित रहें ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७६. शतं हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते । (८३)
[सौ वर्ष तक सूर्य के तुल्य नियमित जीवन वितावें ।]

७७. शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर । (७४)
(सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथ से दान करो ।]

७८. शिवं शग्मं शंयोः शंयोः । (३९)
[सदा सुख, शान्ति और कल्याण का निवास हो ।]

७९. श्रुतानि शृण्वन्तो वयम्, आयुष्मन्तः सुमेधसः । (८२)
[वेदों को पढ़ते हुए हम दीर्घायु और विद्वान् हों ।]

८०. सं गच्छध्वं सं वदध्वम् । (६६)
[मिलकर चलो, मिलकर वोलो ।]

८१. संज्ञपनं वो मनसः, अथो संज्ञपनं हृदः । (७)
[तुम्हारे मन और हृदय एक हों ।]

८२. संपृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त । (३२)
[देव संयोजक हैं, मुझे सद्‌गुणों से युक्त करें ।]

८३. सं वो मनांसि जानताम् । (६६)
[तुम्हारे मन एक प्रकार से विचार करें ।]

८४. सध्रीचोनान् वः संमनसस्कृणोमि । (९)
[मिलकर चलने वाले तुमको एकमत करता हूँ ।]

८५. समानमस्तु वो मनः । (६५)
[तुम्हारे मन समान हों ।]

८६. समाना हृदयानि वः । (६५)
[तुम्हारे हृदय समान हों ।]

८७. समानी व आकूतिः । (६५)
[तुम्हारे विचार समान हों ।]

८८. समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । (६२)
[पृथिवी, उषा और सूर्य ये सभी परिक्रमा करते हैं ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५२२

८९. सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः । (९४)
[क्रोध की सभी वृत्तियों को नष्ट करते हैं ।]

९०. सवितर्दुरितानि परा सुव । (२)
[परमात्मन्, हमारे सभी दुर्गुणों को दूर करो ।]

९१. सहृदयं सांमनस्यम्, अविद्वेषं कृणोमि वः । (५)
[तुम सबमें सहृदयता, एकता और अद्रोह हो ।]

९२. सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा । (६९)
[परमात्मन्, तुम शक्तिशाली हो । हमें शक्ति दो ।]

९३. साधुं पुत्रं हिरण्ययम् । (२९)
[पुत्र सुशील और संपन्न हो ।]

९४. सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु । (९)
[तुम सबमें दिनभर हार्दिक एकता हो ।]

९५. सूनृतावन्तः सुभगाः । (९२)
[सत्यवादी और सौभाग्यशाली हों ।]

९६. स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । (१००)
[हे देवो, मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली वरदा वेदमाता की स्तुति की है । आप मुझे प्रेरणा दें ।]

९७. स्वतवांश्च प्रघासी च । (१८)
[गृहस्थ स्वावलम्बी और हृष्ट-पुष्ट हों ।]

९८. स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः । (२०)
[गायों, मनुष्यों और समस्त जगत् का कल्याण हो ।]

९९. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु । (२०)
[हमारे माता-पिता का कल्याण हो ।]

१००. स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् । (६१)
[अपने घर में आलस्य छोड़कर सदा जागरूक रहो ।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कपिलदेव द्विवेदी
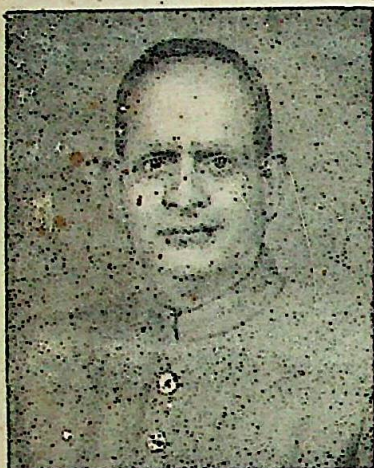
कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)। एवं

निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी)।

जन्म—गहमर (गाजीपुर) उ० प्र०, तिथि—१६-१२-१९१९ ई०, पिता—श्री बलरामदास जी, शिक्षा—गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार), लाहौर, इलाहाबाद। उपाधियां—एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), डी० फिल्० (इलाहाबाद), व्याकरणाचार्य (वाराणसी)। जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी भाषाओं में विशेष योग्यता। यू० पी० ई० एस० (प्रथम श्रेणी)। अवकाश-प्राप्त प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय। प्रकाशन—३० से अधिक ग्रन्थ। विशेष उल्लेखनीयः—१. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, २. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, ३. संस्कृत-व्याकरण, ४. संस्कृत निबन्ध-शतकम्, ५. प्रौढ रचनानुवाद कौमुदी, ६. रचनानुवाद-कौमुदी, ७. राष्ट्र-गीतांजलिः (गीति-काव्य)। उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत-ग्रन्थ—१. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन (१९५२), २. संस्कृत-व्याकरण (१९७२), ३. संस्कृत निबन्ध-शतकम् (१९७७), ४. राष्ट्रगीतांजलिः (१९८१)।

'वेदों की महिमा अपार है। वेद ज्ञान के स्रोत हैं। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद मानव-मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। जहां वेदों की ज्योति है, वहां प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति है सतत विकास है।....वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, र विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व-बन्धुत्व का प्रेरक है और का संस्थापक है।'

—डा० कपिलदेव द्विवेदी (वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri